श्रीकृष्ण

2001

श्रीदेवी

यादवाद्री मण्डया

श्रीकृष्ण

भक्ति सिद्धांजन—दूसरा भाग

विद्याविचक्षणा डा. एम्. एन्. शिंगारम्मा. साहित्यरत्न

श्रीदेवी

यादवाद्री , मण्ड्या

प्रकाशक

श्रीदेवी प्रकाशन

मण्ड्या

१९८८

SRI KRISHNA:

This litirature has been written & published by M. N. Singaramma, 3018, 100 ft. road. Nehrunagar, in four South Indian Languages is, Tamil, Kannada, Telagu and Malayalum.
First Edition 1988
Price Rs 50-00

प्रतियों के लिए :—
विद्याविचक्षणा, डा. एम. एन. शिंगारम्मा. साहित्यरत्न.
काव्य नाम—श्रीदेवी
3018, 100 Feet Road
नेहरुनगर
मण्ड्या [कर्नाटक]
दूरवाणी—८९७

दाम—५०-००

संस्कृत साहित्य सदन
कृष्णमूर्ति पुरं २ मैनरोड़
मैसूर – ५७०००४

श्रिय: कांताय कल्याण निधये निधयेर्थिना
श्रीवेंकट निवासाय श्रीनिवासाय मंगळं

स हा य क

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा-विभाग) के आर्थिक अनुदान

Published with the finaneial assistence of Thirumala Thirupati Devastanam under their scheme Aid to publish religious books .

T. V. S. Sundaram Finance.

शुभ कामना

श्रीमति श्रीदेवी जी ने मुझसे अनुरोध किया है कि दक्षिण भारतीय भाषाओं तथा साहित्यों का परिचय करानेवाली अपनी नयी पुस्तक के बारे में शुभकामना के रूप में मैं दो--चार शब्द लिखें हाल ही में मेरा उनसे परिचय हुआ है। फिर भी उनके कार्यों के बारे में जानकर मुझे आश्चर्य भी हुआ है और संतोष भी हुआ है। उनके लिए शुभ कामना करना मेरे लिए संतोष का कार्य ही रहा है। इसलिए ये दो शब्द लिख रहा हूं।

श्रीदेवी जी आज जो कुछ बनी वह अपनी मेहनत के बदौल से ही है। हर एक व्यक्ति के जीवन में कठिनाइयां आती हैं, रोड़े रुकावटें आती हैं। उनको लांघकर आगे बढ़ने में ही जीवन की सार्थकता निहित रहती है। श्रीदेवी जी ने ऐसी सार्थकता हासिल की है। अध्ययन और अध्यापन के बीच उन्होंने अपनी कठिनाइयों को भुला दिया है, कन्नड़, तमिल, हिंदी और संस्कृत भाषाओं तथा साहित्योंका उन्होंने अध्ययन किया है, तत्वशास्त्र का भी अध्ययन किया है। ऐसी कई उपयुक्त योजनाओं में उन्होंने दिलचस्पी ली है जो महिलाओं के लिए उपयुक्त सिद्ध होती हैं। लेखन कार्य के प्रति उन्होंने अधिक रुचि दिखायी है। हिंदी शिक्षा के क्षेत्र में करीब पच्चीस वर्षों से अपने आपको जुटा लिया है और एक शाला भी चलाती आयी है। इन कार्यों के फल स्वरूप उन्हें कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। उन्हें 'विद्याविचक्षणा' की बिरुद भी मिली है। प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन की साहित्यरत्न परीक्षा में उत्तीर्ण हैं। पिछले वर्ष उन्होंने 'भक्ति सिद्धांजन' नाम का ग्रंथ प्रकाशित किया है। बिहार, भागलपुर के 'विक्रमशीला हिंदी विद्यापीठ ने उनको डी. लिट की उपाधि से भी सम्मानित किया है।

मेरा यह मन्तव्य है कि श्रीदेवी जी की निरंतर एक बहुमुखी सेवाओं के उपलक्ष्य में ही उन्हें ये सभी सम्मान और पुरस्कार मिले हैं।

हमारा राष्ट्र जीवन की विशेषता है। किसी भी देश की एकता उसकी अपनी सांस्कृतिक बुनियाद पर ही बनी रह सकती है, किसी राजनैतिक बंधन से यह साधित हो नहीं सकती। ऊपरी दृष्टिकोन से यह भले ही लगता है कि सांस्कृतिक भिन्नता के बीच एकता को परखना बहुत ही मुश्किल है। लेकिन जब यह कार्य संभव हो जाता है, वह अटूट रिश्त बन कर रह जाती है। राजनीति के कारण एकता का भ्रम हो सकत है। मगर उसके अंतराल में विच्छेद के बीज पनपते रहते हैं। इसलिए हमें ऐसा करना चाहिए कि हमारे लोगों के बीच आपसी सद्भाव बढ़े। एकता साधने की दिशा में यह पहला प्रमुख कदम होता है।

मेरा यह मन्तव्य है कि श्रीदेवी जी की यह पुस्तक एकता की दिशा में उठायेजानेवाले हमारे ऐसे कदमों में से एक है। दक्षिण भारत के चार प्रमुख एवं समृद्ध भाषाओं के—याने कन्नड़, तेलुगु तमिल तथ मलयालम भाषाओं के—साहित्यों के कई पहलुओं से हिंदी भाषा-भाषियों को परिचित कराने की इसमें कोशिश की गयी है। इन भाषाओं के इतिहास भी सुदीर्घ हैं और उनका साहित्य भी बहुत ही समृद्ध है फिर भी अपने अपने भाषा वलय के बाहर जिस मात्रा में होना चाहिए था उस मात्रा में उनका परिचय नहीं हुआ है, प्रचार नहीं हुआ हैं और प्रसिद्धि भी नहीं मिली। कुछ हद तक तमिल इसके लिए अपवाद हो सक्ती है। दक्षिण की अन्य भाषाएँ इस विचार में एक जैसी हैं।

ऐसी स्थिति में हिंदि जैसी विशाल व्याप्ति की भाषा में इन भाषाओं तथा साहित्यों से संबधित इस पुस्तक के प्रकाशन से मुझे तथा मुझ जैसे विचार रखनेवालों को संतोष एवं समाधान मिलेंगे, इसमें कोई

संदेह नहीं हैं। इस कारण मैं श्रीदेवी जी का हृत्पूर्वक अभिनंदन करना चाहता हूं।

भावैक्य के महान् सेतु का निर्माण हमारे राष्ट्र जीवन के लिए अब बहुत ही आवश्यक है। इस महान् कार्य में श्रीमति श्रीदेवी जी की ओर में जो 'गिलहरी की सेवा' संपन्न हो रही है, उसका संतोष से मैं स्वागत करता हूं और आशा करता हैं कि उन्हें सब प्रकार की मुबारक बादियां मिलें।

२ अक्तूबर १९८८
'गोधूलि' जयलक्ष्मीपुरम्
मैसूर ५७००६

डा. हा. मा. नायक.

अभिनंदन

ए. रामस्वामी I. A. S.
मुख्य सचिव, जिला परिषत
मण्डया कर्नाटक

अज्ञानां जाह्नवीतीर्थं विद्यातीर्थं विवेकिनाम् ।
सर्वेषां सुखदं तीर्थं भारती तीर्थमाश्रये ॥

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी ही सभ्यता, संप्रदाय एवं धर्म होता है । जब ऐसे राष्ट्र के नागरीकों को लगता है कि उनकी सभ्यता, संप्रदाय और राष्ट्र ही खतरे में है, तब वे ईश्वर की प्रार्थना करते हैं, और भगवान् मानव रूप में जन्म लेते हैं । कुछ लोगों का यह अटल विचार एवं निर्णय है । कुछ और लोगों का कहना है कि वे भगवान् नहीं है, परंतु वे उस युग या समय के महापुरुष है, और उन्हें हम महात्मा कहते हैं ।

इतिहास इसका साक्षी है कि हर युग में जब--जब भारत वर्ष पर आपत्ति आयी तब एक न एक महापुरुष ने जन्म लिया और राष्ट्र की मर्यादा और समाज के हित एवं कल्याण के लिए अपने प्राण की बाजी दी । परंतु ऐसा देखने को आया है कि अधिकतर जन सामान्य उन्हें पूरी तरह पहचाना नहीं, इस संसार से जाने के बाद ही उन्हें महापुरुष के रूप मे जाना ।

हम सब भारतीय हैं। भारतीय होने के नाते हम वदिक धर्म का पालन करते हैं। हमारे पूर्वजों ने वैदिक धर्म मार्ग पर चलने को कहा है। इससे केवल कुछ लोगों को नहीं परंतु सारे राष्ट्र को श्रेयस प्राप्त हो सकता है। मनुष्य जन्म प्राप्त करना बहुत कठिन है। इस जन्म के मिलने पर हमें अपना जीवन कैसे बिताना चाहिए, शास्त्रों में लिखा है कि हर एक व्यक्ति ज्ञान मार्ग या कर्म मार्ग पर चलने में असफल हो सकता है। इसके साथ यह मार्ग कठिन है। जन सामान्य के लिए एक सुलभ एवं सुगम मार्ग होना चाहिए-बुद्धि कहती है कि ऐसे मार्ग है। यह मार्ग भक्ति कहलाती है। भक्ति मार्ग से श्रेयस, ज्ञान और मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

इसके उदाहरणार्थ श्रीमति शिंगारम्मा, श्रीदेवी जी ने जो संशोधनात्मक ग्रंथ लिखा है, वही भक्ति को प्रतिपादित करता है।

'भक्ति सिद्धांजन' ग्रंथ के द्वितीय भाग का नाम है कि 'श्रीकृष्ण' चाहे भारत के उत्तर हो या दक्षिण भाग! सब जगह भगवान् श्रीकृष्ण पर भक्ति करते हैं। श्रीकृष्ण एक महा पुरुष है। इस ग्रंथ के चार अध्यायों में चार भक्तों के विचारधाराएं हैं। कनकदास, कबीर, त्यागराज सूर, तुलसी आदि भी भक्त हैं। इस ग्रंथ में नम्मालवार, पुरंदर=दास अन्नमाचार और नारायण भट्टतिरि की श्रीकृष्ण भक्ति आदि हैं। साथ—साथ दक्षिण के चारों भाषाएं कि तमिल, कन्नड, तेलुगु और मलयालम भाषा के बारे में भी विवरण हैं

इस ग्रंथ में लेखिका ने भक्ति सिद्धांत का अच्छा परिचय दिया हैं। वैज्ञानिक युग में भी भक्तिमार्ग की आवश्यकता है और उसका एक अनोखा स्थान है, इस ग्रंथ से पता चलता है। हमें पूरि आशा है कि आस्तिक महाजन इस ग्रंथ का पूरा लाभ उठाएंगे। श्रीमति' शिंगारम्म श्रीदेवी को भगवान् चिर आयु और समस्त सन्मंगल प्रदान करें। यही हमारी प्रार्थना है।

ऐ- रामस्वामी

आभार

'भक्ति सिद्धांजन' मेरे संशोधनात्मक कृति है। विशिष्टाद्वैत साहित्य के नंदा दीप है।

१९८७ में यह ग्रंथ छपा। यह ग्रंथ अत्यंत जन प्रिय हैं।

मैंने कई साल पहले प्रयाग 'साहित्य सम्मेलन' हिन्दी विश्व-विद्यानिलय के 'महामहोपाध्याय' उपाधि प्राप्त करने के लिए 'दक्षिण भारत के वैष्णव साहित्य' की रजस्ट्री करवायी थी।

अतः दक्षिण भारत की चार भाषाएं—

तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम हैं।

प्रथम अध्याय तमिल के नम्मालवार की कृति सहस्रगीति है। उसमें श्रीकृष्ण लीला का संपूर्ण विवरण हैं।

दूसरा अध्याय कन्नड़ के दास साहित्य है। उसमे मध्वाचार्य जी, उडुपि के श्रीकृष्ण मंदिर के संस्थापक और पुरंदर दास, श्रीपादराय कनकदास इत्यादि के विचार हैं।

तीसरा अध्याय कि तेलुगु साहित्य।

बालाजी वेंकटेश्वर ही श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण ही बालाजी वेंकटेश्वर हैं।

'कलौ वेंकट नायक : ' कहकर संकीर्तन पितामह अन्नामचार्य जी ने भागवत के दशमस्कंद की श्रीकृष्ण कथा को ही बालाजी वेंकटेश्वर की लीलाओं के विशय रखकर ३२०००-इजार गीत गाया हैं। उस समय के सारे कीर्तनकार अन्नमाचार्य के ऋणि हैं।

आजकल तिरुमला तिरुपति में भगवान् के दर्शन के लिए लाखों भक्तवृंद आते—जाते हैं।

वेंकटेश्वर देवस्थानम् के एग्जुटी अफसर और अन्य कार्य कर्ताओं ने मेरे तेलुगु संशोधन कार्य के लिए अन्नमाचार कलामंदिर को आठ महीने दिए थे। इस उपकार के लिए मैं टि. टि. देवस्थानम के कार्य कर्ताओं की आभारी हूं। उनकी मदद से ही मैंने तेलुगु साहित्य के बम्मेर पोतना, वेमना, क्षेत्रय्या इत्यादियों का अध्ययन कर सकी।

चौथा अध्याय है कि—

केरळ के मलयाळी साहित्य संस्कृत और मलयाळी को मणिप्रवाळ कहते हैं। इस ग्रंथ में मलयाळी साहित्य का संक्षिप्त विवरण है। केरळ के प्रसिद्ध गुरुवायूर श्रीकृष्ण के प्रति श्री नंबूदिरी नारायण भट्ट तिरि जी ने ।'नारायणीयम् ' की रचना की हैं। यह भी श्रीकृष्ण चरित्र है

अतः पहला अध्याय के हजार गीत और चौथे अध्याय के हजार गीत है। कन्नड और तेलुगु के इतिहास भी हैं।

इस कृति का ' शीर्षक ' श्रीकृष्ण। प्रमुख विषय यही होने के कारण ' भक्तिसिद्धांजन ' के दूसरा भाग ' श्रीकृष्ण ' चरित्र से भरपूर हैं।

इस कृति की अवतारिका लिखने के लिए प्रसिद्ध साहित्यकार श्री हा. मा. नायक जी माना है। वे केवल विद्वान् और साहितिमात्र नहीं है।

कई विश्वविद्यानिलयों में प्रोफेसर, कुलपति और आदि कार्यों में निमग्न हैं। उन्हें क्षण मात्र भी फुरसत नहीं है।पत्र— पत्रिकाओं में लख पुस्तक विमर्शन आदि लिखने में ही मग्न रहते हैं। सप्ताहिक पत्रिका में उनकी विमर्शा पढ़ने के लिए लोग निरीक्षा करते हैं। सौजन्य सौशील्य निराडंबर तथा हंस मुख के श्रीयुत हा. मा. नायक जी की लेखनी से जो विचार धारा बहती है। वह गंगा—जमुना के जैसे महिमा वान होगी। अतः अपने अमूल्य समय मेरी कृति कोशुभकामना लिखने के लिए उपयोग किए है। उसके लिए मैं उनकी आभारी मानती हूं।

दूसरें भाग भक्ति सिद्धांजन 'श्रीकृष्ण' प्रकट होने के लिए हमारे भारत सरकार की सहायता मूल्यवान् है। हमेशा की तरह तिरुमला तिरुपति देवस्थानम की मदद और संपूर्ण सहकार प्राप्त है। उन सब सहायकों को मैं हृत्पूर्वक धन्यवाद समर्पण करूंगी।

'भक्ति सिद्धांजन' दूसरे भाग 'श्रीकृष्ण' 'संस्कृत साहित्य सदन' मैसूर में छापा है। मुद्रणालय के मालिक श्री. आर. नरसिंहन् और अन्य कार्यकर्ता अत्यंत श्रद्धा से मुद्रण कार्य किया है। म्यानेजर श्रीमति सरोजम्मा जी कर्तव्यनिष्ठा महिला हैं। उन्होंने अपने सद्व्यवहार से मुद्रणालय के कार्य को जो सुंदर ढंग से निर्वाह करती है। अतः इनके मुद्रणालय के कार्य दिन दूना रात चौगुना बढ़े।

श्री हा. मा. नायक जी की कृतियों के बारे में श्री. मं गोविंद पै, श्री द रा बेंद्रे, अ न कृष्णराय, मास्ति वेंकटेश अय्यंगार श्री गोरूर राम—स्वामि अय्यंगार आदि गण्य माने-जाने साहित्यकार प्रशंसा की हैं।

उन्होंने विमर्श और पत्रिका के लेखों में अपने स्पष्ट विचार प्रट किया है पुस्तकों के अवतारिका लिखते वक्त संदर्भों के अनुसार सूक्ष्म विषयों को स्पष्ट कर पुस्तक पढ़नेवालों की अभिरुचि बढ़ाते हैं। जो कृति हो उनके गहरे अध्ययन, विमर्श के तराजू में गुंजी जैसे कृति को सोने के मूल्य से तोलते हैं। उनकी कसौटी में सोना अच्छा हो तो खरा उतरता है। अगर वह नकली, खोटा हो तो उनकी तीक्षणमति फटकार देता है। इस विचार उनकी अनेक कृतियां तथा 'सिंगार से स्पष्ट होता है। आपके बारे में लिखना दिये से सूरज को दिखाने के बराबर होगा।

जब मेरे कन्नड़ पुस्तकों के लिए जाने-माने प्रसिद्ध साहितियां—

स्वामि आदि देवानंद, श्री ड.ड. राघवचार श्री एच एस के जी. श्रीदेवी टि तिरुनारणयंगार और गोरूर रामस्वामि अय्यंगार डा एस रंगाचार आदि के आशीर्वाद प्राप्त हो गया था।

तब हिंदी संशोधनात्मक प्रथम ग्रंथ के लिए बड़े-बड़े विद्वान् तथा मठाधिपति अवतारिका अभिनंदन आदि प्रदान किए हैं। अब प्रस्तुत भक्ति सिद्धांजन के द्वितीय भाग 'श्रीकृष्ण है।

ऐसे एक महान् व्यक्ति की आवश्यकता थी कि ग्रंथ को गहराई से देख तथा स्पष्ट विचार बतावें। ऐसे महान् साहित्यकार श्री हा मा नायक मिले।

साथ-साथ मण्डया नगर के जिलापरिषत् के मुख्य कार्य दर्शी श्री ए रामस्वामी I A S जी सनातन भारतीय हिन्दू धर्म पर आस्था रखनेवाले हैं।

वे संस्कृत और अंग्रेजी आदि के प्रकांड पंडित हैं प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अध्यन कर उसके महान् विचारों को अपनाए हैं। रोज नियम से पूजा पाठ आदि को निष्ठा से करते हैं। सभी कार्यों मे अनुशासन और नियम पालन करते हैं। ऐसे महा मेधावी, राज इस ग्रंथ के लिए हैं अभिनंदन किए हैं।

इन दोनों की शुभकामना तथा अभिनंदन से इस ग्रन्थ के महत्व बढा मुझे प्रोत्साह देने वाले डा हा मा (एच च एम् नायक) जी तथा श्री ए रामस्वामि जी के प्रति अत्यंत मैं नम्रता के साथ आभार प्रकट करना चाहती हूं। डा हा मा ना जी मैसूर विश्व विद्यालय के कन्नड़ विभाग के प्राचार्य एवं अध्यक्ष गुलबर्गा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष और कर्नाटक साहित्य अकादेमी के निर्देशक हैं। अब कन्नड़ अध्ययन संस्थ कार्य तत्पर हैं। श्री ए रामस्वामि जी ऐ ए एस मण्डया जिला परिष द के प्रधान सचिव हैं ही और रूयत नामा, अधिकारी एडमिनिस्टेटर हैं। आप दिल्लि में शिक्षा—दीक्ष प्राप्त करने के कारण हिंदी के अच्छा ज्ञाता हैं।

ऐसे महानुभव विद्वान् द्वय के प्रति मैं सहर्ष अपना आभार प्रकट करती हू। मद्रास टि वि एस की भी थोडी सी मदद प्राप्त हुई हैं। श्री टि ए टि आचार्य को अपनी आभारी प्रकट करती हूं।

श्री देवी

पहला अध्याय

श्रीकृष्ण स्तुति

श्रीकृष्ण लीला

तमिळ

सहस्रगीति

सहस्रगीति

प्रथम शतक

दूसरा शतक

तीसरा शतक

चौथा शतक

पांचवां शतक

छठा शतक

सातवां शतक

आठवां शतक

नौवां शतक

दसवां शतक

उपनिषत् और सहस्रगीति

सहस्रगीति और राग–ताल

दूसरा अध्याय

कन्नड

दाससाहित्य

द्वैत सिद्धांत के सामान्य विचार

भगवान् की व्याप्ति

भागवत धर्म

श्रीपादराय
श्रीपादज
व्यासराय
श्री वादिराजा
पुरंदरदास
दास साहित्य के वैशिष्ट्य
पुरंदर दास के गीत में राग और ताल
श्रीव्यासराय के गीत
कनकदास के गीत

तीसरा अध्याय

३ तेलुगु

तेलुगु साहित्य

आंध्र देश की नदियां
नन्नय भट्ट
पाल्कुरिके सोमनाथ
वल्लभ रायडु
तालपाक्कम अन्नमाचार्य
वेमना
पोतना
आधुनिक युग
श्रीकृष्ण देवराय
आमुक्त माल्यदा
अन्नमाचारी
तालपाक्कम चिन्नन्ना
दक्षिणांध्र वाङ्मय

तालपाक्कम पेद्दतिरुमलाचार्य
संकसाल-सिंह कवि
पिंगाळि सूर्यनायडु
सिद्धराजु तिम्मराजु
तरि गोप्पल मल्लन्न
चेळ्ळपिळ्ळ नरस कवि
रेवणुरि वेंकटकवि
क्षेत्रय्य पदमुलु
अन्नमाचार्य के गीत
चिन्न तिरुमलाचार्य के गीत

चौथा अध्याय
मलयाळि

४ मलयाळी साहित्य
रामचरित पाट्टु
नाड़न पाट्टुकळ
संघक्काळि पाट्टु
तेक्कन पाट्टुकळ
कृष्ण गाथा—जानपद गीत
चंपु और मुक्तक
एळुत्तच्छन
आध्यात्म रामायण और महाभारत
कृष्ण गाथा
श्रीमन्नारायणीयम
भगवद्रूप वर्णनम
गजेन्द्र चरित्र

वामनावतार
अंबरीषोपाख्यान
श्रीकृष्णावतार के कारण
पूतना वध
शकटासुर वध
श्रीकृष्ण नामकरण संस्कार
बालक्रीडा वर्णन
ओखली में बांधना
वृंदावन निर्गमन
ब्रह्मदेव ने बछड़ों की चोरी की
गोपी वस्त्रापहरण
भक्तविलोचन
इंद्रयाग
गोविंद पट्टाभिषेक
शङ्खचूड वध
केशी तथा व्योमासुर वध
अक्रूर के गोकुल आगमन
श्रीकृष्ण का मथुरापुरी प्रवेश
कुवलयापीड नामक हाथी का संहार
उद्धव के दौत्य
उपश्लोक का जनन
जरासंध युद्ध
बलराम और श्रीकृष्ण का विवाह
स्यमंतकोपाख्यान
सुभद्रा हरण
बाणासुर से युद्ध
पौंड्रक वध
स्यमंतक पंचक

श्रीकृष्णस्तुति

१ कलियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ।

२ नमामि देवकी पुत्रं नृत्य राजानमच्युतम् ।

३ गो गोप गोपिका वीतं गोपालं गोषु गो प्रदम् ।

४ सदा सेव्यः कृष्ण सजल घन नीलः करतले ।
दधानो दध्यन्नं दतनु नवनीतं मुरलिकाम् ।

५ भक्ति दास्यमवाप्नोति श्रीकृष्ण चरणांबुजे ।

६ विशिष्टं पुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम् ।

७ दूरी भूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदान्विताः ।

८ दूरो भूणस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृत दृष्टितः ।

९ वल्लवी नंदनं वंदे कृष्णं गोपाल रूपिणम् ।

१० विचित्रांबर भूषाभि गोपि नारी भिरावृतम् ।

११ प्रभिन्नांजन कालिंदी जलकेली कलोत्सुकम् ।

१२ कालिंदी जलं संसर्गी शीतलानिल सेविते ।

१३ कदंब पादपच्छाये स्थितं वृंदावने क्वचित् ।

१४ गोवर्धनगिरौ रम्ये स्थितं रास रसोत्सुकम् ।

१५ सव्यहस्ततलन्यस्त गिरिवर्यात् पत्रकम् ।

१६ वेणु , वाद्य महोल्लास कृतहुंकार निःस्वनैः ।

१७ वसुदेवात्मज पुण्यो लीला मानुष विग्रहः ।

१८ कृष्ण ः कमला नाथो वासुदेव सनातनः ।

१९ श्रीवत्स कौस्तुभ धरो यशोदा वत्सलो हरिः ।

२० देवकी नंदनः श्रीशो नंद गोपप्रियात्मजः ।

२१ पूतना जीवित हरः ।

२२ यमुनावेग संहारी बलभद्र प्रियानुजः ।

२३ शकटासुर भंजनः ।

२४ नंदव्रज जनानंदी सच्चिदानंद विग्रहः ।

२५ नवनीत नवाहारी मुचुकुंद प्रसादकः ।

२७ तृणीकृत तृणावर्तो यमुलार्जुन भंजनः ।

२८ गोप गोपीश्वरो योगी सूर्यकोटी समप्रभः ।

२९ वनमाली पीतवासा पारिजातापहारकः ।

३० गोवर्धनो चलोद्धती गोपालः सर्व पालकः ।

३१ मथुरा मथुरानाथो द्वारका नायको बली ।

३२ वृंदावनांत संचारी तुलसीदाम भूषणः ।

३३ स्यमंतकमणेर्हर्ता नरनारायणात्मकः ।

३४ कुब्जा कृष्णांबर धरो मयी परम पुरुषः ।

३५ मुष्टिकासुरचाणूर महायुद्धविशारदः ।

३६ संसार वैरी कंसारी मुरारी नरकांतकः ।

३७ अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णा व्यसनकर्षकः ।

३८ शिशुपाल शिरच्छेत्ता दुर्योधन कुलांतकृत ।

३९ विदुराक्रूर वरदो विश्वरूप प्रदर्शकः ।

४० सत्यवाक् सत्यसंकल्पः सत्य भामारतो जयी ।

४१ सुभद्रा पूर्वजो विष्णु भीष्म मुक्तिप्रदायकः ।

४२ जगद्गुरु र्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः ।

४३ वृषभासुर विध्वंसी बाणासुर बलांतकृत् ।

४४ युधिष्ठिर प्रतिष्ठांता बर्हिबर्हाव तंसकः ।

४५ पार्थसारथीरव्यक्तो गीतामृत महोदधिः ।

४६ कालीय फणि माणिक्यरंजित श्रीपदांबुजः ।

४७ दामोदरो यज्ञ भोक्ता दानवेंन्द्र विनाशनः ।

४८ नारायणः परब्रह्म पन्नगाशन वाहनः ।

४९ जलक्रीडा समासक्त गोपी वस्त्रापहारकः ।

५० नंदैक नंदनं वंदे यशोदा नंदनं प्रभुम् ।

५१ गोपिका चेतनाहरं राधाप्राणाधिकं परम् ।

५२ क्रीडंतं राधया सार्धं वृंदारण्ये चकुप्रचित् ।

५३ यमुलार्जुन दृष्ट बालकेलि यमुनासाक्षि ।
कयौवतं युवानम् ।

५४ गोपालं भूलीला विग्रह गोपालं कुल गोपालं
गोपी खेलन गोवर्धन लीला ललित गोपालम् ।

५५ गोपी गोचरदूरं प्रणमत गोविंदं परमानंदम् ।

५६ वृंदावन भुवि वृंदारकगण वृंदाराधित वंदेहं ।

५७ गोविंदाच्युत माधवविष्णो
गोकुल नायक कृष्णोति ।

५८ भक्तादि दैत्यकलकं सगोप गोविपालकम् ।

५९ व्रजांगनानु रंजनं नमामि राधिकापम् ।

६० सुरेन्द्र गर्व भजनं विरंचिमोह भंजनम् ।

६१ पूर पिंछ मंडनं गजेन्द्र दंत खंडनम् ।

६२ प्रदत्तविप्र दारकं सुदामधाम कारकम् ।

६३ धनंजयाज्ञया वद्द मदनम् क्षायावद्दम ।

६४ मुनींद्र शाप कारणं यदु प्रजापहारण ।

६५ नमामीश्वरं सच्चिदानंदरूप लसत्कुंडलं
गोकुले भ्राजमानम् ।

६६ यशोदाभि योलूखले धावमानं परा मृष्ट
मत्यंन्तो द्रुतगोप्या ।

६७ पुनरिह यदुकुल जलधि कलानिधिः
सकल सुरगण सेवित पादारविंद द्वंद्वो
विविध दानव दैत्य दलन लोकत्रय दूरितः
तापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो भलभद्र स्त्वमसि ॥

६८ तारो नमो भगवते रुक्मिणी वल्लभायच ।

६९ जय चक्र गदा पाणे जयदेव जनार्दन ।

७० भक्ति प्रदाय भक्तान्यं नमस्ते भक्तिदाने ।

७१ गोपैरीडयं गो महस्तौनौमि गोकुलनायकम्

७२ हृदं भोजे कृष्णः सजल जलद श्यामलतनुः
सरोजाक्षःस्रग्वी मुकुंद कटका द्याभरणवान् ।

७३ वसुदेव सुतं देव कंस चाणूर मर्दनम्
देवकी परमानंदम् कृष्णम् वंदे जगद्गुरुं ॥
आदौ देवकी देवि गर्भ जननीम्
गोपी गृहे मर्दनम् ।माया पूतनी जीविताप हरणम्
गोवर्धनोधारणम् कंस छेदन कौरवादि निदनम्
कुन्ती सुता पालनम् एतत्भागवतम् पुराण कथितम् कृष्ण
लीलामृतम् ।

श्रीकृष्ण लीला

१	देवकी—वसुदेव	श्रीकृष्ण
	'शंख चक्र गदा पाणे द्वारका निलया अच्युता गोविंद पुंडरीकाक्षा रक्षमां शरणागतां ॥'	
२	आदिशेष	श्रीकृष्ण
३	यमुनानदी	श्रीकृष्ण
४	यशोदा—नंदगोप	श्रीकृष्ण
५	बलराम	श्रीकृष्ण
६	गोप गोपियां	श्रीकृष्ण
७	पूतना वध	श्रीकृष्ण
८	शकटासुर वध	श्रीकृष्ण
९	माखन चोर	श्रीकृष्ण
१०	मिट्टी खानेवाला	श्रीकृष्ण
११	मुँह में सप्तलोक	श्रीकृष्ण
१२	तृणासु	श्रीकृष्ण
१३	उलूख बंधन	श्रीकृष्ण
१४	नलकूवर मणिग्रीव	श्रीकृष्ण
१५	वृंदावन निर्गमन	श्रीकृष्ण
१६	जंगल में बछडों को चराना	श्रीकृष्ण
१७	कालिंदी फणि मर्दन	श्रीकृष्ण

१८	आग को पी लेना	श्रीकृष्ण
१९	अघासुर वध	श्रीकृष्ण
२०	वत्सासुर वध	श्रीकृष्ण
२१	गर्गमुनि से नामकरण	श्रीकृष्ण
२२	इंद्रपूजा	श्रीकृष्ण
२३	गोवर्द्धन पूजा	श्रीकृष्ण
२४	गोवर्धनोद्धरण	श्रीकृष्ण
२५	गोविंद पट्टाभिषेक	श्रीकृष्ण
२६	ऋषिपत्नियों का प्रेम भक्तविलोचन	श्रीकृष्ण
२७	गोपालक	श्रीकृष्ण
२८	ब्रह्मा बछड़ों को छिपाना	श्रीकृष्ण
२९	चतुर्मुख ब्रह्मा गोप बालकों को छिपाना	श्रीकृष्ण
३०	गो–गोपालों का विराट रूप	श्रीकृष्ण
३१	मकरंद	श्रीकृष्ण
३२	रासक्रीडा	श्रीकृष्ण
३३	घट नर्तन	श्रीकृष्ण
३४	जलक्रीडा	श्रीकृष्ण
३५	वस्त्रापहरण	श्रीकृष्ण
३६	मुरळीधर	श्रीकृष्ण
३७	सुभद्रा	श्रीकृष्ण
३८	अर्जुन पक्षपाती	श्रीकृष्ण
३९	बाणासुर वध	श्रीकृष्ण
४०	उषा परिणय	श्रीकृष्ण
४१	नीळादेवी तथा वृषभ मर्दन	श्रीकृष्ण

४२	अक्रूर	श्रीकृष्ण
४३	अक्रूर को परतत्व स्वरूप दिखाना	श्रीकृष्ण
४४	कुब्ज	श्रीकृष्ण
४५	मालाकर	श्रीकृष्ण
४६	धोबी से वस्त्रग्रहनना	श्रीकृष्ण
४७	कंस के धनुर्याग	श्रीकृष्ण
४८	कुवलया पीड़ा	श्रीकृष्ण
४९	चाणूर मुष्टिक	श्रीकृष्ण
५०	चिन्तयति	श्रीकृष्ण
५१	कंस वध	श्रीकृष्ण
५२	उग्रसेन	श्रीकृष्ण
५३	उग्रसेन पट्टाभिषेक	श्रीकृष्ण
५४	यशोदा—नंदगोद का वात्सल्य	श्रीकृष्ण
५५	बलराम श्रीकृष्ण के ब्रह्मोपदेश	श्रीकृष्ण
५६	गुरुकुलवास	श्रीकृष्ण
५७	गुरुदाक्षिणा	श्रीकृष्ण
५८	कुचेल की मित्रता	श्रीकृष्ण
५९	उद्धव की मित्रता	श्रीकृष्ण
६०	ब्राह्मण का संदेश	श्रीकृष्ण
६१	रुक्मिणी विवाह	श्रीकृष्ण
६२	सत्यभामा विवाह	श्रीकृष्ण
६३	मुचुकंद	श्रीकृष्ण
६४	नरकासुर वध	श्रीकृष्ण
६५	१६ हजारकन्याओंसे विवाह	श्रीकृष्ण

६६	नारद गृहस्थ होना	श्रीकृष्ण
६७	जांमवती परिणय	श्रीकृष्ण
६८	नाजित	श्रीकृष्ण
६९	खांडवन दहन	श्रीकृष्ण
७०	पारिजातापहरण	श्रीकृष्ण
७१	राजसूययाग	श्रीकृष्ण
७२	अग्रपूजा	श्रीकृष्ण
७३	मथुरा नगर से द्वारका	श्रीकृष्ण
७४	जरासंध	श्रीकृष्ण
७५	प्रभासतीर्थ	श्रीकृष्ण
७६	शिशुपाल बध	श्रीकृष्ण
७७	द्रौपदि वस्त्रापहरण	श्रीकृष्ण
७८	अक्षय पात्र	श्रीकृष्ण
७९	विदुर के घर	श्रीकृष्ण
८०	दुर्योधन की सभा	श्रीकृष्ण
८१	धृतराष्ट्र को विश्व परू	श्रीकृष्ण
८१	महाभाभारत युद्ध सारथी	श्रीकृष्ण
७३	जयद्रत बध	श्रीकृष्ण
८४	विश्वरूप	श्रीकृष्ण
८५	गीतोपदेश	श्रीकृष्ण
८६	उत्तरा गर्भ रक्षक	श्रीकृष्ण
८७	कुंती	श्रीकृष्ण
८८	पांडव विजय	श्रीकृष्ण
८९	भीष्म शरपंजर	श्रीकृष्ण

९०	बलराम	श्रीकृष्ण
९१	उदंकमुनि	श्रीकृष्ण
९२	गांधारी	श्रीकृष्ण
९३	अवतार समाप्ति	श्रीकृष्ण
९४	नम्मालवार	श्रीकृष्ण
९५	पेरियाळवार	श्रीकृष्ण
९६	गोदादेवी	श्रीकृष्ण
९७	पुरंदरदास	श्रीकृष्ण
९८	सूरदास	श्रीकृष्ण
९९	घंटाकर्ण	श्रीकृष्ण
१००	गीत गोविंदा	श्रीकृष्ण
१०१	उडुपि	श्रीकृष्ण

श्रीरंग मंगल मणिंयं करुणा निवासं
श्रीवेंकटाद्रि शिखरालय काळमेघं
श्रीहस्ति शैल शिखरोज्वल पारिजातम्
श्रीशं नमामि शिरसा यदुशैल दीपं ॥

नम्मालवार

अध्याय—१

तामिल सहस्त्रगीति

सहस्त्रगीति

सहस्रगीति का द्राविडीनाम तिरुवायमोळि हैं। इसका अर्थ है= श्री-मुख से निकली हुई वाणी। इस दिव्य प्रबंध में दस शतक, एक सौ दशक, एवं कुल, ११०२ गीत हैं। जहाँ भगवान् के द्वादश नामों का उल्लेख है, वहाँ १३ गीत हैं।

जैसे संत आळवारों की गोष्ठी में शठकोपसूरी प्रधान हैं, इसी तरह दिव्यप्रबंधों में 'सहस्रगीति' प्रधान मानी गयी है। महाभारत की एक प्रशंसा सुनी जाती है कि 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित' अर्थात् महाभारत में उपवर्णित है; वही दूसरें ग्रन्थों में भी मिल सकती है और जो महाभारत में वर्णित नहीं वह अन्यत्र भी न मिल सकेगी, भगवद्भागवत गुणों से ही भरित सहस्रगीति में मुमुक्षुओं के अवश्य ज्ञातव्य परमात्म स्वरूप, जीवात्म स्वरूप, मोक्ष स्वरूप, उपाय स्वरूप वे विरोधी स्वरूप नामक अर्थ पंचक उपवर्णित हैं। इस प्रबंध को तथा इसकी टीका को भगवद्विषय कहने की प्रथा आयी है। ऐसे रहस्यार्थों का वर्णन करने के कारण इस सहस्र गीति का पाठ मंदिर में और भगवान् के उत्सव के सामने गाते हैं।

भगवद्रामानुजाचार्य के समय में उनके प्रधान शिष्य तिरुक्कुरुहै पिरान पिळ्ळान' ने षटसहस्री नामक संक्षिप्त व्याख्या लिखी थी। (बत्तीस अक्षरवाले, अर्थात् एक अनुष्टपपद्य जितने अक्षर संदर्भ को एक ग्रंथ कहते हैं) ग्रंथों की लंबाई नापने का यह मानदंड है। दूसरी व्याख्या 'नंजीयर'

नाम के वेदांती ने नवसहस्री लिखे है। श्री पेरियवाच्यान पिळ्ळै का चौबीस हजार ' से प्रसिद्ध हैं। 'वडक्कु तिरुवीदिपिळ्ळै ' नामक कृष्णपाद स्वामी जी से रचित व्याख्या छत्तीस हजार है। और एक व्याख्या सुंदरजामातृ मुनिसे विरचित प्रतिपदार्थ रुपि टीका बारह हजार हैं।

और भी दो–द्रविडोपनिषत्तात्पर्यरत्नावलि, द्रविडोपनिषत्सार श्री वर वरमुनि ने एक-एक दशक से भी सारार्थ का वर्णन करनेवाली, एक सौ द्राविड़ी पद्यमाला तिरुवायमोळि नूत्तादि लिखा है। वादकेसरी सुंदर जामातृ मुनि ने 'द्रविडोपनिषत्संगति ' नामक एक संस्कृत पद्य ग्रंथ लिखा है।

आजकल के व्याख्याताओं में 'महामहिमोपाध्याय ' 'पद्मविभूषण ' 'जगदाचार्य सिंहासनाधिपति ' प्रतिवादि भयंकर श्री. उ. वे. अण्णंगराचार्य स्वामी जी ने द्राविड़ी में 'दिव्यार्थ दीपिका ' नामक व्याख्या लिखी है।

सहस्रगीति में इतने निगूढ़ अर्थ भरे है कि इनका पूरा विवरण करना सर्वथा अशक्य है।

श्रीशठकोप सूरी तो आपादमस्तक दोष रहित परम पवित्र वैष्णव संत हैं। केवल भगवान् के निर्हेतुक कृपा से चिद्-चिदीश्वरों के स्वरुप स्वभाव, तथा चतुर्विध पुरुषार्थ आदि ज्ञातव्य समस्त अर्थों के ज्ञाता बनने वाले आप प्रपन्नजनकूटस्थ थे। जिससे दोष मुक्त, शुद्ध, श्रेष्ठ, निर्मल, एक रूप परब्रह्म जाना जाता है, अथवा पाया जाता है, वही सच्चा ज्ञान है; दूसरा सब अज्ञान है। एवं जो बंध का हेतु न बनेगा वही कर्म है; और वही विद्या है, जो मुक्ति का साधन बनेगी; दूसरा कर्म केवल आयास जनक होता है और दूसरी विद्या केवल शिल्प विद्या है ' (वि.पु. १-१९-४८) (इस अर्थ में श्री शठकोप सूरी सुदृढ़ अध्यवसाय रखते थे।)

हसितं भाषितं चैव गतिर्या यच्च चेष्टितम् ।
तत्सर्वं धर्म वीर्येण यथावत्संप्रपश्यति ।। (रा-बा. ३-४)

इत्याद्युक्तप्रकार चतुर्मुखब्रह्मा के अनुग्रह से श्रीरामायण के पात्रों का हंसना, बोलना, चलना, दूसरा काम करना इत्यादि सभी व्यापारों को ठीक ठीक जाननेवाले भगवान् वाल्मीकी की तरह : श्रीशठकोप सूरी भी, अपने श्रीमुख से ही 'भगवान्' ने मुझे संशय विपरीत ज्ञान विस्मृतियों से विरहित दिव्यज्ञान का प्रदान किया।' (सहस्र-१-१-१) इत्यादि कहतेहुए-साक्षात् भगवान् की कृपा से ही तत्त्व-हित-पुरुषार्थों के अच्छे ज्ञाता बने। भगवद्गीता में----' ज्ञानीत्वात्मैव में मतम् ' [७-१८] 'स महात्मा सुदुर्लभः ' [७-१९] ' मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥' [७-३] अर्थात् हजारों मानवों के बीच में से कोई एक, सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है, और उनमें कोई एक ही भगवान् को ठीक जान सकता है। शठकोप सूरी ऐसे ही परम भक्ताग्रेसर बने।

श्री शठकोप सूरी भगवद्भक्ति पैदा करने में समर्थ, संसारिक सकल दुःखाग्नि को दूर करने में समर्थ अमृत प्रवाह सदृश चार दिव्य प्रबंधों के रचयिता बने। इनमें 'तिरुविरुत्तम' नामक पहले प्रबंध में आपने, इस संसार को अपने लिए दुस्सह बता दिया ; दूसरे प्रबंध 'तिरुवाशिरियम' में भगवान् से प्रदर्शित उनके स्वरूप स्वभावादियों का अति संक्षेप, तथापि अतिविशद् वर्णन किया ; 'पेरिय तिरुवंदादि, नामक तीसरे प्रबंध में अपने मन में क्षणे-क्षणे बढ़नेवाले भगवद्विषयक प्रेम का वर्णन किया ; और सहस्र गीति नामक इस चौथे दिव्य प्रबंध में समस्त शास्त्रों के सारभूत अर्थ पंचक तत्त्व त्रयादि, जानने लायक समस्त सदर्थों का प्रकाशन करते हुए, भगवान् का परिपूर्ण अनुभव भी कर अंततः आपने मुक्ति भी पाया।

हरिकीर्ति विनैवान्यत् ब्राह्मणेन नरोत्तम् ।
भाषागानं न कर्तव्यं तस्मात्पापं त्वया कृतम् ।'

अर्थात् भगवान् का यशोगान छोड़कर दूसरा गान करना ही पाप है ; अतः भगवान् का भजन करनेवाले की निंदा करना महा पाप है। एवं अनवरत वीणागान करनेवाला नारद जी की यह प्रशंसा सुनी जाती है कि—

'अहो देवऋषिर्धन्यो यः कीर्ति शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यान्निदंतयारमन्ध्यात्यातुरं जगत् ॥ '

वीणा से शार्ङ्ग धनुषधारी भगवान् का यश गाते हुए, आनंद से मस्त होकर, दुःखी इस जगत् को भी आनंदित करनेवाले देवर्षि नारद धन्य है।

एवं याज्ञवल्क्यस्मृति में वीणागान की यह प्रशंसा सुनी जाती है कि—

'वीणावादन तत्वज्ञः श्रुति जातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति ॥'

श्रुति जाति तालों का ज्ञाता, वीणा वादन कुशल, मानव बिना कलेश, मोक्ष पहुँच सकता है।

कई जगह भगवान् के गुण गान करनेवालों को ही आपका साक्षात्कार मिलने की बात की गयी है—

शृण्वंति गायान्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥'

जो लोग भगवद्वैभव सुनते हैं' बार-बार कहते हैं स्मरण करते हैं, और इससे आनंदित होते हैं, वे ही आपके संसार निवर्तक पादारविंद को प्राप्त कर सकते हैं।

श्री शठकोप मुनींद्र से प्रणीत यह सहस्रगीति दिव्यप्रबंध, अत्यंत श्रेष्ठ हैं।

अवतरणिका समाप्त

सहस्रगीति—प्रथमशतक—प्रथमदशक

भगवान् के परत्व का वर्णन

सहस्रगीति का यह पहला दशक भगवान् के परत्व का वर्णन है। अर्थात् इस दशक में अनेक कारणों से भगवान् ही परतत्त्व प्रति पादित किये जाते हैं। भगवान् हमारी इंद्रियों को प्रत्यक्ष न होते हैं; और न अनुमान प्रमाण से आपके स्वरूप स्वभाव जाने जा सकते हैं। परंतु केवल शास्त्र प्रमाण से ही आप वेद्य हैं। अर्थात् वैदिकों का यह सिद्धांत है कि अतींद्रिय विषय में केवल शास्त्र ही प्रमाण हो सकता है। भगवान् के बारे में भी यही न्याय है) श्री शठकोप सूरी भी प्रकृत दशक की सातवीं गाथा में कहते हैं कि, 'भगवान् अत्युज्वल श्रुति में विराजमान हैं।' अस्तु। इस दिव्य ग्रंथ का प्रारंभ वाक्य यह है कि, भगवान् अतिश्रेष्ठ कल्याण गुण पूर्ण हैं।' अतः भगवान् के नाना वैभवों का वर्णन पूर्वक, आपके परत्व को स्थापित करना इस दशक का विषय है।

गाथा :–

उयर्वर वुयर्नल मुडैयवन्।
मयर्वर मदिनल मरुळिनन्॥
अयर्वरु ममरर्हळधिपतियवनवन्।
तुयररु शुडरडि तोळुदेळेन्मनने॥'

तात्पर्य—

अपरिच्छिन्न कल्याणगुण-गण विभूषित, अज्ञानगंध शून्य भक्ति

नामक ज्ञान के प्रदाता, नित्य सूरियों के नाथ, परमपुरुष भगवान् के पादारविंदों का प्रणाम करना ही आत्मोज्जीवन का सदुपाय है।

इस गाथा में आळवार अपने मन को ऐसा उपदेश देते हैं कि, अपने विषय में अत्यधिक उपकार करनेवाले भगवान् के पादारविंदों का प्रणाम करना आवश्यक है। आळवार का विचार है कि–अपने अज्ञान का नाशकर आपको भक्ति का प्रदान करना, इतना मात्र नहीं है कि अपने कल्याण गुणाकरत्व, नित्यसूरिनायकत्व, दिव्य मंगल विग्रह की विशेषता का प्रकाशन करना भी उसका महान उपकार है। अर्थात भगवान् ऐसे अनंत कल्याणगुणों से परिपूर्ण है: यामुनाचार्य ने बताया है कि—

'स्वाभाविकानवधिकातिशयासंख्येय कल्याण गुणगणः। आळवार अनवरत भगवान् का ध्यान करने के बाद निश्चय करते हैं कि—मानस ज्ञान गोचर जीवात्मा से एवं बाह्येंद्रिय गोचर अचिद्वस्तु से विजातीय, अपने समान अथवा अधिक वस्तु से विरहित ज्ञानानंद-घन भगवान् मेरी अंतरात्मा में है। 'भगवान् चिदचिद्विलक्षण हैं' भगवान् सर्वथा अतींद्रीय हैं।'

पूर्वोक्त भगवान् के अनुभव में मग्न होकर, आश्चर्य परवश होनेवालों का यह उद्गार है (उयर्नलम्] उयर्_ज्ञान, मुलु=परिपूर्ण नलम्-आनंद बीच में रहनेवाला मुलु शब्द अपने आगे से तथा पीछे से भी संबद्ध होता है। अर्थात भगवान् परिपूर्ण ज्ञान रूपी तथा आनंद रूपी है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म', 'आनंदोब्रह्म' इत्यादिप्रमाण हैं। आळवार अपने मन से कहते हैं कि हे मन!

पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट भगवान् मेरी अंतरात्मा है अथवा पूर्व गाथा से इसको एकान्वय कर—

'चिदचिद्विलक्षण, समाधिक रहित, मेरे अंतरात्मा भगवान् के पादारविंदों का प्रणाम कर तुम समुज्जीवित हो जाओ।'

प्रथम शतक के तीसरे गीत में='पुलनोडु' शब्द से—

'यच्च किंचित् जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायण स्थितः।'

इस जगत में जो कोई पदार्थ देखा जाता है, अथवा सुना जाता है: उन सब में, अंदर और बाहर श्रीमन्नारायण व्याप्त है। इस प्रकार सर्वत्र व्याप्त होने के कारण क्या भगवान् को उन-उन वस्तुओं के दोष भी लगेंगे? अतः इसका प्रत्युत्तर- (पुलनलन्) उनके सदृश नहीं है। स्वयं श्रुति ने इस अर्थ का स्पष्ट वर्णन किया—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।'

इसका शब्दार्थ यह है—

सुन्दर पंखवालें, परस्पर मिलकर रहनेवाले, मित्र दो पक्षी एक वृक्ष पर रहते हैं: उनमें से एक उस वृक्ष के मीठे फल खाता है: परंतु दूसरा कुछ खाये बिना ही प्रकाशमान रहता है। इस निगूढ वाणी का यह तात्पर्य है कि जीवात्मा और परमात्मा दोनों इस देव मनुष्यादि शरीर में रहते हैं: जीव तो शरीर से सुख-दुःख भोगता है और कृश बनता है: परंतु भगवान् भोग से दूर रहकर चमकते हैं।

'संभोग प्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात्' (१-२-८) ब्रह्मसूत्र में भी यही अर्थ बताया गया।

श्री पराशर महर्षि कृत ' विष्णुपुराण ' में बड़े सुन्दर रूप से बताया गया है—

' सर्वेंद्रियान्तः करण पुरुषाख्यं हि यज्जगत।
स एव सर्व भूतात्मा विश्वरुपो यतोऽव्ययः।

इसका यह अर्थ है—समस्त इंद्रिय मन व जीव रूपि यह जगत् भगवान् ही है : क्यों कि विनाश रहित आप सर्व शरीरक एवं सर्व भूतांतर्यामि हैं। अतः समझना चाहिए कि जगत व भगवान् के बीच में रहनेवाले शरीरात्मभाव रूप इस अंतरंग के संबंध को बताने के लिए शास्त्रों में उनको अभेद बताया गया है। आळवार भी आगे सातवीं गाथा में इस अर्थ का सुस्पष्ट विवरण देते हैं।

गाथा-७. 'तिडविशुम्बेरि बळि नीर निलमिवैमिशै...........

तात्पर्य :—

समस्त भूतों के और भौतिक पदार्थों के अंदर प्रवेश कर उनके नियामक, शरीरी (यानी अंतरात्मा), और प्रलय में संहारक होनेवाले भगवान् अपौरुषेय और नित्य निर्दोष वेदों से प्रतिपाद्य हैं। ' उडल् मिशै उयिरेन' इसका तात्पर्य है—जैसे जीव शरीर के प्रति आत्मा, नियामक और शेषी होता है, ठीक इसी प्रकार भगवान् भी समस्त पदार्थों की अंतरात्मा नियामक व शेषी होते हैं। श्री शठकोप सुरी से विवरित यह शरीरात्म भाव संबंध ही विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का मूलभूत तत्त्व है।

' यः पृथिव्यां तिष्ठन्, पृथिव्या अंतरो·········यं पृथिवी न वेद यमापो न विदुः ' इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में यह अर्थ बताया गया है।

अंदर और बाहर व्याप्त होकर, उन पर नियंत्रण करनेवाले एक महात्मा विराजमान हैं।

'अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्त नारायणः स्थितः। इत्यादि से यह अर्थ स्पष्ट है।

वेद अपौरुषेय होने से समस्त दोषों से दूर रहता है; अतएव वह नित्य निर्दोष प्रमाण कहा जाता है। ऐसे उज्वल श्रुति से भगवान प्रतिपादित हैं।

'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'

इत्यादि।

गाथा १० में—'परंदतण् परवैयुळ नीरु तोरुम् परन्दुळन् ....

विशाल व सुशीतल सागर में, प्रत्येक जलकण में भी, मानों अति-विशाल ब्रह्माण्ड मण्डल में इस प्रकार सारे जगत् में भगवान् परिपूर्ण विराजमान है। इस गाथा में भगवान् समस्त पदार्थों में परिसमाप्त व्याप्त बताये जाते हैं। उपनिषद में इस सर्व व्याप्ती भी परब्रह्म का लक्षण बताया गया है। उस भगवान् के उभयपादारविंदों की, हे मेरे मन्! सेवा करो।

दूसरी दशक वीडमिनमुत्तवम् अहंकार ममकार छोड़कर श्रीमन्नारायण की शरण में जाने का उपदेश प्रथम शतक के दूसरें दशक में 'वीडुमिन् मुत्तवुम् में इस दशक में आळवार गृहस्थों को देखकर कहते हैं कि यह पार्थिव शरीर अनित्य है! इससे अनुभूयमान विषयसुख भी अत्यल्प है' अतः इनमें आशा रखना सर्वथा अनुचित है। इसके मूलकारण अहंकार ममकारों को भी त्याग देना बहुत आवश्यक है। भगवान् तो समस्त चेतना-चेतन

विलक्षण है ! असीमानंद स्वरूपी है सब से मिलकर रहना आपका स्वभाव है। अगर हम अपने तन-मन वचनों से लौकिक विषयों को छोड़कर उनके चरणारविंदों की शरण में जायंगे तो हमें जरूर मोक्ष मिलेगा। सब छोड़कर आपकी आत्मवस्तु का, मुक्ति प्रदाता भगवान् की सान्निधि में समर्पण करना चाहिए। भगवान् के शेषभूत आत्मवस्तु को भगवान की वस्तु मान लेना ही पर्याप्त है।

' पत्तुडैयडियवर '

(भगवान् का सौलभ्य निरूपण)

इस दिव्य प्रबंध के पहले दशक में भगवान् परात्पर बताये गए। दूसरे दशक में उन्हीं के ही भजन करने का उपदेश दिया गया ! इस तीसरे दशक में भगवान् के सौलभ्य का वर्णन किया जाता है। भगवान् तो ' कः श्रीः श्रियः ' इस तरह स्तोत्र रत्न पद्योक्त प्रकार, साक्षात् लक्ष्मीपति, परम तत्त्व के आश्रय, पुरुषोत्तम और उभय विभूति के नायक हैं।

परत्व के दर्शन से उत्पन्न भय मिटाने के लिए भगवान् का सौलभ्य उपयुक्त होता है, और सौलभ्य के दर्शन से उनको भूल न जाये, इसलिए उसमें परत्व है। हमारे पूर्वाचार्य, भगवान् के सौलभ्य को ही इसका मुख्य व स्वभाविक गुण मानते हैं, और परत्व को उसका शोभादायक। अतः भगवान् को ' आश्रित.परतंत्र' ' भक्त-पराधीन ' इत्यादि विरुद्ध है। परांकुश, परकाल आदि संत आळ्वार भी सौलभ्य का ही अनुभव करते है। भगवान् इस गुण को प्रकाशित करने के लिए राम कृष्णादि अवतार लेते हैं।

भक्त जनों को यों भगवान् के चिंतन करने मात्र से रोमांच हो जाता है ! आंखों में आंसू उमड आते हैं, कंठ गद्गद हो जाता है, ऐसे परमात्मा के बारे में ऋषियों ने कहा कि—

'आल्हादशीतल नेत्राम्बुः पुलकीकृतगात्रवान् ।'
'सदा परगुणाविष्टो द्रष्टव्य स्सर्व देहिभिः ।'

अतः प्रत्येक मानव को ऐसे भगवद्भक्त के दर्शन अवश्य करना चाहिए । जो भगवद्गुणों से आविष्ट होकर अपहृत अथवा परवशचित्त होकर, अपने नेत्र से आनंदाश्रु बहाता हो और जिसका शरीर रोमांचित हो ऐसे महान् भक्त 'शठकोपसूरी' सौलभ्य के सीमाभूत भगवान् के गुणों का वर्णन करते हैं ।

गाथा :—

'पतुडै यडियवर्कॆलियवन् पिरर्हळुकरियवित्तन् ।

भक्ति संपन्न दास जनों को सुलभ, कमल पुष्प वासिन श्रीमहालक्ष्मी जी से प्रार्थित हमारे स्वामी मक्खन की चोरी में ओखली में बांधे गये । यह इसके सौलभ्य की सीमा भूमि है ।

मूल गाथा में 'भक्ति संपन्नों के लिए सुलभ' कहने से यह अर्थ मालूम पडता है कि इस आत्मा की, अपने अपने स्वरूप के अनुरूप संपत्ति भक्ति है ।

रावण से तिरस्कृत विभीषण आसमान में खडे रहते समय वाल्मीकी महर्षि ने 'अंतरिक्षगतः श्रीमान्' कहा । उस समय विभीषण की श्री

कौन सी थी ? बस ! यही थी कि प्रभु की सेवा करने की इच्छा। भगवान ऐसे भक्ति संपन्नों को सुलभ है।

श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन के सारथि बनकर, उसकी आज्ञा का पालन करते हुए उभय सेनाओं के बीच में उसका रथ खडा कर दिया। ज्ञानियों का कहना है कि 'भक्ति क्रीतो जनार्दनः' माने भगवान् भक्ति से खरीदे जाते हैं। श्रीकृष्ण एक दिन मक्खन की चोरी करते पकड़ गये यशोदा ने उसे ओखली में बाँध देना चाहा वहीं पड़ी हुई रस्सी को लिया, किंतु रस्सी टुकडी-टुकडी थी एक हाथ से श्रीकृष्ण को पकडकर, दूसरे हाथ से उन टुकडियों को जोड़कर लंबी रस्सी बना दी ! परंतु भगवान् की माया अत्यद्भुत है। उस माया शिशु को रस्सी कम पड़ी। आखिर यशोदामैय्या थक गयी। उन्होंने सोचा कि 'जाने दो, इस समय छोड़ फिर मिल गया तो ठीक-ठीक खबर लूँगी।' तब श्रीकृष्ण ने सोचा कि ओह ! माताजी थक गयी हैं, मुझे छोड़ना चाहती है। इस अवकाश को छोड़ना नहीं चाहा इसलिए वह अपने को संकुचित कर दिया। उपनिषत् भी कहता है कि भगवान से छोटे से छोटे हैं और बड़े से बड़े 'अणोरणियान् महतो महीयान्' अब यशोदा खुश होकर आपको ओखली में रस्सी से बांधकर, चली गयी। ओखली में बंधे हुए कृष्ण शिशु अपने को छुडाने में अशक्त होकर दुःख का अभिनय करते हुए रोने लगा आळवार भगवान के इस सौलभ्य से गद्गदित होकर छेः महीने मोहित हो गए। इसके ध्यान से आळवार का हृदय पिघल गया।

' यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह, '

'यद्वाचाऽनभ्युदितम् '

इत्याद्युपनिषद के अनुसार भगवान् के स्वरूप व स्वभाव इतने विलक्षण होते है कि बड़े-बड़े ज्ञानी लोग भी उसको ठीक नहीं समझ सकते।

भगवद्गीता में भगवान् ने यह विस्तृत उपदेश दिया।—

'मच्चिता मद्गतप्राणाः' 'मन्मना भव मद्भक्तः' इत्यादि अनेक श्लोकों में प्रतिपादित भक्तिमार्ग में चित्त लगाकर 'रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते' इत्युक्त वासना निवृत्ति भी अभी हो जाय। इस प्रकार अन्य मार्गों को छोड़कर एकनिष्ठ भगवद्भक्ति में लीन होकर रहना चाहिए। आळवार कहते हैं। कि 'मैं तो नीलमेघश्याम के दिव्यमंगल विग्रह काही ध्यान करता हुआ, तीनों लोकों को नापनेवाले उनके श्रीचरणों की ही त्रिकरण से ध्यान करूंगा।

भगवान् ने देवताओं के लिए समुद्र का मथन किया प्रयोजनांतपर देवों के लिए अमृत देनेवाले भगवान्, भक्तों के लिए अत्यंत सुलभ होते हैं।

'अक्षैरय मड़नाराय'

भगवान् को भेजना—

एक सौ दशकवाले इस ग्रंथ में तिहत्तर (७३) दशक आळवार की निजीवाणी से, और दूसरे सत्ताईस दूसरों की वाणी अथवा भावना से निबद्ध हैं। इनमें सात दशक माता की वाणी से, सत्तर दशक पुत्री की वाणी से और तीन दशक सखी की वाणी से गाये गए हैं।

इसका कारण क्या है? स्त्री होकर पुरुष का सौंदर्य देखना आनंददायक है। इसी तरह पुरुष होकर स्त्री का सौंदर्य देखना आनंददायक है। इसी न्याय से असीम सौंदर्यनिधि पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायण का अनुभव करना चाहनेवाले आळवार को स्त्री भावना अच्छी लगी। अतः ऐसी स्त्री भावना से आपने ऐसा परमविलक्षण भगवदनुभव किया। जो ऐसी अनुभूति कथंचिदपि नहीं बन सकती।

आचार्यों का यह सुन्दर वचन है कि—

'स्वामित्वात्मत्वशेषित्व पुंस्त्वाद्याः स्वामिनो गुणाः।
स्वेभ्यो दासत्व देहत्व शेषत्व स्त्रीत्व दायिनः ॥'

इसका यह भाव है—समस्त शास्त्र पुकारते हैं कि भगवान् सब के स्वामी, आत्मा शेषी, तथा पुरुष हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सभी आत्माएँ भगवान् के दास, शरीर, और शेष, तथा स्त्री हैं। तात्पर्य है कि यदि भगवान् स्वामी होंगे तो हमें उसके दास होना ही चाहिए। एवं

जब वे आत्मा होंगे तब हमें ' जगत्सर्वं शरीरं ते इत्याद्युक्त प्रकार उनके शरीर होना चाहिए। पुरुषोत्तम भगवान् के उपयुक्त सब चेतन जीव स्त्री है। आळवार की भक्ति नायिका की भावना में होती है। अतः उनका वर्णन करने के लिए आप माता, पुत्री अथवा सखी की भावना को अपनाते हैं।

माता की वाणी से यह सुदृढ़ अध्यवसाय प्रकाशित किया जाता है। भगवान् बिना कारण हमारे रक्षक हैं। पुत्री की वाणी भगवदनुभव में असीम त्वरा बताती है। सखी की वाणी तो अनन्य हेत्वरूपि नायिका के प्रधान स्वरूप का वर्णन करती है। पुत्री तथा नायिका एक ही व्यक्ति हैं।

इस सहस्रगीति में सत्रह दशक पुत्री की वाणी हैं। इनमें चार दशक अपने प्राण वल्लभ परमात्मा के पास नायिकाकृत दूत प्रेषण के रूप में। इनमें प्रकृत दशक प्रथम है। आगे छठे शतक में दो दशक और नवें शतक में एक दशक ऐसे विराजते हैं।

आळवार के नायक तो साक्षात् भगवान् ही हैं, जो सर्वत्र विराज मान हैं। अतः सन्निहित भगवान् के पास दूत भेजने की आवश्यकता क्या! परंतु इस रूप में वे भक्तों के अनुभाव्य नहीं होते : किंतु दिव्य मंगल विग्रह विशिष्ट, श्रीवैकुंठ क्षीराब्धि, श्रीरंग, वेंकटाद्रि, हस्तिगिरि, यादवाद्रि इत्यादि दिव्य देशों में विराजमान भगवान् ही भक्त प्राप्य हैं।

'ब्रह्मविदाप्नोति परम् ' परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ' इत्याद्युपनिष द्वाक्य भी घोषणा करते है। अतः यह अर्थ निश्चित् हुआ कि दिव्य देश निवासी भगवान् ही भक्त प्राप्य हैं।

आळवार पक्षी से कहते हैं कि—

हे सुन्दर पक्षवाली बगले की स्त्री ! मेरे प्रति तुम दया करो। तुम अपने सुन्दर पक्षवाले पति के साथ, मुझ पर दया करो। तीक्ष्ण पक्षयुत गरुडध्वज भगवान् के पास मेरी दूती बनकर जाओ।

'मच्चित्ता मद्गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्' इत्यादि भगवद्गीतोक्त प्रकार, एक दूसरे से भगवद्गुणों का संकीर्तन करते हैं। कमल नयन भगवान्—'पतिं विश्वस्य' इत्यादि वेद वाक्योक्त प्रकार समस्त लोकों के स्वामी को 'मेरे भगवान्' कहना विलक्षण प्रेम का द्योतक है।

आळवार हंस पक्षी से कहते हैं कि आप शास्त्रविधि से विवाहित है अतः तुम्हारा संयोगनित्य है। मेरा तो भगवान् से गांधर्व विवाह ही हुआ। फलतया मुझे नित्य वियोग ही प्राप्त हुआ है। यदि मेरा विवाह होता तो विरह से संतप्त होकर उन्हें संदेश पहुँचाने के लिए अब तुम्हारे पैर न पकडता। विधि शब्द का 'भाग्य' भी एक अर्थ है।

इस गाथा में क्रौंच पक्षियों का संबोधन किया गया है। कुररी नामक एक पक्षी प्रसिद्ध है। क्रौंच भी इसी जाति का है। यह पक्षी गण क्षण भर के भी वियोग का सहन नहीं कर सकता। क्रौंच पक्षी की भांति भक्त क्षणमात्र भी भगवद्वियोग का सहन नहीं कर सकता हैं।

'माता पिता भ्राता निवासः शरणं सुहृत गतिः नारायणः' उपनिषद् के अनुसार प्रत्येक की रक्षा करनेवाला नारायण है। गोपियाँ जब विरह से दुःखी हुई थी तब श्रीकृष्ण—

'तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बर धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथः ।'

पीतांबर और दिव्य मालाओं से अलंकृत मंदहास दिखाते हुए भगवान् उनके सामने प्रकट हुए ऐसी ही परिस्थिति मेरी भी हो जाये। भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा करनेवाले आळ्वार सोचते हैं। भ्रमर तथा शुक इत्यादियों से भी भगवान् के पास संदेश भेजते हैं। हे लक्ष्मीपति मेरे अपराधों पर ही नजर डालकर कृपा न करोगे! लक्ष्मीजी का सिद्धांत है कि— न कश्चिन्नापराध्यति संसार में अपराध न करनेवाला कोई नही है। आळ्वार का मानसिक दुःख सहा नहीं जाने के कारण हंस, शुक और सारिका से बताते हैं।

पांचवें दशक में भगवान् के सौशील्य का वर्णन है। आळ्वार के संदेश पानेवाले भगवान्, उसे गजेंद्र के आर्तनाद के सदृश मानकर अति शीघ्र ही उनके सामने प्रकट हुए: तब आळ्वार ने उनके अप्रमेय परत्व के दर्शन करते हुए, सौलभ्य, सौशील्य इत्यादि गुणों को भूलकर परत्व का ही ख्याल कर सोचा कि परात्पर इस महात्मा को क्यों कर बुलाया हाय! आळ्वार अपना नैच्यानुसंधान करते हुए, भगवद्विषय में अपने प्रवेश के लिए पछताते हैं। भगवान के अनेक गुण होते हैं— व्यापकत्व, नियन्तृत्व, शरण्यत्व, शक्तत्व, सत्यसंकल्पत्व, सत्यकामत्व आपत् सखत्व इत्यादि इन सब में जगत्कारणत्व ही सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। आळ्वार ने परत्व की याद करते हुए भगवान् से दूर भागना चाहा। किंतु तुरंत उन्हें उसके शील गुण की याद आयी=तब उन्होंने कहा कि-'मुझ पापी पर ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मैं आपके मधु बहनेवाले श्रीपाद को प्राप्त करूँ। महालक्ष्मी से विभूषित वक्षवाले माधव। भगवान के नेत्र सौंदर्य का वर्णन करनेवाले आळ्वार उनका कृपा कटाक्ष पाना चाहते हैं।

बड़े-बड़े ज्ञानियों से जानने में अशक्य, सुगंध सुशीतल व मनोहर तुलसी-मालाधारी 'श्रीकृष्ण' लक्ष्मीपति का सेवन करना चाहता हूँ।

प्रथम शतक के पंचम दशक का सातवाँ गाथा आळवार और भगवान् के बीच का संभाषण है। भगवान् ने आळवार के नैच्यानुसंधान देखकर कहते है कि-हे मुनि सार्वभौम सुनिये — मैंने सारे भूमंडल को निगलकर बाहर निकाल दिया। तब मुझे यह भय हुआ कि पेट में थोडी मिट्टी रह गयी होगी और मानवों की भांति मुझे भी अजीर्ण का रोग होगा। इस रोग का निवारण करने के लिए मैंने व्रज में मक्खन खाया। आळवार ने कहा कि आपने प्रलयकाल में जगत को निगल दिया और सृष्टिकाल में उसे बाहर निकाल दिया। परंतु वह कब की बात है? और व्रज में मक्खन खाने की बात कब की है? दोनों के बीच में बहुत समय का अंतर है। अतः आपकी बात सर्वथा असंगत मालूम पड़ती है। तब भगवान् ने कहा कि —' हे मुनिवर! आपने मेरे प्रश्न का उत्तर भी नहीं दिया —अब आप ही फिर ठीक सोचकर मेरे प्रश्न का योग्य उत्तर दीजिए।' आळवार ने स्पष्ट बताया कि मेरा तो यह अभिप्राय है कि आपने भक्तों के कर स्पर्श से पवित्र बने पदार्थ को परम भोग्य मानते हुए ही मक्खन खाया।' फिर भगवान ने कहा ' हे मुनिवर! यह तो बहुत प्रसन्नता की बात है कि आप ठीक तथ्य जानते है। ठीक है। अब जान लीजिए कि वह मक्खन मुझे जितना मधुर लगा, आपका संश्लेष भी इतना ही मधुर लगता है।

आळवार ने अनेक कृष्ण चेष्टितों का स्मरण किया हैं। अतः अक्रूर, उद्धव आदि से श्रीकृष्ण के आलिंगन, पूतना के स्तन्यपान वृत्तांत आदि इस दशक में हैं।

प्रथम शतक के छठे दशक में भगवान् के प्रधानभूत विशेषण यही कि समुद्र को मथकर, देवों को अमृत देनेवाले है। किंतु परम भोग्य भगवान को समझने में वे अशक्त थे। आळवार श्रीरामावतार की चर्चा का विचार करते हैं कि रावण का संहार करनेवाले भगवान के श्रीपादों का प्रणाम करूँ। शास्त्रों का यह सिद्धांत है कि विषय संग छोड़ देने के बाद किया जानेवाला भगवदाश्रयण ही फलप्रद होगा। इसलिए कहा है कि—

'परमात्मनि यो रक्तः विरक्तोऽपरमात्मनि।'

शरणागति करनेवाले विभीषण भी—

'त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः।'

श्रीरंगनाथ भगवान की शरणागति करनेवाले रामानुजाचार्य ने भी- 'पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखिन, गुरून्। रत्नानि धन धान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च। सर्वं धर्मांश्च संतज्य सर्व कामांश्च साक्षरान्। लोक विक्रांत चरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो।

आळवार भी इतर संग परित्याग करना ठीक कहते हैं। पूर्वोक्त अतिश्रेष्ठ पुरुषार्थ देनेवाले भगवान्, लक्ष्मीनाथ होते हुए वह फल देंगे। श्री, अथवा लक्ष्मीजी का यह लक्षण शास्त्रोक्त है—

'लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः।
ममापि च मतं ह्येतत्...........................

अर्थात महर्षि लोग लक्ष्मी जी को पुरुषकार बताते हैं। दिव्यौषध है। आचार्यों से बताये गए एक वेदवाक्य —

'यह आत्मदा बलदाः' कहता है।

'आत्मानं ददातीति आत्मदाः।

भगवान् अपने भक्तों को स्वयं अपने को ही प्रदान करते हैं, भगवान् ने नंदगोप यशोदा आदियों को स्वात्मदान कर दिया उससे बल प्राप्त करने के कारण वे स्वयं दिव्यौषत्र हैं। गोपालकृष्ण के रूप में अवतार लेकर, दूध मक्खन इत्यादि की चोरी के अपराध में गोपों से मार खानेवाले, माया चेष्ठित करने में समर्थ, मुझे माणिक्य के सदृश ज्योतिर्मय अपने दिव्य मंगल विग्रह का अनुभव देनेवाले परमोपकारक है, तथा परिशुद्ध अमृत के सदृश अति मधुर भगवान् का पुनः पुनः अनुभव करते हुए मैं संसारिक सारे दुःख से निवृत्त हुआ। भक्तों की वाणी में परमात्मा के माधुर्य के बारे में—-

चरणौ मधुरौ चरणं मधुरं मधुराश्चरणाङ्गुल्योपि दश।
चरणा भरणावलिका मधुरा मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥'

मथुरानाथ श्री नंद नंदन के चरण, चरणतल, चरण की उंगलियां, चरण के आभूषण इत्यादि सभी मधुर होते हैं।

'मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं रुदितम।
अदरं मधुरं नटनं मधुरं मधुराधिपते राखिलं मधुरम्॥'

मथुरानाथ नंद किशोर के मुख नेत्र, हँसी, रोदन, चलन, नर्तन, इत्यादि सभी मधुर ही होते हैं।

'दधि मधुरं, मधु.. ....

लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण की दिव्य कथा, लोक में मधुरतया प्रसिद्ध है। मीठा दही, मधु, द्राक्षा, मिश्री इत्यादि वस्तुओं से बढ़कर मधुर होती है। आळवार भी प्रकृत गाथा में श्री कृष्णचन्द्र की किसी एक विलक्षण चेष्टा की भोग्यता का अनुभव करते हैं। इन वृत्तांतों का संकीर्तन ही अति भोग्य होता है। भगवान ने ही गीता में—' जन्म कर्म च में दिव्यम् ।' कहा है। अत: भक्त लोग भी उन्हीं को परम भोग्य मानते हैं। आळवार ने इस सप्तम दशक में अनुभव किया कि—

एक दिन श्री कृष्ण चोरी से किसी एक गोपी के घर घुसकर कमरे में सुरक्षित मक्खन खाते रहे।

इतने में घरवाली गोपी ने उन्हें देख लिया। वह रुष्ट तो अवश्य हुई। परंतु कृष्ण को कुछ नहीं कर सकी। फिर भी कृष्ण कहीं बाहर भाग न जाये अत: किवाड़ बंद कर यशोदा को लिवालाने के लिए उसके घर गयी। लेकिन वहाँ क्या देखती है याने श्रीकृष्ण ओखली से बांधा रो रहा है। बेचारी यह दृश्य देखकर स्तब्ध हो गयी।

आळवार ने मानों अपने को कृत कृत्य बताते हुए कहा कि— अज्ञान का निरसन करते हुए मेरे मन में नित्य निवास करनेवाले, मेरे ज्ञान व भक्ति बढ़ानेवाले, मनोहर तेजोराशी के सदृश, नित्य सूरियों के नाथ उस भगवान् को मैं क्यों छोड़ूँ!

श्रीकृष्ण ने जैसे व्रजनिवासिनी गोपियों के सामने प्रकट होकर नानाविध चेष्टा करते हुए अपने वश कर दिया, इसी प्रकार उन्होंने मुझको भी नाना चेष्टितों से अपने वश बनाकर अपनी भोग्यता में अपहृत चित्त बना दिया।

दिव्य प्रबंधों में आळवार, तथा अन्यत्र भक्त लोग जो अपने भगवत्संश्लेष अथवा विश्लेष की बात करते हैं, ये सभी अनुचित-सी प्रतीत होती है। तथापि भगवान् के दिव्य मंगल विग्रह से ही संश्लेष-विश्लेष की ये बातें की जाती।' अर्थात् भक्तलोग भगवान् के दिव्यात्म स्वरूप से मिलकर रहने मात्र से अपने को कृतार्थ अथवा प्रसन्न नहीं मानते, किंतु सदा उनके नित्य मंगल विग्रह के दर्शन इत्यादि अनुभव करना चाहते हैं, परंतु ये दर्शन कभी मिलते हैं और कभी नहीं होते। जब यह अनुभव मिले तब संश्लेष है और जब यह न मिले तब विश्लेष है।

' इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः '

इत्यादि पुराणरत्न स्पष्ट कहता है कि भगवान् भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से उनके और अपने इष्ट (सुन्दर दिव्य मंगल विग्रह लेते हैं)। इस तरह संलेश्ष-विश्लेषों की बाते ठीक संगत होती हैं।

कंस प्रेरित नानाविध असुरों के वध का विचार करते हैं। वेंकटाद्री में निवास करने का उद्देश्य है कि भूलोक वासियों और देवताओं दोनों पर कृपा करें।

तैत्तरीय यजुस्संहिता के चौथे कांड के छठे प्रपाठक में यह एक वाक्य है—

' चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।'

इसका यह अर्थ है कि भगवान् देव और मानवों के नेत्ररूपी है। आळवार मुख से सर्वत्र आप्त होनेवाले हमारे नाथ भगवान् अपने सुन्दर हाथों में शंख चक्रों का धारण करते हैं। एक मात्र कृष्णावतार में शंख

चक्र धारण कर अवतार किया ।—' ज्ञातोऽसि देव देवेश । शंख चक्र गदा धर ' लेकिन भगवान हमेशा दिव्यायुधों से अलंकृत है । इसका उदाहरण श्री रामावतार में हनुमान उनसे पूछते हैं कि—' आयताश्च सुवृत्त श्च बाहवः परिघोपमाः । सर्व भूषण भूषार्हः किमर्थं न विभूषिताः ।' अर्थात् प्रभु । विशाल, वेलन के समान, परिघ सदृश, व समस्त विध आभूषण पहनने योग्य अपने बाहुओं को आपने क्यों कर नहीं सजाया ।

मंडोदरी भी रावणवध के बाद कहती है कि—

' व्यक्तमेव महायोगी· · · · ·....शंख चक्र गदाधर ।

श्री रामचन्द्र साधारण मानव नहीं है ; किंतु परम पद में विराजित चतुर्भुज श्रीमन्नारायण ही है ।

ऐसे भगवान् केवल ' पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो में भक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्तुपहृत मश्नामि प्रयतात्मनः ।। (गीता)

अर्थात् जो कोई भी पत्र, पुष्प फल अथवा केवल पानी का अर्पण करेगा, सो मैं भक्ति-पूर्वक दिए हुए उन सब को स्वीकार करता हूँ । भगवान् के परत्व और सौलभ्य दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण है । ' सर्व कारण भूत भगवान् सुशीतल तुलसीमाला पहने हुए भक्तों की रक्षा करते हैं ।

आळवार भक्तों से कहते हैं कि ' आप क्षुद्र विषयांतर संग छोड़ दीजिए ।'

शास्त्रों का सिद्धांत है कि विषयसंग छोड़ देने के बाद किया जाने-वाला भगवदाश्रयण ही फल प्रद होगा ।

'परमात्मनि यो रक्तः विरक्तोऽपरमात्मनि ।'

क्षुद्र विषयों में आसक्तिहीन होकर जो भगवान् पर प्रेम करेगा इत्यादि प्रमाण हैं।

रामानुजाचार्य जी ने श्री-शरणागति गद्य में—

'पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखी गुरुन् ।
रत्नानि धन धान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
सर्व धर्मांश्च संत्यज्य सर्व कामांश्च साक्षरान् ।
लोकविक्रांत चरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो ।

'हे प्रभो ! मैं अपने पिता माता पत्नी, पुत्र, दूसरे बांधव मित्र गुरु रत्न धन धान्य, खेत, घर समस्त धर्म स्वर्गादि समस्त भोग केवल आत्म स्वरूप प्राप्ति इत्यादि सभी वस्तु छोड़ कर त्रिलोक नापनेवाले श्री चरणों की शरण में आगया ।' एवं प्रपत्ति की विधि करनेवाले गीताचार्य ने भी प्रारंभ में 'सर्व धर्मान् परित्यज्य' कहते हैं। इतर संग का त्याग करने की आज्ञा दी। एकाकी नारायण का ही नहीं श्रीमन्नारायण का ही सेवन करने की प्रथा है। श्री, अथवा लक्ष्मीजी का यह लक्षण शास्त्रोक्त है—'लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्ट परर्षिभिः ममापि च मतं ह्येतत् . . . .॥ लक्ष्मी संबंध से उज्वल वैभववाले वे भगवान् हैं।

गोपालकृष्ण के रूप में अवतार लेकर दूध, मक्खन चोरी करने के अपराध में गोपों से मार खानेवाले श्रीकृष्ण आळवार को माणिक्य के सदृश ज्योतिर्मय अपने दिव्य मंगळ विग्रह का अनुभव देनेवाले परमोपकारक, और परिशुद्ध अमृत के सदृश अति मधुर भगवान् का पुनः पुनः अनुभव करते हुए मैंने संसारिक सर्व कल्मष को पार किया।

पहले शतक के दश दशकों का विषयः—

१. पहले दशक में भगवान् के वेदांतसिद्ध परत्व।

२. दूसरे दशक में अपने भगवदनुभव में सहयोग देनेवालों के साथ परोपदेश देते हैं। संसारियों का भक्ति का उपदेश देते है।

३. तीसरे दशक में भगवान् अवतार लेने से सुलभ और मोक्षप्रद बताये गए।

४. चौथे दशक में भगवान् को दूत भेजने के बहाने उनके अपराध सहत्व गुण का अनुभव किया गया।

५. पांचवें दशक में आळवार ने अपनी नीचता का अनुसंधान करते भगवान् से दूर हट जाने का विचार। भगवान् के सौशील्य गुण का अनुभव किया।

६. छठे दशक में भगवान् स्वराध बताये गए। पत्र पुष्पादि सुलभ वस्तुओं से पूजा की जा सकती है।

७. सातवें दशक में भगवदाश्रयण को।

८. आठवें दशक में–प्रार्थना की

सहस्रगीति के दूसरे शतक

प्रकृत प्रथम दशक में आळवार भक्त जनोंन्मादकत्व रूप गुण का वर्णन स्वानुभव पूर्वक करते हैं। आळवार भगवान् के विरह से बहुत दुःख पा रहे है। इससे संसार में जो दुःखी हैं उन्हें भी आप समझते हैं कि वे भी भगवद्विश्लेष से दुःख पा रहे हो!

बक पक्षी का सफेद रहना, कुररी का प्रलाप करना, सागर का सदा गरजना हवा का अविरत चलना, मेघ का बरसना, चंद्र का क्षय होना दीप का जलना इत्यादि कियाएं हैं। परंतु आळवार विरह दुःख से इतने व्यामुग्ध हुए है कि वे इन क्रियाओं को भगवद्विरह का कार्य मान रहे हैं। विरहिणी स्त्रियां सागर के तट पर जाकर अपने विरह दुःख का प्रकाशन करती है; अतः परांकुश नायिका नाम का आळवार भी सागर के पास जाकर अपने दुःख का वर्णन कर रहे हैं। वहाँ बक पक्षी को देखकर भगवान् से अपहृत चित्त समझते हैं। भक्त जन, विश्लेष दुःख देनेवाले भगवद्विषयक प्रेम को बीमारी समझते है। इससे शरीर विवर्ण हो जाते है।

इस दशक में श्रीकृष्ण की बाल्य लीलाओं में शकटासुर भंजन वृत्तांत प्रसिद्ध हैं।

कहते है कि हिरण्याक्ष का पुत्र उत्कच शापाक्रांत होकर उस गाड़ी में आविष्ट था। आळवार के अभिप्राय में, कंस प्रेरित असुर श्रीकृष्ण

को मारने के उद्देश्य से गाड़ी में घुस गया था। श्रीकृष्ण ने उसका संहार किया। आळवार दुष्ट शिक्षण के बारे में कहते है।

(आळवार) परांकुश नायिका अपने अंतः पुर में जलता हुआ दीप को देखकर कहती है कि इस दीप का शरीर क्यों इतना गरम हो गया? भगवान का विश्लेष ही कारण होगा। आळवार की भक्ति अति विलक्षण हैं।

दुस्सह विरहव्यथा भोगने के समय अपने सामने विराजकर वह दुःख दूर कर अपने को संजीवित करनेवाले भगवान् को आळवार समस्त जगत्कारण बता रहे हैं। भक्तों के दुःखी रहने पर भगवान् भक्तप्राण खुश नहीं रह सकते हैं। यथा वाल्मीकी महर्षी ने रामायण में गाया-

'अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेंद्रं विभीषणम्'।
कृत कृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह।

अर्थात श्री रामचंद्र जी विभीषण को लंकाराज्य में अभिषेक करने के बाद संतुष्ट , कृतकृत्य, ज्वर मुक्त एवं उज्वल बन गए।

दूसरे शतक के दूसरे दशक में आळवार ने नौ गाथाओं में असह्य दुःख भोगने के बाद दसवीं गाथा में सुख का अनुभव किया। ऐसे समय में परत्व व सौलभ्य, ये दो ही प्रधान हैं। इनमें भी सौलभ्य का अनुभव करने में ही आळवार की अधिक रुचि है। पहले शतक के तीसरे दशक में अर्थात उधर भगवान् के नवनीत-चौर्य व तत्प्रयुक्त दाम बंधन का चिंतन करने मात्र से आळवार मूर्छित हुए और छेः मास तक वैसे ही पड़े रहे। परत्वके अनुसंधान में उन्हें ऐसी कोई आपत्ति नहीं हुई।

'कारणंतु ध्येयः'

इत्यादि अथर्वशिर उपनिषद के अनुसार जगत्कारणवस्तु ही परतत्व हो सकती है। भगवान् के चिह्नतया,

'तस्य यथा कप्यासं पुंडरीकमेवमक्षिणी'

इत्यादिप्रसिद्ध वेद वाक्य के बताये हुए, पुंडरीकाक्षत्व का वर्णन किया गया है। हनुमान जी कहने लगे—

'रामः कमल पत्राक्षः'
इत्यादि।

आळवार के विचार हैं कि वटपत्र को अपना शयन बनाकर, सातों लोकों का धारण करने में समर्थ पेट का धारण करनेवाले श्रीमन्नारायण के विलक्षण, विचित्र हृदय को कौन जान सकता है। शास्त्रों में जगत् के सृष्टि स्थिति संहार-नामक तीनों कार्य भगवत्कृत बताये गये हैं; तथापि इनमें रक्षा करना ही उनका असाधारण स्वभाव है। श्रीकृष्ण परमात्मा रक्षा करने का स्वभाववाला है। क्या श्री रामचन्द्र भगवान् रक्षा नहीं करेंगे? कृष्णतृष्णा रूपि आळवार का यह अभिप्राय है कि श्रीकृष्णभगवान् के श्रीमुख से ही—'परित्राणाय साधुनाम्' इत्यादि दिव्यबाणी निकली; उन्होंने ही बहुधा दुष्टशिक्षण तथा शिष्टरक्षण भी किया; और 'कृष्ण एव ही लोकानात्मुत्पत्तिरपि चाप्ययः' (श्रीकृष्ण ही लोकों की सृष्टि व प्रलय करते हैं। प्रकृत दशक की पहली गाथा में भी श्री कृष्ण का ही नाम लिया गया था।

अत्यंत सुगंधि व सुशीतल तुलसी से अलंकृत, श्री कृष्ण, अनंत गरुड विश्वक्सेनादि नित्य सूरियों के नाथ, और परमपद में भी अपने सदृश दूसरे

वटपत्रपर शयन

व्यक्ति से विरहित परिशुद्ध परमपुरुष के कल्याण गुणों का कीर्तन करता हुआ ब्रह्मानंद भागी बन सकते हैं भगवान् के साथ उनके शुभगुणों का अनुभव—

'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह, ब्रह्मणा विपश्चिता।'

आळवार बार-बार भगवान् के सौंदर्य रूप-गुण और नाम संकीर्तन कर आनंदित होते थे। इस सप्तम दशक में भगवान् के द्वादश नामों का विवरण किया है। इस दशक में आँसू बहाना, निश्वास छोड़ना इत्यादि विश्लेष व्यथा के पूर्व स्मृति करते हैं, तथा अपने सभी कलेशों से छुड़ा कर आनंद मग्न मानस बना दिया है। भगवान् के इस कृपा की महत्ता को बताते हैं। श्रीकृष्ण के रूप में अवतार करनेवाले अच्युत भगवान् सर्वेश्वर के पादारविंद का ध्यान करते हैं।

अष्टम दशक में आळवार श्रीकृष्ण ने जैसे—

'दिव्यं ददामि ते चक्षुः'

तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ, कहते हुए उस दिव्य रूप के दर्शन करने में समर्थ दिव्य नेत्र का प्रदान किया, इसी प्रकार आळवार को भी भगवान् की वाचिक व शरीरक सेवा करने योग्य ऐसे कोमल मन का भी प्रदान किया। अतः इस महान अनुग्रह का यहाँ कीर्तन किया जा रहा है। आळवार जैसे पहले थे अब वैसे नहीं है। क्यों कि आज उनका मन किसी नई भावना तथा आकांक्षा से प्रफुल्लित है। वे भगवान् के उपकार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे है।

आळवार दसों इंद्रियों की तुलना रावण की याद कर कहते हैं कि हमारा मन भी पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रियां कुल दस इंद्रियों के

अधिष्ठाता होकर, संसार सागर परिवृत पांच भौतिक शरीर में स्वतंत्र प्रभु होकर राज कर रहा है। ऐसे मन को क्षुद्र विषय विरक्त और भगवान् में आसक्त बनाना, यह काम रावण को जीतने के जैसा ही कठिन है।

कल्पवृक्ष अपने याचकों के अपेक्षित सभी पदार्थों का दाता है परंतु वह दूसरा चाहे जो पदार्थ दें, अपने को नहीं देगा। भगवान् तो ऐसे नहीं; वे दूसरी वस्तुओं के साथ अपने को भी प्रदान करते हैं। अत एव श्रुति ने कहा कि—

'य आत्मदा बलदा:'

'आत्मानं ददातीति बलदाः'

अपने अनुभव करने पर्याप्त बल देनेवाला कहक है। दामोदर भगवान् प्रलय काल में समस्त चराचरों को अपने पेट में रखकर संभालनेवाले अपरिच्छेद्य हैं। रमणीय प्रभायुत नीलमणि के सदृश नित्यसूरियों के नेता श्रीकृष्ण रूप में अवतार करनेवाले आश्रितों से असीम व्यामोह करनेवाले, अच्युत भगवान् को केशवादि दशनाम विभूषित ये बारह गाथाएं सर्वेश्वर के पादारविंद को पहुँचनेवाली हैं।

अर्थपंचक का विवरण करना ही समग्र सहस्रगीति का लक्ष्य है। परमात्म स्वरूप, जीवात्म स्वरूप, उपायस्वरूप फल स्वरूप और विरोध-स्वरूप, ये पांच ही अर्थपंचक हैं। 'आचार्यहृदय' ग्रंथ में बताया गया है कि सहस्रगीति के एक सौ दशकों में से बीस दशकों में अर्थपंचक का सार संग्रह बताया गया है और अवशिष्ट अस्सी दशकों में इन्हीं का विवरण किया गया है।

इस प्रकृत दशक परब्रह्म स्वरूप का वर्णन करनेवाला तीसरा दशक है ! अर्थात्—

'उयर्वर उयर्नलम्' [१-१] तिण्णनवीडु' [२-२] 'अणैवद-रवणैमेल' [प्रकृत-२-८] और 'ओलुमतेवु' (४-१०)

चार दशक परमात्म स्वरूप प्रतिपादित अर्थ का ही फिर भी दो-तीन दशकों में विवरण हैं। इसका विवरण —

पहले दशक १-१ श्रुति का आधार लेकर, अन्वय रूप से अपने अनुभव पूर्वक परत्वे परत्व का वर्णन हुआ। दूसरे दशक (२-२) में इतिहास पुराणों के आधार पर, अन्वयव्यतिरेकों से, परोपदेश के व्याज से अवतारों में परत्व बताया गया।

परम पावन श्रीकृष्ण भगवान् के लोक नापनेवाले पादारविंदों में अपने अर्पित किए पुष्पमाला को शिव जी के सिर पर देख कर प्रसन्न अर्जुन तुलसीमालाधारी परम पुरुष का वैभव कैसे वर्णन किया जा सकता है। श्रीकृष्ण के कौन दर्शन कर सकता है? आप स्वयं समस्त पदार्थों के अंतर्यामी हैं गीता के विश्वरूपाध्याय में, स्वयं भगवान् ने ही 'पश्य में योगमैश्वरम्' कहते हुए अपना ऐश्वर्य दिखाया, अतएव अर्जुन देख सका। परिच्छिन्न वस्तुओं के द्वारा अपरिच्छिन्न भगवान् के दर्शन कैसे किए जा सकते है? 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च' इत्यादि कठोपनिषन्मत्र का अर्थ ज्ञातव्य हैं।

पिछले दशक में भगवान् का मोक्षप्रदत्व तथा उसके द्वारा उनका परत्व बताया गया। प्रकृत दशक में जीवात्मा का स्वरूप, जो भगव-त्परतंत्रता रूप है, बताया जाता है। अतएव पूर्वाचार्यों ने इसे परम

रहस्यार्थ मानते थे। हमारे आचार्यों के सिद्धांत के अनुसार, अष्टाक्षर महामंत्र के बीच में रहनेवाला नमः पद दूसरे पदों से अधिक महात्म्यवाला होता है। श्री वैष्णव संप्रदाय में तत्त्व तो तीन हैं—चेतन, अचेतन व ईश्वर। नमः शब्दार्थ जाननेवालों का यह सिद्धांत होता है कि अचेतन की भांति परतंत्र रहना ही चेतन का भी स्वरूप है। हमें कहना पड़ता है कि यह चेतन, भगवान् का शेष होने से परतंत्र और ज्ञाता होने से स्वतंत्र दोनों होता है। परंतु नमश्शब्द, प्रभु के पास चेतन की यह प्रार्थना है कि 'हे प्रभु! मैं सर्वथा परतंत्र हूँ। संप्रदाय में शेषत्व व पारतंत्र्य, ये दो शब्द ऐसे निगूढ़ अर्थवाले होते हैं। फिर भी शेषत्व की परिपक्व दशा ही पारतंत्र्य कहलाती है।

हे चक्रहस्त श्री कृष्ण! तुम सर्वदा मेरे मन में विराज कर वहीं स्थिर प्रतिष्ठित होकर, मुझे सर्वथा अपना परतंत्र बना दीजिए। भगवान् को जन्म विरहित और अनेक जन्मवाले कहना वेदादि शास्त्रों के अनुगुण है। वेद कहता है कि—

'अजायमानो बहुधा विजायते'

माने जन्म शून्य होते हुए भी अनेक जन्म लेते हैं। गीता का भी यह प्रसिद्ध वचन है—

'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा · · · · · · · · ·संभवामि।'

इन वचनों का यह तात्पर्य है कि भगवान् चेतन की भांति पुण्य-पाप रूप कर्म के परवश होकर जन्म नहीं लेते; किंतु चेतनों के उद्धार के लिए कृपा परवश होकर अनेक जन्म लेते हैं। भगवान् 'अक्कारकनि'

है। भगवान् मधुर फल की भांति अति भोग्य हैं। घटिकाचल के चोळसिंहपुर में विराजित भगवान् का यही शुभनाम है।

वेद का उद्गार है कि 'नहि स्वः स्वं हिनास्ति' माने कोई भी अपने का ही संसार नहीं करेगा। आऴ्वार दुःखी है कि अहंकार, ममकार के परवश होकर आत्मा को अधोगति पहुँच रही हूँ। परंतु शास्त्र बताता है कि अविद्या से उत्पन्न होनेवाले अहंकार व ममकार त्याज्य हैं। अब आळवार भगवान् का कैंकर्य करने की इच्छा करते हैं। पहले शतक में वेंकटाद्री व तिरुकुरुंगुड़ि नामक दो दिव्य देशों की अखण्ड स्तुति मिल गयी थी। इस वक्त आळवार श्रीकृष्ण के मक्खन चोरी के बारे में चिंता करते हैं। कृष्ण शिशु को छींके पर का मक्खन कैसे मिलेगा! आगे पूतना संहार का भी गीत गाते हैं। द्वितीय शतक के दशम दशक में वनाद्रि के भगवान् के विलक्षण विवेचन हुआ है। पराशर भट्ट जीने सहस्रनाम भाष्य में भगवान् को 'अनिर्विण्णः' कहा है। अर्थात् अनिर्विण्णः बारं-बारं सृष्टियादि तथा उनके अपेक्षित पुरुषार्थ का प्रदान करने पर भी विषय भोग की अपेक्षा करनेवाले संसारियों के बारे में कहते हैं। आळवार 'पेरियतिरुवंदादि' में 'शोम्बादिप्पल्लुरुवै' येल्लाम पडर्वित्त वित्ता।' इसका अर्थ है कि आलस्य छोड़कर इस विशाल जगत् की सृष्टि करनेवाले हे भगवान्! जगत् के चेतन जीवों का उद्धार करनेवाले रक्षक तुम ही हो।

दूसरे शतक की विशेषताएँ:—

१. आळवार् स्वयं भगवद्विश्लेष से दुःखी होकर दूसरे प्राणियों को भी वैसे ही दुःखी मानकर समवेदना प्रकट करते हैं ।

२. विश्लेष दुःख को पार कर आळवार संसारियों को, इतिहास व पुराणों के अनुसार भगवान् के परत्व का उपदेश देते हैं.

३. आळवार, भगवान् का विलक्षण अनुभव करते, उसमें सहयोग देने समर्थ व्यक्तियों को ढूँढते, व्यस्त संसारियों में किसी को नहीं पाते हुए, नित्य-मुक्तों का सहयोग पाना चाहते हैं।

४. आळवार भगवत्संनिधि में आत्मार्पण कर फिर पछताते हैं।

५. आत्मा का भगवद्दास्य अनादि है; अचित्संबंध के पहले ही इसका भगवत्संबंध है।

६. भगवदनुभव की अपेक्षा भगवद्भक्तानुभव को श्रेष्ठतर बनाना ।

७. चौथे दशक में आळवार दुःखी हो विरहिणी नायिका की अवस्था प्राप्त कर, माता की वाणी से अपना दुःख प्रकाशित कर रहे हैं।

८. आळवार की आर्ति देखकर भगवान् नित्य सूरियों के साथ पधारकर उन्हें ब्रह्मानन्द का प्रदान करते है ।

१० भगवान् का आश्रित परतंत्रता हैं।

११. भगवान् ही हमारे उपाय व उपेय है।

१२. भगवान् के विभव और अर्चावतार का वर्णन ।

१३. भगवान् को अकारक्कानि कहने का भाव।

१४. अहंकार ममकारों की क्रूरता ।

१५. आळ्वार का वनाद्रि व वेंकटाद्रि के महत्व बताना ।

१६ भगवान् आलस्य छोड़, क्या कर बारंबार जगत् की सृष्टि करते हैं!
'अनिर्विण्ण' नाम पर श्रीपराशर भट्टार्य का भाष्य।

तीसरा शतक

वेद की अनेक शाखाएं होती है इन कारणों से वेद को अनंत कहते हैं। इन समस्त वेद भागों का मुख्य लक्ष्य तो भगवान् के शुभ-गुणों का वर्णन करना है। अतएव गीता में —

'वेदैश्च सर्वै रहमेव वेद्यः' कहा गया है।

इस गाथा में गजेंद्र को जो भगवान् ने दर्शन दिये इसका विवरण किया गया है। श्री कूरेश जी ने भी कहा है—

'भगवान् सर्वत्रैव ह्यगणित महामंगल गुणः'

अर्थात् भगवान् पर व्यूहादि सभी अवस्थाओं में आप अनंतकोटि शुभगुण भूषित ही रहते हैं। वामनावतार की विशेषता का वर्णन कर त्रिविक्रमावतार की श्रेष्ठता को बताते हैं। तुरंत आळ्वार कृष्णवतार के सारथी की याद करते हैं। चाबुक से ही सारी कौरव सेना का विनाश कर अर्जुन को विजयी बनाया। भगवान् की सर्व व्याप्ति के विषय जीव व परमात्मा के बीच का यह अंतर समझना चाहिए। भगवान् विभु हैं! अतः उनका स्वरूप सर्वत्र व्याप्त है। किन्तु आळ्वार प्रकृत गाथा में प्रार्थना करते हैं कि गजेंद्र और प्रह्लाद को जितनी देर याने क्षण में दर्शन देकर उन्हें खुश किया वैसे ही मुझे भी अनुग्रह कीजिएगा (फिर दूसरा कौन आपके अतसीकुसुम के सदृश दिव्य मंगल विग्रह का अनुभव करेगा!) क्या आप 'न ते रूपं न चाकारो..........

भक्तानांत्वं प्रकाश से सत्य कहिए कि आप किधर मुझे अपने दिव्य दर्शन देना चाहते हैं। तुरंत श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं कि हे मन परम पुरुष श्री कृष्ण को कब प्राप्त करोगे। कहते हैं कि मित्रामित्रों की गोष्ठियों में सर्वत्र समरूप विख्यात शुभगुणवाले हे श्री कृष्ण ! परंज्योति स्वरूप भगवान् ! आपके श्रीपदों के दर्शन पाने का इच्छुक हूँ। तुरंत आळवार के सब दुःख दूर हुए, शास्त्रवेद्य, और कृष्णावतार लेने के कारण भगवान् को मैंने अभी दर्शन किये।

तृतीय शतक के तृतीय दशक में श्री बालाजी वेंकटेश्वर लक्ष्मीनाथ के सौंदर्य लावण्यादियुत दिव्य अवयवों का अनुभव अत्यद्भुत होता है। अतः दिव्य नेत्रों का अनुभव किया जाता है भगवान् के दिव्य ओष्ठ अर्चावतार के नियम भी लांघकर अव्यक्त मधुर मंदहास से अलंकृत होते है। अंत में भगवान् की भांति उनके अधिष्ठान दिव्य क्षेत्र का भी अनुभव करना आवश्यक होता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि वेंकटाद्रि पर तो परत्व की भांति सौलभ्य ,सौलभ्य की भांति परत्व दोनों गुण परिपूर्ण प्रकाशते है।

वेंकट शब्द का अर्थ है पापदाहक। कट-पाप वेम्—जल जायंगे। कृष्णावतार में भगवान् ने अति वर्षा के निमित्त अत्यंत दुःखी अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को ही उठाया। कृष्णावतार में प्रदर्शित सौलभ्य व्रज इत्यादि कतिपय स्थलों के लिए सीमित था ; त्रिविक्रमावतार का सौलभ्य तो सारे भूमंडल में व्याप्त हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वस्व हैं। आळवार के विचारों को देखने पर ज्ञात होता है कि सारे विश्व की सब वस्तुएँ भगवान् के स्वरूप ही हैं। भगवद्गीता में भगवान् के विश्व रूप को देखकर अर्जुन ने 'तदेव में दर्शय देव रूपम्' कहा।

आळवार ने भगवान् को औषध कहा, क्षीर समुद्र में उत्पन्न अमृत कहा, तथा अमृत के सदृश इक्षुखण्ड कहा। इतना पर्याप्त नहीं समझ कर मधुर मधू कहा। इसी तरह वेद पुरुष ने 'रसो वै सः' (वह रसमय है), 'एतदेवामृतम्' (यही अमृत है) 'देव मधु' है इत्यादि कहा। भगवान् को औषध कहते है। किंतु औषध कडुआ होना हैं। किंतु भगवान् पर 'व्यामोह प्रशमौषधम्' तथा श्रीकृष्ण दिव्य औषध' अति मधुर होता है। चेतनों का उद्धार करने की उत्कंठा से उन्हें करण कळेबर देकर, फिर उनके द्वारा संस्तूयमान, तथा मधु बहनेवाली पुष्पयुत तुलसीमाला से समलंकृत श्री कृष्ण को उज्वल मणि कहा गया है।

पाचवें दशक में कंसवध वृत्तांत कहने के बाद आळवार ने कूरेश जी के वरदराज स्तव के गीत के विचारों को कहा कि—

'यदपराध सहस्रमजस्रनं त्वयि शरण्य!

हिरण्य उपावहत्! वरद! तेन चिरंत्वमविक्रियो विकृतिमर्भक निर्भजनादगाः॥'

हे शरण्य भगवान्। हिरण्यासुर ने अनेक समय तक आपके विषय में निरंतर अपराध ही किया। आपको क्रोध नहीं हुआ। परंतु बालक प्रहलाद की वाणी से आप विकृत हो उठे। यहाँ विदुर वृत्तांत भी है। भगवान् नाना योनियों में अवतार लेते हैं। इसका चिंतन मात्र से बड़े ज्ञानियों को द्रुत हृदय बना देते हैं; कूरेश जीने अतिमानुष स्तव में—

'शील: क एष तव हन्त। दयैकसिन्धो।

क्षुद्रे पृथग्जनपदे जगदण्डमध्ये।

अत्रावतीर्य ननु लोचन गोचरोऽभूः ॥'

हे दया सागर। परिपूर्ण आप प्राकृत जनों के निवासस्थान इस ब्रह्मांड के बीच में क्षुद्र जनों के लिए अवतार लेकर सबके नयन गोचर हुए ; ओह ! आपका यह शीलगुण कैसा विलक्षण है ? भगवान् के परत्व का प्रधान लक्षण है कि—

'कमल नयन', यामुनाचार्य जी ने भगवान् के परत्व का वर्णन करते हुए यह प्रश्न किया कि—

'कः पुंडरीक नयनः ?

इसका तात्पर्य है कि जो कमल नयन हो वही परदेवता है। आळवार समस्त लोकों के निर्वाहक श्रीमन्नारायण को ही कहते है ? क्षीर सागरशायी, देवाधिदेव, पर व्यूहादि के साथ लंकापुरी को जलानेवाले श्रीरामचंद्र के विभवावतार का भी स्मरण कर आळवार भगवान् का भजन करते हैं। उसका स्मरण मात्र से 'पावनस्सर्वलोकानां त्वमेव रघुनन्दन' आपके कमल सदृश नेत्र के दर्शन करनेवाले भी कहते हैं कि

'चक्षुषा तव सौम्येन पूतोस्मि रघुनन्दन'

आळवार कभी-कभी एक ही गीत में अनेक विचारों को गूंथकर सुन्दर विमर्शक बन जाते हैं। अतः छठे दशक में श्रीकृष्णावतार और रामावतार के परत्व और सौलभ्य का विवरण कहते हुए, तुरंत श्रीकृष्ण शिशु पालने में शयन करते थे तब ब्रह्म शिवादि देव भेंट ले उनके पास आते है। यशोदा माता द्वारा ओखली में बंधवाना, नल-कूबरों का शाप

बिमोचन, इनके साथ-साथ श्रीकृष्ण पांडवों के दूत बनकर जब दुर्योधन की सभा में प्रवेश एक दृश्य काव्य के समान है—

'दृष्ट्वा कृष्णं समायान्तं प्रतपन्त मिवौजसा।
यथार्हं केशवे वृत्तिमवशाः प्रति पेदिरे'।।

दुर्योधन कृष्ण का तिरस्कार करना चाहते थे। किन्तु श्रीकृष्ण भगवान् ने सभा में प्रवेश किया। तपनेवाले सूर्य के सदृश उनके तेज से आकृष्ट हो सभा सदों के साथ दुर्योधन भी अपना संकल्प भूलकर खड़े हो गए। गोपियों के साथ—

अंगाना मंगनामन्तरे माधवो माधवं माधवं
चान्तरेणाङ्गना...............

'कुरवै कूत्तु' अति विलक्षण नृत्य है। श्रीकृष्ण इस कला में बड़े निपुण हैं। आळ्वार मनसा ध्यान पूर्वक स्तुति करते हैं। इसलिए पराशरभट्ट जीने 'कृष्णतत्व' बिरुद दिया। तृतीय शतक के षष्ठ दशक में अर्चावतार के सौलभ्य को बताया। इस नौवें गीत में पूर्वार्ध भगवान् के वैभव का और उत्तरार्ध अर्चावतार सौलभ्य का वर्णन करते हैं

'माता पिता भ्राता निवासश्शरणं सुहृद्गतिर्नारायणः'

इत्याद्युपनिषद्, 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च 'सखात्वमेव' लक्ष्मण ने कहा—'भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः भगवान्- 'भूतानां योऽव्ययः पिता' भगवान् समस्त भूतों के शाश्वत पिता है।

इस प्रमाणवाक्य को स्मरण करना—

'पितृ मातृसुत भ्रातृ दारामित्रादयोऽपि वा।
एकैक फल लाभाया सर्व लाभाय केशवः॥'

अर्थात् पिता माता पुत्र भाई पत्नी मित्र इत्यादि बंधुजन, एकैक प्रकार का ही उपकार कर सकते हैं। भगवान् तो एक ही सभी का उपकार करता है।

'कडल्वण्णन कण्णन् विण्णवर करुमाणिक्क मेन· . ·
दारुयिर· ·

सागरवर्ण परम भोग्य मणि सदृश परंज्योति स्वरूप श्रीकृष्ण का मेरी आँखें कब दर्शन करेगी। उपकारकों में श्रेष्ठ कृष्ण रूप में अवतार लेकर चक्रराज के द्वारा नाना विध उपकार करनेवाले, नीलमणि सदृश ज्योतिर्मय दिव्यमूर्ति हमारे नाथ का जो अपने हृदय में धारण करते हैं, वे ही सत्य अनेक जन्म परंपराओं में भी हमारे सुहृद रक्षक हैं, भगवद्दास्य ही आत्मा का मुख्यतम धर्म होता है। अतः १-चतुर्वेद धरो विप्रो वासुदेवं न विन्दति।

वेद भार भराक्रान्तः स वे ब्राह्मण गर्दभः॥

चारों वेदों का अध्ययन करनेवाला भी क्यो न हो, यदि भगवध्यान से विरहित हो, अर्थात भगवान् को अपने स्वामी नहीं मानता हो, वह वेद रुपि बोझ ढोनेवाला गधा है।

२. श्वपचोऽपि महीपाल! विष्णु भक्तो द्विजाधिकः। विष्णु भक्ति विहीनस्तु यतिश्च श्वपचाधमः।

हे राजन् ! विष्णुभक्त चंडाल भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है ; विष्णु भक्ति से विरहित पुरुष, वह संन्यासी भी क्यों न हो, चंडाल से भी हीन है ।

३. तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये ।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्प नैपुणम् ।। !

(वही शास्त्रोक्त सत्कर्म है जो संसारबंधन का कारण न हो ;) वही ज्ञान है जो मोक्ष का हेतु हो ।

४. आम्नायाभ्यसनान्यरण्य रुदितं वेदव्रतान्यन्वहं मेदश्छेद फलानि
पूर्तविधयस्सर्वे हुतं भस्मनि ।

तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पदद्वन्द्वाम्भोरुह संस्मृती विजयते देवस्सनारायणः ॥

यदि भगवान् श्रीमन्नारायण का सभक्ति स्मरण किये बिना ये काम किये जायेंगे, तो सब के सभी व्यर्थ हो जायंगे । वेदाध्ययन अरण्य रोदन का सम होगा । शास्त्रोक्त व्रत उपवास इत्यादि केवल शरीर क्लेश जनक होंगे । सदाव्रत रखना इत्यादि दूसरे धर्म कार्य भस्माहुति होंगे, पुण्य तीर्थ स्नान तो हाथी का स्नान मात्र होगा । भक्ति हीन हो तो इसी तरह सब कार्य व्यर्थ हैं । ऐसा अर्थ कार्य न कर भक्ति से भगवान् से प्रार्थना करें कि-हे हृदय कोही राजधानी बनानेवाले हे शरण्य ! मेरी रक्षा करो ।

बालचंद्र की चांदनी के सदृश मंदहास पसार कर उसके प्रकाश में नवनीत की चोरी कर खानेवाले हे गोपालकृष्ण ।' श्रीकृष्ण किशोर गोपों के घर में घुसकर माखन चोरी करने लगे । अंदर अंधेरा था, जो उनके मेघश्याम विग्रह की श्यामल कांति से और घनिष्ट बना । फलतः

श्रीकृष्ण यह समझ नहीं सके कि किधर क्या रखा हैं। अतः हाथ पसार कर वे इधर-उधर ढूढने लगे। अंततः एक घड़ा हाथ में लगा। यों मानकर कि अवश्य ही इसमें मक्खन है। वे मुस्कुराये. इससे उनके दांतों का प्रकाश चांदनी की भांति सर्वत्र फैल गया। फिर उस प्रकाश में मक्खन को देखकर वे उसे खाने लगे। आळवार अब कहते है कि, श्रीकृष्ण किशोर के हाथों ने इधर-उधर ढूंढते हुए मक्खन पाया इस कथा का अनुभव करते हुए मेरे हाथ भी भगवान् को ढूढते हुए इधर उधर आगे पसर रहे है। आळवार के दुःख से द्रवित भगवान् सांत्वना देते हैं कि समय आने पर फल मिलेगा।

अतः आप शांति से काल की प्रतीक्षा कीजिए। योग्य समय पर आपकी इच्छा पूर्ण होगी।'

आळवार ने कहा—साधारण व्यक्तियों के बारे में यह बात सत्य है कि उनके सभी काम कालानुगुण बनेंगे। किंतु सर्व कारण काल ही जिनके अधीन है, ऐसे आपकी बात दूसरी है महर्षियों का शपथपूर्वक वचन है—

'कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च।
ईशते भगवानेक स्सत्यमेतत् ब्रवीमि ते।'

मैं सशपथ कहूंगा कि काल, मृत्यु और स्थावर जंगम रूप सभी पदार्थों के नियामक एक मात्र भगवान् हैं।

नीलादेवी के वल्लभ श्रीकृष्ण भगवान् के निर्दोष व अवधि रहित शुभयशों का कीर्तन कर पंचभौतिक शरीर छोड़कर, उनके उभय पादारविंदों के पास आश्रय पानेवाला अपनी वाणी से जाकुनों से क्या कहूँ? मोक्ष पाना नहीं चाहनेवाले दूसरे नरस्तुति करते है किंतु आळवार का अभिप्राय है कि-

'सकल फलप्रदो हि विष्णुः'

अतः आळवार भगवान् की स्तुति करने के लिए कुछ समय तक इस संसार मंडल में विराजने को भी तैयार हैं। आळवार का विश्वास है कि भक्त जनों का पुनर्जन्म नहीं होगा। आळवार का अभिप्राय है कि त्रिलोकाधिपत्य कोई अपेक्षणीय पुरुषार्थ नहीं होता ; अतः उसका कीर्तन करना अनुचित सा दीखेगा। श्रीविष्णु सहस्र नाम की यह प्रसिद्ध फल श्रुति है—

'धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्।
कामान वाप्नुयात्कामी प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाः।

इत्यादि। इस तरह भगवत्स्तुति के ऐसे लौकिक फल बताये गये हैं। किंतु आळवार का एक मात्र उद्देश्य है कि परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा।

चौथा शतक

चौथे शतक के दूसरे दशक में आळवार अपनी स्वकीय भावना के अतिरिक्त, कदाचित नायिका, माता व सखियों की भावना से गीत गाते हैं, पहले शतक के चौथे दशक में भी मातृ भावना से गाया था। अब पुनः आळवार भावना प्रकर्ष से माता की भावना का अनुकरण कर रहा है।

'भक्ति प्रभाव भवदद्भुत भाव बंध संधु क्षित प्रणय सार रस सौधपूर्णः।'

असीम भक्ति के निमित्त आळवार के हृदय में कभी-कभी अत्यद्भुत भाव उत्पन्न होते हैं, जो प्रणय रस धार को खूब बढ़ा देते हैं। अब आळवार के मन में जो अद्भुत भाव उत्पन्न हुआ, जिसका प्रकाशन मातृ-वचन के द्वारा किया जा रहा है। यह आळवार का कृष्ण तृष्णा तत्त्व है। नायिका भाव में रहनेवाली परांकुश नायिका अर्चारूपी भगवान् के पादारविंदों में समर्पित तुलसी प्रसाद पाना चाहती है। इसके बाद बहुत समय पहले बीते हुए विभवावतारों या क्षीराब्धी में जो देवताओं ने पूजा की थी उस तुलसी को पाना चाहती है। जब श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रास लीला खेली थी, उस समय श्रीकृष्ण के मनोहर श्रीपादों के आभरणभूत सुगंधयुत तुलसीमाला का ही नाम रटती है।

माता का प्रलाप है कि मुझ पापिनी की कुसुम कोमल स्वभाववाली पुत्री महर्षियों के वंद्य त्रिविक्रम भगवान् के पादारविंद में समर्पित हरी व मनोहर तुलसी का ही नाम रटती है इस परिस्थिति से दुःखी माता अपने

पास पड़ौसियों से कहती है कि आप सब ने पुत्री को जन्म देकर पाला पोसा न? अपने जन्मित इस बच्ची के बारे में क्या कहूँ! कौस्तुभमणि से अलंकृत श्रीवक्षवाले श्रीकृष्ण के पादारविंदों में समर्पित तुलसी को ही पाना चाहती है। भगवान् भी आळवार को सांत्वना देते है कि आपके इस प्रेम पूर्ण, चंदन-सदृश हृदय मात्र से ही, मेरे अभिप्राय से परिपूर्ण सेवा बन गयी।

आळवार परमात्मा श्रीकृष्ण के लिए अपने प्राण को ही पुष्पमाला भक्ति को हीं आभरण, पीतांबर कहते हैं। माता कहती है कि मेरी पुत्री भगवान् के अतीत अवतारों के समय उनकी उचित सेवा नहीं की; अतः प्रसाद भी लभ्य नहीं हुआ यही दुःख है। तृतीय दशक के ८.९ गीतों में आळवार भगवान् से कहते है कि मेरी आत्मा मेरे अधीन हो गयी। भगवान् के सीमातीत प्रणयित्व का अनुसंधान करते हैं। इतने में भगवान् का विश्लेष हो जाता है। संश्लेष और विश्लेष सहज है। किंतु विरहिणी आळवार के दुःख से दुःखी माता गाती है।

मेरी पुत्री परांकुश नायिका रोगी की भांति शय्यापर लेट रही है, यह रोग भगवद्विश्लेष से प्राप्त हुई है। नायिका वामन और त्रिविक्रम भगवान् की याद कर आँखों से अश्रु प्रवाह को ही बहा रही है। बार-बार भगवान् के नारायण, अच्युत, गोविंद आदि प्रिय नामों का संबोधन करती विलपती है। शास्त्रज्ञ कहते है कि अग्नि के जलने की शक्ति मणि मंत्र व औषधों के प्रयोग से रोकी जाती है। भगवान् तो इसके हस्तगत है न! इन्हें भक्तजन मणि कहते है—

'भक्तापाय भुजङ्ग गारुडमणिः त्रैलोक्यरक्षामणिः
गोपीलोचन चातकाम्बुजमणि सौंदर्य मुद्रामणिः ॥

तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ रक्षामणि है, गाय चरानेवाला बाल गोपाल, कहीं मुरलीनाद सुनाई पड़े तो मेरे कृष्ण का ही होगा, कहीं मक्खन दिखाई पड़े तो नवनीत चोर नंद किशोर ने खा-खाकर छोड़ दिया होगा। इस तरह मेरी पुत्री प्रलाप करती दुःखी हो रही है। ऐसे भय-संभ्रमों को देखकर माता स्वयं अपने मन में विचार करती है कि 'ऐसा क्यों होता है?'

माता कहती है कि मायावी भगवान् ने अपने विषयक बातें ही रटनेवाली उन्मत्ता बना दिया।

बड़ा गोगण देखकर परांकुश नायिका वन से लौटनेवाले श्रीकृष्ण के दर्शन पाने की प्रतीक्षा से उधर दौड़ती है, परंतु श्रीकृष्ण वहाँ नहीं देखे जाते। तो भी नायिका का उत्साह घटता नहीं, किंतु यों सोचती हुई कि 'शायद आज आप गायों के पीछे आते होंगे, पीछे की ओर दौड़ती है।

भगवान् का एक बिरुद है प्रणतार्तिहर, माने भक्तों के दुःखों को दूर करनेवाले। यहाँ परांकुश नायिका का दुःख नहीं मिटा। माता ने चिंता से किसी क्षुद्र देवता के पूजक को बुलाकर अपनी पुत्री का रोग मिटाने का उपाय पूछा। वह कपटी पुजारी ने अपने देवता के आवेश का अभिनय करने लगा। कुमारी का रोग और भी बढ़ गया। यह देखकर सखी कहती है कि हाय! हाय! आप लोग क्या कर रही है! श्री कृष्ण परमात्मा के श्री पाद धूलि का लेपन कीजिए, नहीं तो भगवान् के भक्तों की श्रीपादधूली का उपयोग कीजिए, तब इसका रोग शांत हो जायेगा वैदिक श्रीवैष्णवों के पुरुषकार से भगवान् देवाधिदेव के दिव्य पादारविंद को प्रणाम करके इस कुमारी का रोग मिटाना चाहिए १-४

और २–१ नायिका भाव का दशक हो गया था। अब तीसरा दशक प्रारंभ हुआ।

अष्टम दशक के चौथे दशक में सप्तवृषभ दमन नीला परिणय की कथा का अनुसंधान किया जाता है। दशम दशक में आदिनाथ भगवान् के असाधारण दिव्य मंगल विग्रह की सेवा करना ही हमारा स्वरूपानु रूप कहते हैं।

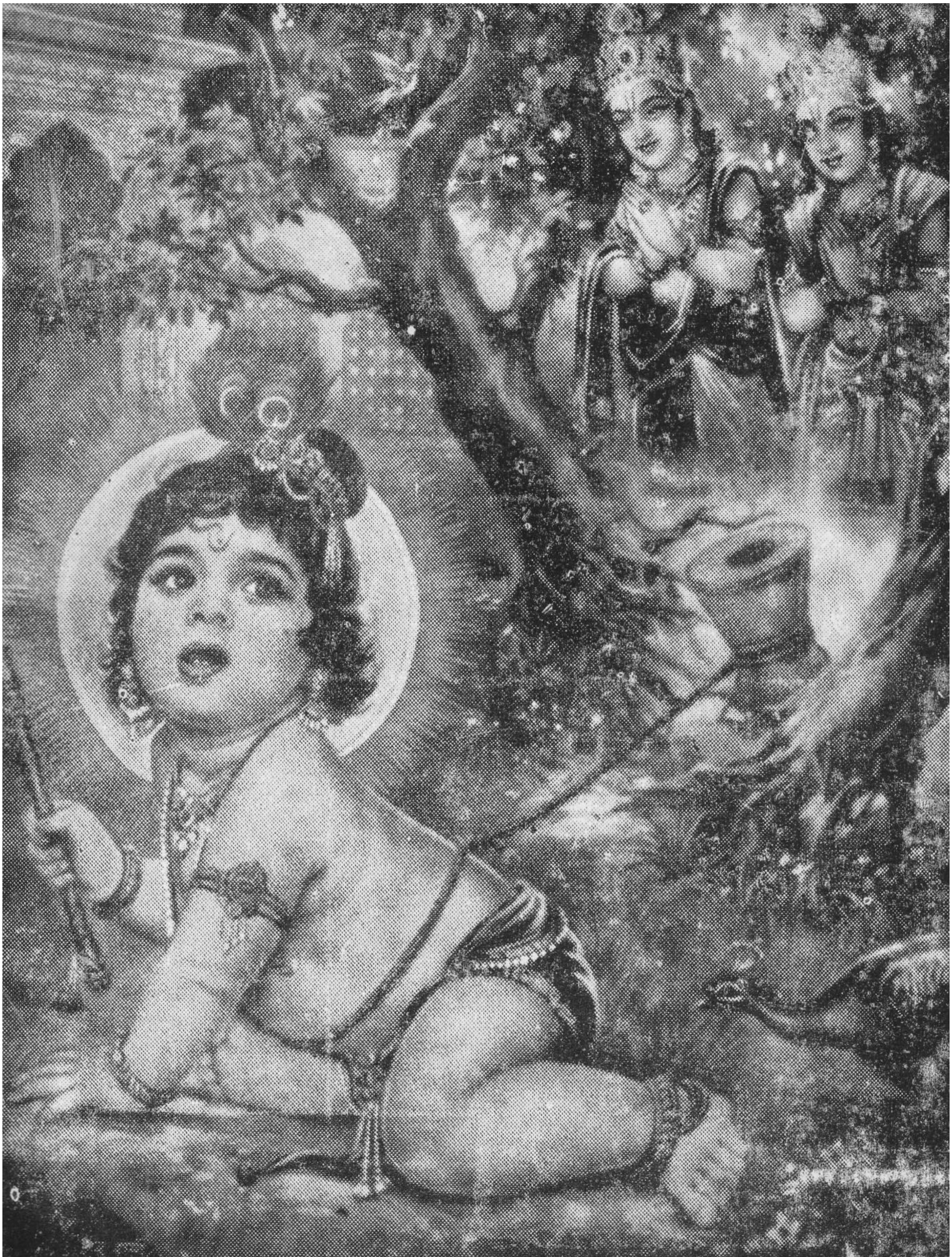

ओकली में बंधित श्रीकृष्ण

पांचवां शतक

इस शतक में आळवार पुनः श्रीकृष्ण के अवतार के समय के विचार याद करते हैं-देवकी-वसुदेव कहते हैं कि ' हे शंख चक्र गदाधर भगवान् ! आप प्रसन्न हो चेतन की रक्षा करते हैं। श्रुति भी कहती है कि, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ,अर्थात् भगवान् उन्हें अपना दिव्य मंगल विग्रह दिखाते हैं। शिशु श्रीकृष्ण को यशोदा माता ने ओखली में बाँधा था। रोते हुए शिशु बड़े अर्जुन वृक्ष के बीच में आगया। फलतः दोनों वृक्षों टूट गये। माता उस शब्द को सुनकर डर के मारे भाग आयी। किंतु श्रीकृष्ण अपने आप खेल रहा था। इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर सब आश्चर्य चकित हो गए।

आळवार श्रीकृष्ण परमात्मा को अपने मन से प्राप्त करना चाहते हैं क्यों कि शरीर से प्राप्त नहीं कर सकते हैं। पांचभौतिक शरीर उसमें विघ्न डाल रहा हैं। भगवान् आळवार के विचार देखकर पूछते है कि ' हे महामुने ! देह में रहने से आपकी क्या हानी हुई ? अतः मेरे अनुभव के लिए प्रदत्त इस शरीर में आप क्यों जुगुप्सा करते हैं ? भगवान् की कृपा से अत्यंत संतुष्ट आळवार सुबालोपनिषत् के वाक्य कहते है कि भगवान् ही—' माता पिता भ्राता निवासश्शरणं सुहृद्गतिर्नारायणः' आळवार का विचार है कि यहाँ काल के साथ देश भी बदल गया है। तथाहि अब का समय कलियुग सर्वथा नष्ट हुआ। फलतः तमोमय प्रकृति मंडल भी तमोगुण के निकल जाने के कारण परम सत्वमय नित्य विभूति से मिल गया। अतः यहाँ पर विलक्षण ब्रह्मानंद का प्रवाह बह रहा है। कलियुग

में धर्म का विपर्यास है, किंतु कृतयुग धर्मवर्धक है। हे भक्तजनो ! अपने मन को ऋजु मार्ग में स्थिर रखते भगवान् के दर्शन करते आत्मकल्याण पाओ।

वेदों के परमपवित्र पुरुषसूक्त नारायणानुवाक् इत्यादि मंत्रों के शास्त्र-विधि के अनुसार, हाथ में पुष्प धूप दीप चंदन तीर्थ आदि सामग्री ले भगवान् अच्युत का आश्रयण करो। वेदेषु पौरुषं सूक्तम् ' पुरुष सूक्त ही परम पवित्र है।

इसके बाद आळवार परांकुश नायिका की भावना में निमग्न हो कर भगवान के सौंदर्य को देखना चाहते हैं। विरह से तड़पनेवाली नायिका आखिर मड़लूरदल भी करना चाहती है। परमात्मा को चेतावनी देते हुए कहती है कि ' यदि आप अभी यहाँ पर नहीं पधारेंगे, तो स्वरूप विरुद्ध काम भी कर डालूँगी।' इसका अभिप्राय है कि ' अत्यंत भक्तियुक्तानां न शास्त्रं नैव च क्रमः।' प्रपन्नों को तीन शास्त्रोक्त आकार है कि अनन्यो-पायत्व, अनन्योपेयत्व व अनन्यदैवत्व, अवश्य रक्षणीय है। प्रकृत सहस्र-गीति-दशक में आळवार अपना अनन्योपायत्व छोड़कर अति प्रवृति करने लगते हैं। (श्रीवचनभूषण) जब आळवार अकेले रहे, तब उनके मन में पूर्वशतक की विश्लेषव्यथा ही राज करने लगी। अतः भगवान् से मिलने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। अब वह नायिका भाव से गाती हैं कि ' मैं अब एक क्षण भर के लिए भी अपने नायक से अलग नहीं रहूँगी, किंतु कुछ भी करके, अंततः ' मड़लूरदल ' भी करती हुई उनसे मिलूंगी।'

यह दशक सखी को संबोधनकर नायिका भाव से गाया जा रहा है। हे सखी! भगवत्प्रवणता से अपरिचित, निंदा करने में व्यग्र लौकिकों के अपवाद से मेरी कौन सी हानी होगी? आळवार स्मरण करते है कि अक्रूर श्रीकृष्ण को मथुरा ले जा रहा था, किंतु गोपियां

गुरुजनों के भय से उन्हें रोक नहीं सकी। परतंत्र रहना स्त्रियों का धर्म है, लेकिन उनकी विरह व्यथा—'गुरुवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना।'

अर्थात् श्रीकृष्ण-विरहाग्नि में पड़कर जली हुई हमें गुरुजनों की निंदा क्या कर सकती है? समझना चाहिए कि हाल में आळवार की भी यही दशा हुई है। इसलिए आळवार रूपी विरहिणी सखी से श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन करती है। गोकुल में रहते गोपीजन वल्लभ थे अब मथुरा में रसिक नागरिक युवतियों के वाग्जाल में फंसने के कारण फिर गोकुल नहीं लौटे अतः मेरे प्रियतम का भी यही हाल होगा। सखी ने कहा कि हे परांकुश नायिके! तुम भी अपनी अपेक्षा करनेवाले श्रीकृष्ण की चिंता छोड़ और किसी प्रकार काल यापन करो।' परंतु परांकुश नायिका. जिसका नाम ही कृष्णतृष्णातत्त्व है।

हे सखि! सुनो भगवत्प्रेम को मैंने लोकापवादरूप खाद और माता के निष्ठुर वचन रूप जल सेचन दे अनुराग रूपी बीज बोकर संवृद्ध मेरे हृदय नाम के खेत में अत्यधिक अभिनिवेश सस्य को बोया है। इस प्रकार असीम व अति विलक्षण प्रेम उत्पन्न करने के लिए भगवत्कृत कृषि का सुन्दर वर्णन करती हुई नायिका अंततः यह सिद्धांत करती है कि ऐसे महोपकारक भगवान् कभी निर्दय नहीं होंगे। भगवान् ने आळवार की भक्ति को पका दिया। आळवार नायिका कहती है कि, मैं तो भगवान् वासुदेव रूपी जाल में फंस गयी हुं; अत तुम सब मेरी आशा छोड़ दो।

सहस्रगीति में परांकुश नायिका के तीन प्रकार के प्रलाप वर्णित हैं—प्रातः काल का प्रलाप, सायंकाल का प्रलाप और रात्री का प्रलाप-प्रातः काल में श्री कृष्ण के गाय चराने के लिए वन प्रस्थान के समय

विरह की चिंता से संतप्त गोपी की भावना के १०-१-साथ आळवार प्रलाप करते हैं। सायंकाल वृंदावन से व्रज लौटनेवाली गायों की बड़ी गोष्ठी के आगे श्रीकृष्ण- दर्शन नहीं होने से ८-९

प्रकृत दशक का प्रलाप ही रात का प्रलाप है, जो नायिका के असहाय होने के कारण उक्त दो प्रलापों की अपेक्षा अधिक करुणाजनक है।

पराशर महर्षि ने श्रीकृष्ण को 'फुल्लेन्दीवर पत्राभम्' कहा। रासक्रीड़ा के समय जो रात्री गोपियों के लिए आनंदप्रद थी, वही काल मुझ बिरह संतप्ता के लिए अति दुःख प्रद और अति दीर्घ हो रहा है।

सूर्य ठीक समय पर उगता है। उपनिषद् वाक्य—

'भीषोदेति सूर्यः' इत्यादि।

नायिका कहती है 'अब समय होने पर भी सूर्य का उदय नहीं हुआ है। इसका यही कारण है कि मेरा विरह दुःख देखने में वह असमर्थ है। नायिका कहती है कि सर्वदा पिघलते रहनेवाले मेरे हृदय की भांति, हाय! यह विशाल गगन भी हिमकण के रूप में पिघल रहा है। आळवार भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि 'अशरण्यशरण्य,' 'सर्वजन संरक्षक।' श्रीदेवी रक्षाकरने के लिए कहती है।

इस सहस्रगीति में कुल चार दशकों में गोपियों का अनुकरण चलता है। (६-२) (९-९) (१०-३)।

इस दिव्य प्रबंध में आळवार मथुरा नगर की स्त्रियां, यशोदा, लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न, दशरत चक्रवर्ती, जानकी जी, विभीषण प्रह्लाद, अर्जुन इत्यादि प्रसिद्ध अनेक भगवत्प्रेमियों का अनुकार करतेहुए गाते हैं। आळवार भगवान् को 'आरावमुद' कहते हैं। भगवान् के असंख्य नामों में यह

एक अति भोग्य नाम है। संस्कृत भाषा में इसका अनुवाद 'अपर्याप्तामृत है। कुंभघोण क्षेत्र में विराजमान भगवान् का यह शुभ नाम है।

इस आरावमुद पाशुर सुनकर नाथमुनि ने सारे दिव्य प्रबंध को प्राप्त किया। श्री नाथमुनि ने योग दशा में चार हज़ार दिव्य प्रबंधों को पाया। अतः नम्माळवार श्री नाथमुनि के आचार्य हुए। पूर्वाचार्यों का यह पद्य भी अनुसंधेय है—

व्योम्नः परस्तात्सविधं समेत्य लक्ष्मी नियोगाव कुरुकाधिराजः।'

'समंत्र रत्न द्वयमाह यस्मै नाथाय तस्मै मुनये नामोऽस्तु ' अर्थात् लक्ष्मीजी के आज्ञानुसार कुरुकानाथ श्री शठकोप सुरी ने परमपद से पधारकर जिन्हें द्वयमंत्र आदि का उपदेश दिया, उस नाथमुनि स्वामि जी का नमस्कार करो। यहाँ कुंभघोण क्षेत्र के प्राकृत सुन्दर दृश्यों का वर्णन है। आळवार आरावमुद के अलाभ से दुःखी होकर कहते हैं कि हे प्रभो! सत्य ही आपने मुझे ज्ञान दिया ; वह आत्म स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ठहरा। वह भक्ति रूपापन्न ज्ञान था। भक्ति का दूसरा नाम है प्रेम। आळवार दृढता से कहते है कि—

उन्नालल्लाल यावराळुम् ओन्नुम कुरै वेंडेन।'

मैं आपके सिवा दूसरे किसी व्यक्ति से रक्षा पाना नहीं चाहता।' हे भगवान्; ज्ञान के फल! हे सिंह व वृषभ के सदृश विक्रमशील भगवान् यों प्रार्थना करता है कि आपके पादारविंदों की प्राप्ति में ही मेरा कल्याण है। मेरे अनादि पापों को दूर हटा कर मुझे स्वीकार कीजिए। अर्चावतार में तो भगवान् यों दृढ़ संकल्प करके बैठे है कि जब तक यह संसार सजड़ उखड़ न जाय तब तक मैं यहाँ से न उठूंगा।' नायिका भी परमात्मा

को प्राप्त करने का कई उपाय सोचती है आखिर सखी से स्पष्ट कहती है कि हे सखी सर्वदा मुझे दंड देने से क्या लाभ? तमाल सुपारी, पनस, नारियल, कदली वृक्षों से युत आंगनवाले प्रासादों से परिवृत वल्लभ क्षेत्र में शेषशय्या पर शयन करनेवाले भगवान् में मेरी आत्मा मिलकर लीन हो गयी। इस पूरे दशक में नायिका सखी से वार्तालाप करती है अतः भगवन्नाम संकीर्तन करने की मांग करती है।

आळवार की भावना प्रकर्ष श्री कृष्ण चेष्टितों को बार बार स्मरण करते हैं।

देवेंद्र के आराधनार्थ गोपों के समानीत अन्न का स्वयं खाना, गोवर्धन नामक महापर्वत को उठाकर उससे घोर वर्षा रोकना, भूमंडल का सृजना, निगलना बाहर निकालना तथा वामन व वराह मूर्तियों के चेष्टित, वे भी, उनका चिंतन करते-करते मेरे हृदय को अग्नि के पास रखे हुए मोम की दशा प्राप्त करा रहे हैं। बार-बार आळवार भगवान् के विभवावतारों, समुद्र मंथन इत्यादि का वर्णन कर संतुष्ट होते हैं।' परमपद में नित्यसूरी केवल भगवान् के परत्व का ही अनुभव करते हैं। किंतु यहाँ आळवार शरणागति करने के अपेक्षित अधिकारी संपत्ति की सत्ता बता रहे हैं। अर्थात् वही शरणागति करने का अधिकारी होगा जिसका यह दृढ़ अध्यवसाय हो कि भगवान् के श्री पाद ही मेरे रक्षक हैं, न कि दूसरा कोई। आळवार भगवान् की स्तुति करने की इच्छा से जान बूझकर यह ग्रंथ गाते नहीं; किंतु हृदय में चलनेवाले अनुभव-प्रवाह के परवश हो कुछ कहे बिना चित्त शांति न पा सकने के कारण ये गाथाएं गा रहे हैं। [अंतादि क्रम -युत सहस्र] द्राविड़ पद्य वाङमय में अंतादि नामक एक क्रम प्रसिद्ध तया चलता है जो दूसरी किसी भाषा में देखा नहीं जाता। पूर्व गाथा के अंत में प्रयुक्त कतिपय अक्षर ही अगली गाथा के प्रारंभ में भी यदि

प्रयुक्त हो, तो वह अंतादि क्रम कहलाता है। प्रकृत सहस्रगीति दिव्य ग्रंथ में आदि से अंत तक यही क्रम चलता है।

सातवां शतक

आळवार ने विधि पूर्वक शरणागति की। यह शरणागति सर्वथा दोष वर्जित थी। आळवार में शरणागत के अपेक्षित सभी गुण परिपूर्ण थे और भगवान् तो समस्त शरण्य गुण से पूर्ण हैं ही। परंतु शरणागति का फल नहीं मिला। अर्थात् आळवार परमपद नहीं पधारे कि तुपूर्ववत् संसार मंडल में ही रह गये। शरणागति शास्त्र का यह सिद्धांत है कि, कर्म ज्ञानादि दूसरे मोक्षोपाय विफल भी हो सकते है, किंतु शरणागति कभी व्यर्थ नहीं हो सकती। लेकिन आश्चर्य की बात है कि अब यह भी विफल हुआ।

आळवार दुःख से अपनी दुरवस्था का मार्मिक वर्णन करते हुए उच्च स्वर से आक्रंदन पूर्वक भगवान् से प्रार्थना करने लगे। आळवार का दुःख है कि ये पंचेंद्रिय व शब्दादि विषय मुझे असह्य दुःख दे रहे है, परंतु भगवान् ने आळवार को सर्वार्थद व भक्तामृत सहस्रगीति गाने केलिए इस भूमंडल पर भेजा। जब तक यह कार्य पूर्ण न होगा, तब तक आळवार को यहाँ पर रहना ही चाहिए। सहस्रगीति के समाप्त होते ही वे अवश्य दिव्य धाम पधारेंगे।

सातवां शतक का दूसरा दशक —

मातृवाणी से श्रीरंगनाथ भगवान् की सन्निधि में प्रार्थना करते है। भगवान् उन्हें कुछ सांत्वना देने के लिए श्रीरंगनाथ के रूप में प्रकट हुआ। फलतः आळवार विरहिणी नायिका की अवस्था पाकर अत्यंत शिथिल चित हुई। कभी मोह पाना, कभी भ्रांत होना, असंबद्ध बात करना, इत्यादि करने लगी। अतः उनकी माताजी श्रीरंगनाथ भगवान् से कहती हैं कि हे प्रभो! अपनी कुमारी की अत्युत्कट विरहावस्था का निवेदन करती हुई उसकी कृपा मांगती है।

नायिका का प्रेम बढ़ता ही गया। अतः वह श्रीकृष्ण के नित्य निवास स्थान 'तिरुप्पेरै' दिव्य क्षेत्र चली जाना चाहती है। आळवार के दुःख मिटाने के लिए भगवान् उन्हें अपनी लीलाओं को दिखाते हैं कि लोक नापना, समुद्र मथना, वट पत्र पर विराजमान होना इत्यादि।

आठवें शतक में—

भगवान् और आळवार का संभाषण। जिस तरह अशोक वनिकास्थ सीता जी प्रभु के विरह से तथा रावण के कटु वचन से प्रलाप करती हुई कहती है कि —

'ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्य संक्षयात् ॥'

राघव तो सर्वत्र विख्यात यशवाले, सर्वज्ञ, कृतज्ञ, दयावान् और सदाचार संपन्न है। किंतु मुझ हत भगिनी को अब शंका हो रही है। कि वे दयाहीन हो गए हैं।

इसी प्रकार अब आळवार भी, जो भगवान् के गुणगान से ही जीवित रहते और ब्रह्मानंद का अनुभव करते है, अब अत्यंत विरह दुःख के कारण उन भगवद्गुणों में शंका कर रहे हैं। इस शंका का परिहार करते हुए भगवान् बोले—

आळवीर ! आप यह क्या कह रहे हैं ! हमने अभीतक आपके लिए उपकार किये ! आगे भी क्रमशः ठीक-ठीक करेंगे ही। कभी हमारे विषय में शंका मत कीजिए।

आळवार को शंका हुई कि इस संसार में रहने की मेरी रत्ती भर भी रुचि नहीं रहती और मैं इसी क्षण परमपद जाने को तैयार हूँ। सर्वज्ञ भगवान् के अभिप्रायानुसार मेरे मन में कुछ-न कुछ संसार रुचि शेष रहती होगी। आळवार के मन में अब प्रबल शंका उत्पन्न हुई। अतः वे प्रकृत दशक में इसका निवारण करते हुए भगवान् से, अपनी आत्मा व आत्मीय समस्त पदार्थों के प्रति अपनी अरुचि को सुदृढ़ निवेदन करते है।

भगवान् से मिलकर, अलग हुए नायिका, उस विरह से अत्यंत व्याकुल हो, उनकी प्रतीक्षा करने में असमर्थ त्वरा निमित्त उन्हें ढूंढने के लिए बाहर निकलना चाहती है; जिसे देख उसकी सखी, माता आदि हितेच्छु जन उसे रोकने की चेष्टा करते है। नायिका उन्हें प्रत्युत्तर देती है कि 'भगवान् के सिवा दूसरे किसी वस्तु में अब मेरी रुचि नहीं रहती ; अतः मैं सर्वथा आपका हित वचन मान नहीं सकती।

नौवां शतक

भगवान् को ही समस्त विध बन्धु बताते हैं। पिछले तीन दशकों

में आळवार भगवान् के बंधुत्व के साथ भागवत शेषत्व पर्यंत उस अर्थ का वर्णन करके आनंदित हुए। अर्थात् श्रीमंत्र के अंतर्गत प्रणव व नमः शब्द का भी अर्थ विवरण हुआ। अब नारायण शब्द विवरण करते हुए परोपदेश पूर्वक यह अर्थ बताते है कि केवल भगवान् ही—

'माता पिता भ्राता·····सुहृत् गतिर्नारायणः'

इत्यादि श्रुत्युक्त प्रकार, हमारे सर्व विध बंधु है। बाकी लौकिक बांधव बांधवाभास मात्र है। अतएव हमारी रक्षा नहीं करते। अतः भगवान् का ही समस्त प्रकारों से आश्रयण करना आवश्यक व कल्याण कारक है। भगवान् के भक्त होकर हम आत्मकल्याण पायंगे।

असुरों के संहारार्थ उत्तर मथुरा में अवतीर्ण श्रीकृष्ण के अभिमुख हो आत्म कल्याण पाने के सिवा दूसरा कोई आनन्द नहीं रहता।

आळवार को तिरुप्पुलिङ्गुडि क्षेत्र नाथ के दर्शन मिले। किंतु भगवान् अर्चारुपी होने के कारण चुप और स्तब्ध रह गए। किंतु आळवार निराश नहीं हुए। उतने में उनका ध्यान भगवान् की उस मनोहर शयनावस्था पर गया। किंचित् मात्र भी हाथ पैरों का चलन व परिवर्तन नहीं कर रहे हैं। यह क्या बात है! क्या परिश्रम होगा!

नवें शतक के तीसरे दशक में भगवान् के नारायणत्व का प्रकाशन है। आळवार की प्रार्थना सुनने पर भगवान् तत्कालिक कुछ आश्वासन देते है अब पूर्वोक्त आळवार की प्रार्थना के प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा 'आळवीर' आप क्यों इस प्रकार तडफडाते है! हमारे व आपके बीच जो सम्बन्ध है उसे आप ठीक जानते ही है। अर्थात् समस्त चेतना चेतन पदार्थ मेरे शरीर है और मैं सर्वांतर्यामी हो सब की आत्मा

हूँ। अतः शरीर का ख्याल करना आत्मा का ही कार्य होता है। यह सुनकर आळवार प्रसन्न हुए और भगवदुक्त संबंध के सूचक नारायण नाम और उसके द्वारा अष्टाक्षर महामंत्र का अनुसंधान व अर्थविवरण करते हुए गीत गाने लगे। यद्यपि पिछले चार-पांच दशकों से अष्टाक्षर मंत्र का ही विवरण किया गया। नारायण शब्द के अर्थ अनेक होते है।

प्रणव नमःशब्द व चतुर्थी विभक्ति तो प्रत्येक मंत्र में भी होते ही है। अतः नारायण शब्द का उच्चारण किये बिना सुननेवाले यह समझ नहीं सकते कि आळवार कौन से मंत्र का अर्थ विवरण कर रहे हैं। प्रकृत दशक के प्रारंभ में ही नारायण शब्द का प्रयोग है और उक्त अर्थ का भी विवरण किया जा रहा है।

शास्त्र बताते हैं कि भगवान् निरंकुश स्वतंत्र है। वे क्षमा, दया शीलादि सद्गुणों के भंडार है। लक्ष्मी जी के द्वारा ही भगवान् की शरणागति और उनके साथ ही भगवान् की सेवा करनी चाहिए।

आळवार की अनुभूति अब मानसानुभव मात्र था। बाह्य अनुभव पाने की इच्छा से आँख खोलने पर वे दर्शन अदृश्य हुए, आळवार ने अब दुःख मग्न नायिका भाव से उद्यान बन में प्रवेश किया। वहाँ पक्षियों के कलरव सुनकर विरहिणी नायिका को बहुत दुःख होते है। आळवार कहते है कि विरह से पीडित मुझको आपका यह प्रणय कोलाहल हाय! इतना असह्य है कि मानो मेरे प्राण निकल जायंगे। अगर आपके इस ध्वनि से मेरे प्राण प्यारे श्रीकृष्ण को यहाँ पर बुलाते। कुररी की स्त्री, कोयल की स्त्रियों! हे मोरो! तुम्हारे परस्पर पुकारने की ध्वनि सुनने पर भी मायावी श्रीकृष्ण यहाँ पर आ नहीं रहे हैं; अतः तुम स्त्री व पुरुष मिलकर जोर से ध्वनि मत करो।

इस सहस्रगीति में दूत प्रेषण के चार दशक होते है ; जिसमें से तीन १-४, ६-१,६-८ बीत गए। प्रकृत अंतिम दशक है। नायिका ने पंचामृत खिलाकर अपने पोषित कोयलों को श्रीराम-कृष्णादि अनेक भगवन्नाम सिखाकर यह आज्ञा दी थी कि हे कोयलो ! संतोष के समय तुम लोग श्रीकृष्ण नाम का और विरह दुःख के समय 'मृतसंजीवन' श्री राम नाम के सिवा, तथापि कभी कृष्ण नाम का उच्चारण मत करो, जो मेरा प्राण नाशक है। परंतु दौर्भाग्य की बात है कि यह उपदेश भूलकर वे अब श्रीकृष्ण नाम को ही रटते हुए, नायिका को अवर्णनीय संताप देने लगे। आळवार कहते हैं कि मेरे कृष्ण के कपट चेष्टित मुझ ऋजु बुद्धिवाले को सीधे ही प्रतीत होते हैं। हाय ! क्या करूं ? ।

आळवार की इच्छा थी कि भगवान् का परिपूर्ण अनुभव करूं। इसीप्रकार भगवान् भी मेरा भोग करने की इच्छा की, उनकी इच्छा सफल हुई। सत्य ही भगवान् अपने कार्य साधन में बड़े चतुर हैं।

दसवां शतक

अब तक नौ शतक गाने के बाद भगवान् से आश्वासन मिला कि सहस्रगीति पूरा होने के बाद मोक्ष मिलेगा। इस आश्वासन प्राप्तकर आळवार एक मार्ग दर्शक को ढूँढने लगे। उसी समय दक्षिण मथुरा नगरी के पास 'तिरुमोगूर' मोहनपुरी के भगवान् उनके सामने प्रकट हुए। अतः उन्हीं को मार्ग दर्शक होने की प्रार्थना की तथा इस दशक को उनकी स्तुति में गाने लगे।

अब आळवार तिरुवनंतपुर दिव्य देश की स्तुति करने लगे। जहाँ पर 'श्रीमदनंत पद्मनाभ' भगवान् अद्भुत दर्शन दे रहे हैं। यह

नगर केरल देश की राजधानी है। आळवार की इच्छा सफल नहीं हुई, तब आळवार ने सोचा कि भगवान् मुझे संसार मण्डल में ही रखना चाहते है। इस महादुःख से वे विरहिणी नायिका (गोपी) की दशा पाकर प्रकृत दशक गाने लगते हैं। रात भर श्रीकृष्ण के साथ शय्या में रहने-वाली गोपी, जब प्रातः काल होने की सूचना मानों पक्षियों के कलरव सुननें में आया तब यों सोचने लगी कि अब तो स्वामी गाय चराने के लिए अरण्य जायंगे। मुझे सारे दिन विश्लेष दुःख से तड़पना पड़ेगा। आळवार भगवान् के साक्षात्कार से समुत्पन्न अपनी निजी भावनाओं का ही, किसी के वेष धारण कर वर्णन करते हैं; इस सहस्र गीति में वही विश्लेश दुःख का वे तप्रयुक्त नायिका भाव का अंतिम दशक है।

ज्ञानी महापुरुष अपने परमपद प्रस्थान के समय अंतरंग भक्तों को कतिपय रहस्यमय उपदेश देते हैं, जिसे 'चरम संदेश' कहते है। आळवार अपनी परमपद यात्रा को संनिहित मानकर संसारियों को अपना चरम संदेश सुनाते हैं। सहस्रगीति के प्रारंभ में ही, माने दूसरे दशक से ही वे संसारियों को उपदेश देने लगे। अब इस दशक में उपदेश पूर्ण हुआ। उपक्रम में प्रस्तुत श्रीमदष्टाक्षर महामंत्र का वैभव उसका सारार्थ भी बताया जाता है। परमपद जाने की त्वरा में, और संक्षेपतः उपदेश देने की इच्छा से लघुतम गीत ही गाते हैं।

जल भरित मेघ के सदृश भगवान् का नाम संकीर्तन करनेवाले, वे कैसे भी नीच क्यों न हो, नित्य सूरियों के सदृश होंगे। अष्टाक्षर व द्वय मंत्र सीखने के लिए उत्तम वर्ण, आश्रम विद्या आचार इत्यादि किसी पूर्व योग्यता की आवश्यकता नहीं रहती।

' अपि चेत्सुदुराचारः '

इत्यादि भगवद्गीता वचनानुसार सभी मानव ये मंत्र सीख सकते हैं।

इस सहस्रगीति के प्रारंभ से अबतक भगवान् से मिलने की उत्कंठा का वर्णन किया गया; अब आळवार से मिलने की भगवान् की उत्कंठा बतायी जायगी। भगवान् आळवार से कह रहे हैं कि बिना विलंब किए अति शीघ्र मेरे यहाँ पधारिएगा। इतना ही नहीं इस प्राकृतिक चरम संदेश से जिससे ज्ञान भक्ति विरक्ति इत्यादि सद्गुणों की सुगंध आती है उससे इतना व्यामोह करते हैं। भगवान् की इस चपलता को भी आळवार ने बहुत प्रयत्न से छुड़ा दिया। भगवान् ने इनके द्वारा सहस्रगीति का गान करवा कर जगत् का उद्धार किया। अब भगवान् कहते है कि आळवीर ! आप शीघ्र ही परमपद पधारने की कृपा कीजिए। आळवार के स्वागत के लिए तैयार हो गए।

भगवान् भक्तों से बहुत प्रेम करते है, भक्त के भगवत्प्रेम की अपेक्षा भगवान् का भक्त प्रेम कई गुण अधिक होता है। इस विलक्षण प्रेमान्धता का वर्णन करना मुश्किल है। श्रीकृष्णावतार में मक्खन की चोरी करने से भगवान् ने चोर नामक बिरुद पाया, जो प्रसिद्ध बात है। किंतु अब आळवार का कहना है कि भगवान् ने मेरे मन व आत्मा को भी चोरी की। संसार मंडल में रहनेवाला कोई व्यक्ति जब मोक्ष जाता है, तब उसका स्वागत अत्यद्भुत ढंग से किया जाता है। अब भगवान् ने भी मेघ समुद्र भेरी गीत काहली आदियों की ध्वनि निकलवाकर, उस ओर आळवार के ध्यान को आकृष्ट किया। आचार्यों का रसमय वचन है कि—

' अमंत्रज्ञोत्सव घोष '

भगवान् ने भी यह वाद्यादि घोष मचाया। अर्चरादि मार्ग, तत्र तत्र युक्त पुरुष को सादर सत्कार इत्यादियों के वर्णन इस दशक में है। समझना चाहिए कि कौषीतकी आदि उपनिषदों में उपवर्णित और ब्रह्मसूत्र के चौथे अध्याय के तीसरे पाद में आळवार की मीठी वाणी में बताया जा रहा है।

आळवार परमभक्ति दशा प्राप्त करते है।

आळवार ने जो अर्चरादि मार्ग से परमपद पधारकर ब्रह्मानंद का अनुभव किया, वह भी मानसानुभव था। इस दशक में आळवार की भक्ति, परज्ञान दशा प्राप्त करके, फिर परमभक्ति दशा भी पाकर अंत में फलप्रद होती हैं; अर्थात् भक्ति की परिपक्व दशा इसमें देखी जाती है। आळवार के अभिनिवेश को शांत करते हुए अंतादि क्रमयुत सहस्रगीति को अध्ययन करनेवाले श्रेष्ठ होते है। बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ जो संस्कृत वेद-वेदांग व वेदांत के पारंगत थे। किंतु आळवार के सहस्रगीति को कितनी इज्जत मिली उतने तमिल साहित्य में और किसी ग्रंथ को प्राप्त नहीं हुआ।

उपनिषत् और सहस्रगीति

क

१.	स एको ब्रह्मण आनंदः [तै उप]	उयरवर उयर नलमुडैयवन् १-१-१
२.	विज्ञानमानंदम् ब्रह्म [बृह-उप]	इन्नुणर मुलुनलम् १-१-२
३.	नतत्समश्चाभ्यधिकश्च श्वेता-उप	मिरु नरैयिलने १-१-२
४.	नारायण परोज्योतिः तै-उप	पयिलुम शुडरोळी मूर्ति ३-७-१
५.	यता कप्यासम पुंडरीकम एवमक्षिणी । छा. उप	पङ्कय कण्णने ३-७-१
६.	आपणखात् सर्व एव सुवर्णः छ-उप	शेंपोन् तिरु वुडंबु २-५-१
७.	अप्राप्य मनसा सह तै-उप	एण्णिन् मीदियन् २-२-१
८.	यथो वाचो निवर्तंते । तै-उप	शोलळवन्नु ८-२-६
९.	सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म तज्जलान् । छा-उप	ताने उलहेलान् ताने पडैत्तु १०-५-२

१०.	नारायणात् ब्रह्मा जायते	पेरियवप्पने दिपरमन अप्पने ८-१-११
११.	तेनेदम पूर्णम् पुरुषेण तै-उप	तानेयाहि निरैंदु १०-७-२
१२.	आपो वा इदमग्रे	पेरिय नीर पडैत्तु अंकुरैंदु । ८-१-५
१३.	अंतर्यामि ब्राह्मणम्	ओरुयिरेयो ८-१-५
१४.	ताम् वराहो भूत्वाऽहरत तै. संहिते।	एनमाय निलं कींड । ५-७-६
१५.	विचक्रमे पृथिवी मेष पुरुष सूक्त	वन् मावैयमळंद ३-२-२

ख

उपनिषत् और (ड़िरुवायमोळि) सहस्रगीति

१६.	इतेनरुपेण अपि निष्पद्यते छा.उप	तन्मै पेरुचि ३.७.७
१७.	सर्व भूतांतरात्मा न लिप्यते लोक दुःखेन कठोपनिषत्	यावेयुम् यवरुम् तानाय् अवखर समयम् तोरुम् तोय विलन् ३.४.१०
१८.	यत्तन् अद्रेश्यम् मुं–उप	पोरियुणर वनैविलन् १.१.२

१९.	सब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः	अयनाम् शिवनाम् तिरुमाल् । ८.८.११
२०.	अंतर्बहिश्च तत् सर्वम् व्याप्य	करंद शिविडंतोरुम् इडंतिहळ् पौरुळ्तोरुम् करंदेंगुम् परंदुळन् १.१.१०
२१	इवोऽभावा मर्त्यस्य यतंतकैत्त क. उप	पेरुनाडु काण इम्मैयिले पिच्चै ताम् कोळ्वर ४.११
२२.	बहुदा बिजायते	फल पिरप्पाय् १.३.२
२३.	ज्ञात्यः पर्युपासते जानासी माम् । छां=२०	इळच्चारुम पुरुच्चारुम् मोयत्तु, ८.८.८
२४.	तमीश्वराणाम् परमम् महेश्वरम्	मनिशरक्क चेवर पोल चेवरक्कुम देवाओ । ८.१.५
२५.	तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयः मित्रात् बृ. उ.	कोण्ड पेंडिर मक्कळ । ९.१.१
२६.	वाचा विरुप नित्यया तै=संहिता	तोत्तंगळाबिरम् ६.८.११
२७.	नास्या ब्रह्मवित्कुलेभवति	नळ्ळ पदत्ताळ मनै वाळवर ८-१०.११
२८.	वासुदेवः सर्वम् गीते	एल्लाम् कण्णन् ६.७.१
२९.	विभूतिनाम नास्त्यंत गीते	एल्लैयिल शीर २-५.१

नाम् तिरुमाल्।
१
तोरुम् इडंतिहळ्
रदेंगुम् परंदुळन्
०
इम्मैयिले पिच्चै

१०. ब्रह्म तत् परातात् — नारणर काळत्री वावरो।
बृ.उप — ७.५.२

श्री श्रीराम भारतो जी द्वारा स्वर संयोजन

थम दशक	राग	ताल
१. उयर्वर वुयर्नल	गंभीर नाट्टु	आदिताल
२. वीडुमिन् मुत्तवुम	,,	मिश्रछाप
३. पत्तुडै यडियर्केळियवन्	पंतुवराळी	आदिताल
४. अज्जिरैय	कामाच राग	,,
५. वळवेळुंहिन मुदलाय	कुंतवराळि	,,
. परिवदिलीशनै	नादनाम क्रिया	मिश्रछाप
पिरवित्तुयरर	पुन्नहवराळि	आदि
ओडुम पुळ्ळेरि	नवरोज	,,
इवैयु मवैयुम्	शेंचुराटि	,,
१ पोरुमानीळ्पडै	बृंदावन सारंग	,,
११. वायुम तिरैयुहळुम्	शुभपंतुवराळि	,,
१२. तिण्णन् वीडु	बिळहरि	,,
१३. ऊनिल वाळुयिरे:	कामी	,,
१४. आडिबाडि अहक्करैदु	सौराष्ट्र	मिश्रछाप
१५. मन्दामचन्दु	सहाना	खण्ड छाप
१६. वैहुंन्दा मणिवण्णने	कल्याणि	

चारुम् मोयत्तु,
वर पोल
वाओ।
मक्कळ।
.१
रम्
.१
मनै वाळवर
.११
.१
.१

१७.	केशवन्तमर	देशं	मट्यं
१८.	अर्णवदरवर्णमेल	यदुकुल कांबोदी	तिस्र एकं
१९.	एम्मावीट्टु त्तिरमुम् शेप्पम्	मध्यमावति	आदिताल
२०.	किळरोलि यिळमै	हंसानंदी	,,
२१.	मुडिच्चोदियाय्	आनंदभैरवी	त्रिपुठ
२२.	मुन्नीर ज्ञालम्पडैत्त	कानडा	आदिताल
२३.	ओळिविल कालमेल्लाम्	धन्यासी	रूपक
२४.	पुह्लु नल्लोरुवनन्गो	दर्बारीकानडा	खण्ड छाप
२५.	मोय्माम्	वसंत	आदिताल

सहस्रगीति

		राग	ताल
२६.	शेय्यतामरै कण्णनाय्	यमन कल्याणी	आदि
२७.	पयिलुम् शुडरोळि मूर्तिये	पुन्नागवराळी	मट्यं
२८.	मुडियान। मूवुलहुम्	हिंदोळं	आदि
२९.	शोन्नाल विरोधमिदु	कवडिचिंद्	तिश्र
३०.	जन्मम् पलपल शेयदु	सुराटि	तिश्र एवं
३१.	ओरु नायकनाय्	नाटकुरंजी	रूपकं
३२.	पालनाय् एलुलहुंडु	मोहनं	रूपकं
३३.	कोवैवायाळ्	श्रीरंजनी	आदि
३४.	मण्णैयिरुन्दु तुळाविवामनन्	आहिरी	मिश्रछाप
३५.	वीत्तिरुन्देलुलहुम् तनिकोल् शेल्ल	केदारं	मट्यंताळं
३६.	तीर्प्पारै यामिनि	भैरवी	आदि
३७.	शीलमिला च्चिरयनैलुम्	देश	मिश्रछापं

३८.	एराळु मिरैयोनुम	आनंद भैरवी	तिश्रै
३९.	नण्णादार मुरुबलिप्प	नाद नामक्रिया	आदि
४०.	ओलुम् तेवु मुलुहु	पंतुवराळा	मिश्रळाप
४१.	कैयार् शक्करत्तु	कुरंजी	मध्यं
४२.	पोलिइ पोलिइ	गंभीरनाट्	आदि
४३.	माशरु शोदि	तोडी	रुपकं
४४.	ऊरेलाम् तुंजि	कतैळी	तिल नडै
४५.	एङ्गनेयो अन्नमोहाळ्	भैरवी	मिश्रछाप
४६.	कडल ञालम शेवदेनुम	यदुकुल कांबोदी	त्रिपुरा
४७.	नोत्त नोंबिले	सावेरी	आदि
४८.	आरावमुदे	कल्याणी	,,
४९.	मानेय नोक्कु	रीतिगौळि	,,
५०.	पिरंदवारुम् वळंदवारुम्	सहाना	,,
५१.	वैगल पूंगळिवाय्	भाग्यश्री	आदि
५२.	मिन्नडै मडवारहळ्	तेहाग	रुपकं
५३.	नल्कुरवुम्	तोडी	,,
५४.	कुरुवयायिच्चियरोडु	नवरसकानडा	तिस्रनडै
५५.	तुवळिल मामणि माडम	शंकराभरण	रूपक
५६.	मालुक्कु वैय्यमळंद	कापि रागं	आदि ताळं
५७.	उण्णुम् शोरु परहुनीर्	कांबोदी रागं	आदि
५८.	पोन्नुलहाळीरो	कुरंजी	मिश्रछाप
५९.	नीराय् निलनाय्	नवरोज	रुपकं
६०	उलहमुण्ड पेरुव	शंकराभरणं	आदि
६१.	उण्णिलावियव	,,	मिश्रछापा
६२.	कङ्गुलम्	कांबोदी	आदि
६३.	वेळ्ळै च्चुरिशंगु	शेंजुरटी	,,

६४.	आळियेळ	कुरंजी	खण्डछाप
६५.	कर्पौर	यदुकुल कांबोजी	आदि
६६.	पामरमूवुलगु	पूर्व कल्याणी	मिश्रछाप
६७.	एळैंधरावि	सारमती	अटताळम्
६८.	मायावामनवै	श्री	रुपक
६९.	एन्नेक्कुम	विहाग	आदि
७०.	इन्नम् पयक्क	कल्याणि	तिस्र एक
७१.	तेविमाराबार	मायामाण्वगौळं	आदि
७२.	नंगळ वरिवळै	द्विजावंति	,,
७३.	अंगुमिंगम्	कातडा	रूपक ताळं
७४.	वारकडा	मायामाळवगौळं	आदि
७५.	मायकूत्ता	मलयमारुतं	रुपकं
७६.	एलैयुम्	मोहनरागम्	कांबोदी रुपकं
७७.	इरुत्तम्	शुद्ध सावेरी	आदि
७८.	कणगळ् शिवदु	कल्याणी	
७९.	करुमाणिक्क मलै	बराळी	,,
८०.	नेडुमार्कडिमैं	मांडु	मिश्रछाप
८१.	कोंडपेंडिर	सिंधुभैरवी	आदि
८२.	पंडैनाळाले	भौवळी	,,
८३.	ओरायिरम्	केदार	एकं
८४.	मेय्यार	असावेरी	मिश्रछाप
८५.	इन्नुयिर चचेवल	कीरवाणी	मध्यं
८६.	उरुकुमाल	तिलंगु	आदि
८७.	एङ्गानल्लू	स्वरहरप्रिय	,,
८८.	मरुक्कुम	नीलांबरी	मिश्रछाप

८९.	मलिहै	शंकराभरणं	आदिताळं
९०.	मालैनण्णि	मुखारी	खण्डछाप
९१.	ताळतामरै	हरिकांबोदी	रुपकं
९२.	केडुमिडर	भैरवी	आदि
९३.	वेयमरुतोळ	आहिरी	,,
९४.	शार्वेतवनेरि	देवगांधारी	,,
९५.	कण्णन् कळलिणै	सैंधवी	,,
९६.	अरुळू पेरुवार	शुद्ध धन्यासी	,,
९७.	शेज्ञोल कविहाळ	बेगडा	,,
९८.	तिरुमालिरुं शोलै मलै	रेवती	,,
९९.	शूळूविशंबु	कोलि	एकं
१००	मुनिये नान् मुहने	आहिरी	मिश्रछापं

सहस्रगीति की विशेषताएं

अनुबन्ध

१–१–५ श्रीकृष्ण गीता के तीसरे अध्याय में —
' देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः . . . .
सब देवों के अन्तर्यामी परमात्मा की ही पूजा होगी।
सर्वेश्वर भगवान् को छोड़कर दूसरे में रक्षता करने का सामर्थ्य नहीं है।

१–२–७ जैसे जीव शरीर के प्रति आत्मा, नियामक और शेषी होता है, ठीक वैसे ही भगवान् भी समस्त पदार्थों के अंतरात्मा नियामक व शेषी होता है।
इस गीत में

१–३– मत्तुरु कडै वैष्णेय —
हमारे स्वामी यशोदा जी से मथित मक्खन की चोरी के कारण ओखली से अपने को बंदकर कितना दुःखी हुआ।
सौलभ्य गुण की भी कोई परिधि है ?

१–४– अवतारिका —
सहस्रगीति में सत्रह दशक पुत्री की वाणी हैं। इसमे चार दशक अपने प्राण वल्लभ के पास नायिका कृत दूत

षण के रूप में अवतीर्ण हैं। यह पहला दशक है।
आगे छठे दशक और नवें शतक में एक दशक है।
आळ्वार के नाथ तो साक्षात् भगवान् ही है जो सर्वत्र विराज है। आळ्वार बक पिक शुक आदि पक्षियों के द्वारा ही भगवान् को अपना संदेश भेजते है।

१--२--४ हे कोयल रे क ा रन भ ा वान् के पास तुम दूत के रूप में जाकर संदेश पहुंचायेगा तो तुम्हें कौनसी हानी होगी ?

१--४-- हे राजहंसो ! मतिबल से वामन–ब्रह्मचारी का रूप धारण कर जगत की भिक्षा मांगनेवाले कपटी भगवान् से कहो कि कोई एक अद्वितीय नायिका—यों पूछती है कि—क्या मति हीन मुझ एक का ही पाप अनंत है ? सोचती है कि—'अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा शुभम्'। प्रत्येक मानव को अवश्य ही अपने कृत पुण्य—पाप फलों का अनुभव करना चाहिए।

तासामाविरभूछौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः।
पितांबर धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथः॥

इसी तरह मुझसे भी मिलकर सर्वस्व लूट कर चला गया।

१--४--६ हे भ्रमर राजः
दयासागर भगवान् से कहो कि-परांकुश नायिका के प्राण छूटने के पहले ही उसके घर के सामने आओ।

१--४--७ हे बालशुक

लक्ष्मीपति भगवान् से कहो कि परांकुश नायिका तुम्हारी राह देख रही है !

१--४--८ अयि बाल सारिके ।
अत्यधिक व्यामोहवाले भगवान् के पास जाकर उनसे मेरे दुःख की बिनती करो ।

१--४--९ हे शीतल पवन !
दुर्लभ पुष्प चुनकर उनको भगवान् श्रीमन्नारायण के चरण कमलों में समर्पण करो ।

१=४--१० हे मेरे गंभीर मन !
आश्रित जन विरोधी निरसन करते समय चक्रराज का धारण करते प्रभु के दर्शन कर, उनसे यह संदेश कहो. इष्ट सिद्धि होने तक परित्याग मत करो ।

१--५-२ सहस्रगीति गुण- गण--ग्रथित कृति है ।
इसमें सातों लोकों के कारण भूत परमात्मा के ध्यान किया गया है । हे चोरी से मक्खन उठाकर खानेवाले चोर ।

(२) हाय ! हाय ! उसके बाद मंदस्मितवाली नीळादेवि के लिए गोपश्रेष्ठ बनकर बलवान् सात वृषभों का, मर्दन करनेवाले स्वामिन ।

१-५-३ त्रिविक्रमावतार—अपने श्रीपादों से तीनों लोकों को नापनेवाले भगवान् !

१-५-५ अपने वक्ष पर लक्ष्मी जी को धारण करनेवाले हे माधव ! चित्त कलेश के कुबड़ी का कूबड़ मिटानेवाले गोविंद ही सर्णवर्ण है। हे मधुसूदन ! आपके मधु बहुनेवाले श्रीपाद प्राप्त करूँ ?

१-५-६ रामावतार वर्णन ।

१-५-७ मनोहर तुलसीमालाधारी कृष्ण भक्तों के कष्ट छुडानेवाले लक्ष्मीपती की सेवा करता हूँ।

१-५-८ भगवान् आळवार के नैच्यानुसंधान दूर करने लगा

१-५-९ पूतना बध

१ ५ १० भगवान् सर्वव्यापी है। वही भगवान् मेरे मन को अपने निवास स्थान बनाया ।

१ ६ १ रावणवध

१ ७ ३ (३) गोपालकृष्ण मक्खन चोरी करो। गोपों से मार खानेवाले श्रीकृष्ण अपने दिव्य मंगल विग्रह का अनुभव देनेवाले महोपकारक है।

१ ७ ५ (४) गोप बालिकाओं के नेत्रों में धूर्तकृत्य करनेवाले श्रीकृष्ण मेरे आराध्य हैं।

१ ७ ६ वराहवातार और सप्त तालवृक्ष का भेदन करनेवाला श्रीरामचंद्र मेरी आत्मा में निवास करता है

१ ७ ८ श्रीकृष्ण नीळादेवी के आलिंगन तथा नित्य सूरियों के सर्वस्व है ।

१ ७ ९ ओं को अमृत पिलानेवाले ही गोपकुल तिलक हैं ।

(परत्व और विभव)

१ ८ २ (६) श्रीकृष्णावतार में केशीवध का विवरण ।

१ ८ ३ भूलोक निवासी तथा स्वर्गवासी सभी जनों के सदा नेत्र भूत भगवान् दिव्य वेंकटाद्री पर नित्य निवास कर रहें है ।

[अर्चावतार]

१ ८ ४ (४) गोवर्धनोद्धरण । सातदिन गो - गोपों की रक्षा ।

१ ८ ५ श्रीकृष्ण अपने पूरे बाहू को बरतन में घुसाकर मकखन । खानेवाले भगवान् मेरे शरीर का आलिंगन कर रहे हैं ।

१ ८ ६ मेरे शेषत्व का अपहरण किया वही वामन वेष का धारण कर भूमि को अपनाया ।

१ ८ ७ (८) नीळादेवी से परिणय करने के लिए सात बैलों का दमन किया । प्रलयकाल में सातों लोकों को अपने पेट में रखा । इसी भगवान् ने मुझसे प्रेम किया

१ ८ १० वेदों से परमात्मा को समझ सकते है ।

१ ९ १ प्रकृत दशक में भगवान्के , स्वात्म्य भोग प्रदत्व । नामक विलक्षण कुण का अनुभव किया जा रहा है ।

'भक्तानां यद्वपुषि दहरं······यश्चमूर्धा शठारे····

वरदराज स्तव में बताया गया भक्तों का हृदय कमल, अर्चावतार में आसन रूपी कमल, वेदों सिर—वेदांत, श्री शठकोप सूरी का सिर देवकी का जठर वटदल।

१ ९ २ संश्लेष दशा

२ ९ ३ संश्लेश दशा

२ ९ ४ १ वटदल पर सोनेवाले श्रीकृष्ण आळ्वार के समीप विराज मान है। जैसे गोपांगनाओं के साथ है वैसे ही आळ्वर के साथ भी है।

२ ९ ५ स्तन्य पिलानेवाली पूतनाका मनोरथ व्यर्थ करके, उनके प्राण को ही पीनेवाले प्रभु मेरे हृदय प्रदेश में विराजमान है।

२ ९ ६ संश्लेश भाव

२ ९ ९ भगवान् आळवार की जीभ में विराजमान होकर अपने गुण का वर्णन करवाते हैं।

जीभ से निकलनेवाले ज्ञान साधनभूत सामवेदादि समस्त शास्त्र तदर्थ, सृष्टि स्तिति संहारों के कर्ता शंख—चक्र गधादर, कमल नयन मेरे नेत्रों में विराज मान है।

२ १ ११ भगवान् श्रीकृष्ण ने शठकोप सूरी के सारे अंग में विराज मान है।

२ १० १ वामनावतार तथा त्रिविक्रमावतार

१ १० ५ हे मन ! सातों लोकों को निगलनेवाले और तीन पगो से जगत् को नापनेवाले भगवान् को बिना प्रयास पाया ।

११० ५ हे मन ! यदि इसी श्र मिमुख्य में स्थिर रहेंगे, तो माता पिता के सदृश प्रियपर और हित पर होंगे ।

१ २ ९ श्रीमन्नाररयण ! विश्वद के बिना मुझसे मिलकर रहते हैं । तिरुवकुरुंगुडी में विराजमान मेरे नाथ को मैं कैसे भूल सकूंगी ।

१ १० १० मणि सदृश कमल नयन मेरे हृदय में प्रतिष्ठित हो गया । मैं अब कैसे भूल सकूंगी।

१ १० २२ फल श्रुति

२ २ १ शाश्वत मोक्षप्रदाता श्रीकृष्ण ही इस जगत के नायक हैं । ' सर्व लाभाय केशवः'

२ २ ९ रक्षा करना ही जिनका स्वभाव है, ऐसे श्रीकृष्ण परमात्मा ने सब पदार्थ का संहार किया, पुनः जगत् की सृष्टि की । संश्लेश भाव

२ ३ १ हे मन !वाह ! वाह तुम्हारे सहयोग से ही मैं भगवान् से मिल गया हूँ । वामनावतार वृत्तांत
इस दशक की सभी गाथाएं भगवान् से कृतज्ञता प्रकाशन कर रही हैं ।

१३४ आळ्वार भगवान् के उपकार से संतुष्ट होकर अपनी आत्मा का अर्पण कर दिया । हे प्रभु ! आप तो मेरी आत्मा के भी अंतरात्मा ठहरे ! प्रभु ! यह तो आपकी ही संपत्ति है

१३६ रामावतार वृत्तांत

१३७ मेरे मन छीके में सुरक्षित मक्खन खानेवाले परमात्मा पर है ।

१३९ सुशीतल तुलसी से अलंकृत श्रीकृष्ण के कल्याण गुणों में ही डूबकर ब्रह्मानंद पा रहा है ।

१४० अवतारिका—मातृ भावना

पुत्री परांकुश नायिका भगवान् से मिलने की त्वरा करती हैं माता भगवान् से बिनती करती है कि—

हे प्रभो ! मेरी पुत्री आपसे मिलने की त्वरा से प्रवृत्ति कर रही है ।

रामावतार वृत्तांत

१४६ हा ! मेरी पुत्रि की आत्मा तक सुख गयि है । यह पुकारती हैं कि श्रीकृष्ण किशोर ! हे क्षीर सागर शायिन मेरी कुमारी अब कैसे इस कपट जाल में फंस गयी ?

२४८ यह कहती हैं कि अपने कल्याण कृष्ण नामक जाल में फंसाकर मुझ अपनी दासी बना लिया । हे कंस का वध करने वाला भगवान् । आप पर विश्वास रखनेवाली को ऐसा दुःख देना क्या आपको उचित है ।

२ ५ ३ संश्लेशभाव, भगवान् के सौकुमार्य और लावण्य !

२ ५ ७ क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन किया। हे कृष्ण ! नीलादेवि के लिए सात वृषभों का एक साथ दमन किया। श्रीरामावतार और कृष्णावतार का स्मरण।

२ ५ ८ संश्लेष भाव का विवरण

२ ५ १० भक्तों की श्रद्धा के अनुरूप दिव्य मंगल विग्रह का रूप धारण करते हैं।

२ ६ १ परांकुश नायकी कहती है कि हे वैकुंठ के नाथ। हे दिव्य वामन स्वरूपि। मैंने आपका सुदृढ पकड लिया हैं।

२ ६ ३ नरसिंहावतार का वर्णन

२ ६ ६ तिरुवेंगडत्तुळ निन्राय ! इलङ्कै शेत्ताय। दोनों अवतारों का स्मरण। संश्लेष स्थिति।
श्रीमन्नारायण तथा कुवलयापीड नामक मत्त गज के दांत तोडने वाले श्रीकृष्ण, माधव को आळ्वार कहते हैं।

२ ७ ३ हे माधव ! हे गोविंद ! श्रीकृष्ण रूप से अवतीर्ण भगवान् समान है। उसका भोग्य अमृत रसवत् प्रतीत हो रहा है।

२ ७ ४ सत्य संकल्प, विष्णु भगवान् गोप जन्म लेकर समृद्ध गोधन एवं घट नर्तन करने में समर्थ बने।

२ ७ ६ त्रिविक्रम भगवान् की मुझ पर ही विलक्षण कृपा हुई। मधुसूधन भगवान् के सिवा दूसरे किसी को मैं जानता ही नहीं

को ही आपने मुझे दिया है ।

२ ७ ७ हे मेरे हृषिकेश भगवान् ! हे श्रीधर ! आपने ब्रह्मानंद भरित बनाकर, अपने को भी मेरे हृदय में रख दिया ।

२ ७ १० हे मेरे मन ! यदि तुम विवेकी हो तो हृषिकेश ! हे सब के स्वामिन् ! रावण का संहार करनेवाले ही मेरे नाथ ! पद्मनाभ भगवान् को मत छोडो ।

२ ८ १ महालक्ष्मी का स्मरण

२ ८ ४ मुमुक्षुओं को उपदेश

२ ९ ३ हे चक्रहस्त श्रीकृष्ण भगवान् । आपके श्रीपादों की स्तुति कर सकूंगा

२ ९ १० हे सातों वृषभों का दर्प दूर करनेवाले । श्रीकृष्ण ! सुंदर लंकापुरी का भस्म करनेवाले !

२ १० ४,५ भक्तों के कर्मपाश छुडाकर, उनका उद्धरा करने के लिए गोवर्धनोद्धरण किया ।

२ १० ६ छींके में सुरक्षित रखा हुआ मक्खन खाने में निपुण भगवान् का निवासस्थान वनाद्री हैं ।

२ १० ८ आवश्यक बल देनेवाले माया चेष्टित गोपालकृष्ण का परिक्रमा करना अच्छा ।

२ १० ९ पूतना का संहार करनेवाले भगवान् के नित्यनिवास वनाद्री का सेवन करना पर्याप्त हैं।

२ १० ११ संसारिक क्लेश दूर कर भगवान् के पादारविंदों के साथ अपने सिर नवाना हैं।

इन दस गीत वनाद्री के भगवान् की स्तुति है।

तृतीय दशक

३ २ २ वामनावतार स्मरण

३ २ ३ कृष्णावतार महाभारतयुद्ध प्रसंग

३ २ ७ आळवार अपने मनसे कहते है कि परम पुरुष श्रीकृष्ण को कब प्राप्त करेंगे ?

३ २ ८ हे कृष्ण ! हे परंज्योति स्वरूप कब दर्शन दोगे ?

३ २ ९ श्रीकृष्णावतार में गायों की रक्षा। त्रिविक्रमावतार में लोक नापने के बहाने महाबलि के सिर पर अपने श्रीपाद धरे।

३ २ १० मेरे दुःखों को दूर करने के लिए कृष्णावतार किया। मेरी आत्मा ने भी सत्ता प्राप्त की।

३ ३ १ बालाजी वेंकटेश्वर का स्मरण

३ ३ ७ श्री वेंकटेश्वर के वृत्तांत गीत।

३ ३ ७	गोवर्धन पर्वत को छत्र के रूप में धर कर वर्षा को रोका। त्रिविक्रम के निवासस्थान वेंकटाद्री है।
३ ३ ९	श्री वेंकटाद्री पर विराज श्रीकृष्ण रूपी भगवान् के ध्यान से भक्तों के क्लेश दूर होंगे।
३ ४ १	श्रीकृष्ण श्रेष्ठ ज्ञान जनक है।
३ ४ ८	मधु बहनेवाली सी माला से अलंकृत श्रीकृष्ण उज्वल मणि सदृश है।
३ ४ ९	श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण, क्षीर सागर को मथकर अमृत निकालनेवाले भगवान् का चिंतन मैं कैसे करूं
३ ४ १०	अंतर्यामि का विचार। चौथे दशक आळवार के लिए हर्षदायक है।
३ ५ १	पांचवां दशक में आळवार दुःखी रहते हैं।
३ ५ २	गजेंद्र रक्षा करनेवाला श्रीकृष्ण का कीर्तन करना चाहिए।
३ ५ ३	गोवर्धन पर्वत उठाकर गो और गोपों की रक्षा करनेवाले श्रीकृष्ण का अनवरत कीर्तन करना चाहिए।
३ ५ ४	नीलादेवी के साथ परिणय करने के लिए सात वृषभों का दर्प मिठानेवाले श्रीधर भगवान् के यश गान करना चाहिए
३ ५ ७	पांडवों पर अनुग्रह करने के लिए समस्त सेना का संहार किया।

२ ६ २ क्षीर सागर शायी, वही श्रीरामचंद्र लंकापुरी का नाश किया।

२ ६ ३ देवों के द्वारा संस्तुत, रासक्रीडा करनेवाले रसिक, मणिवर्ण घट नतन करनेवाला श्रीकृष्ण की स्तुति करो, वहीं स्वामी क्षीर सागर पर शयन करता है।

३ ६ ६ नरसिंह अवतार का स्मरण।

३ ६ ७ मेरी आत्मा में विराजमान परंज्योति घट नर्तक श्रीकृष्ण की सेवा करना चाहिए।

६ ६ ८ श्रीराम और श्री कृष्णावतार का स्मरण।

३ ६ १० नित्य सूरियों के परम भोग्य पांडवों के पक्ष में सारथ्य करने वाले श्रीकृष्ण को मेरी आंखें कब दर्शन करेगी?

३ ७ १ व्यूहावतार का स्मरण।

३ ७ ६ उपकारकों में श्रेष्ठ वग रूप में अवतार करनेवाला ही मेरे रक्षक है।

३ ७ १० त्रिविक्रमावतार और वटपत्रशायी का स्मरण।

३ ८ २ श्रीरामावतार और त्रिविक्रमावतार।

३ ८ ३ नवनीत चोरी करनेवाले हे गोपालकृष्ण अंधेरी में मक्खन ढून्ढ कर खाया।

३ ८ ५ वामनावतार वृत्तांत ।

३ ८ ९ श्रीकृष्ण अवतार में कंसवध और वामनावतार वृत्तांत ।

३ ८ १० श्रीकृष्णावतार में यमुलार्जुन भंग ।

३ ९ १ श्रीवेंकटाद्री के बालाजी का स्मरण ।

३ ९ २ तिरुकुरुन्गुडी नाम के वामन क्षेत्र का ध्यान ।

३ ९ ८ नीलादेवी के प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण भगवान् का प्रणाम करूंगी ।

३ ९ ११ देवधिदेव श्रीकृष्ण को लक्ष्यकर सहस्रगीति का गान करना चाहिए ।

३ १० २ व्यूहावतार और विभव श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।

३ १० ४ अच्युत श्रीकृष्ण भगवान् का अनुभव करनेवाला सर्वदा व्यसन गंध रहित है ।

३ १० ६ श्रीवैकुंठनाथ ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित है, उसके शुभयश का अनुभव करनेवाला मैं सुखी हूं ।

३ १० ८ श्रीलक्ष्मी के भोग व्यामुग्ध, आश्चर्य चेष्टितवाले श्रीकृष्ण का पदाश्रित है ।

३ १० १० अतिविलक्षण दिव्य विग्रह विशिष्ट अत्यद्भुत चेष्टितवाले श्रीकृष्ण को मैं प्राप्त किया हूं ।

४ २ ३	हे जनो ! तुलसीमालायुत श्रीकृष्ण भगवान् के पादारविंदों का ध्यान करो ।
४ २ ४	कुवलयापीड का संहार करनेवाले श्रीकृष्ण के पादारविंदों का ध्यान करो ।
४ २ २	गोपियों के साथ रास लीला खेलनेवाले गोपालकृष्ण के पादारविंदों की याद करो ।
४ २ ३	त्रिविक्रमावतार का वृत्तांत ।
४ २ ५	मातृ वचन ! नीलादेवी से मिलने के लिए सात वृषभों से संघर्ष । घट नर्तन में निपुण गोपालकृष्ण के पादारविंदों को मेरी पुत्री स्मरण करती है ।
४ २ ६	व्यूहावतार, परतत्त्व नारायण का ध्यान ।
४ ३ ४	कपटी पूतना के प्राण चूसनेवाले गोपाल बालक भगवान् है ।
४ ३ ५	हमारे स्वामी श्रीकृष्ण परमात्मा के लिए मेरे प्राण ही पुष्पमाला है ।
४ ३ ७	वामनावतार वृत्तांत ।
४ ४ ७	त्रिविक्रमावतार, की भीतिदशा और मोहदशा के नायिका उसके पादारविंदों से ही प्रेम करती है ।

४ ४ ९ मेरी पुत्री क मेघ देखकर श्रीकृष्ण कहती है ! गोगणों को देखकर उसके पीछे जाती है ।

४ ४ १० व्यामोह पे पुनः बुलाती है कि हे श्रीकृष्ण !

४ ५ १ भगवान् आळवार को संश्लेष देते हैं और फिर पर हो विश्लेष देते हैं । संश्लेष दशा में आळवार का ज्ञान बढ़ता है, और विश्लेष दशा में भक्ति बढ़ती है ।

४ ५ १ केशीवध—कृष्णावतार

४ ५ ५ गीतो

४ ५ ७ पर व्यूह विभव अंतर्यामि तथा अर्चावतार के सर्वत्र समरूप है । गोवर्धन पर्वत उठाकर उसके सहारे वर्षा को रोकनेवाले श्रीकृष्ण को मेरी सूक्ति माला का समर्पण करुंगी ।

४ ५ ९ पांचजन्यालंकृत पाणितलवाले और कुंभ नर्तन करने में समर्थ श्री वैकुंठनाथ श्रीकृष्ण की स्तुति करने का भाग्य मुझे प्राप्त है ।
अबतक नायिका वचन से दो दशक और मातृ वचन-से तीन दशक गा चुके। अब सखी वचन से प्रारंभ होता है ।

४ ५ १ पंचपांडवों के सारथी के विषय में इसका हृदय अनुरक्त होकर दुःख पा रहा है ।

४ ६ ५ कुवलयापीड हाथी के वध करनेवाले मुकुंद की याद ।

४ ६ ८ श्रीकृष्ण स्मरण ।

४ ६ ९ सखी कहती है कि —श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों का ध्यान

४ ६ १० द्वारकापुरी के नाथ श्रीकृष्ण का कीर्तन करने की सलाह।

४ ७ २ वामनावतार

४ ८ ३ यशोदा के रूप में आनेवाले पूतना का वृत्तांत ।

४ ८ ४ नीलादेवी से परिणय, गाय चराने का विवरण, धूलि धूसरित श्रीकृष्ण के ध्यान

४ ८ ६ रामावतार वृत्तांत ।

४ ८ ६ वामन ब्रह्मचारी का विचार ।

४ ८ ७ नरसिंहावतार का वृत्तांत

४ १० ३ त्रिविक्रम और वराहवतार

४ १० ७ आदिनाथ भगवान् का स्मरण

४ १० १० आदिनाथ, वामन भगवान् की सेवा करना स्वरूपानु रूप

५ १ १ हे गोपालकृष्ण ! बहनेवाली भगवत्कृपा को कौन रोक सकता है ?

५ १ २ हे बडे अर्जुन वृक्ष के बीच में निकलनेवाले श्रीकृष्ण ! तुम मेरे मधु मधुर है ।

५ १ ४ हे कृष्ण भगवान् ! मुझे अपने पादारविंदों में पहुंचा दीजिए।

५ १ ५ हे श्रीकृष्ण ! श्रीवैकुंठ निवासी आप को प्राप्त नही कर सका ।

५ १ १० मत्स्य कूर्म नारसिंह वामन, वरहादि रूपों में अवतीर्ण हुए; अब कल्कि के रूप में अवतार लेंगे ।

५ १ ११ इन सारे गीत श्रीकृष्ण परमात्मा को लक्ष्यकर गाया है

५ ३ १ आळ्वार मड़लूरदल—माने नायिका नायक के विषय में सीमातीत प्रेम प्रकाशित करते हुए नायक की निंदा करती फिरती है ।

५ ३ २ शकटासुर तथा पूतना का प्राण अपहरण किया।

५ ३ ५ त्रिविक्रमावतार स्मरण ।

५ ३ ३ हे सखी ! मैं देवाधिदेव, सुंदर द्वारकापुरी के नाथ और भगवान् वासुदेव के जाल में फंस गयी हूं ।

९ ३ ७ क्षीरसागरशायी का ध्यान ।

५ ३ ६ हे सखि ! मैं देवाधिदेव, सुंदर द्वारकापुरी के नाथ और भगवान् वासुदेव के जाल में फंस गयी हूं ।

५ ३ ७ क्षीरसागरशायी का ध्यान

५ ३ ८ पूतना का स्तन्यपान, शकटासुर को लात मारना, यमुलार्जुन भंग, बकासुर का मुख चीर डालना, कुवलयापीड का ध्वंस करनेवाला श्रीकृष्ण चेष्टितों का वर्णन क्या करूं ?

५ ३ १० मडल्लूदल का विवरण ।

५ ४ २ श्रीकृष्ण स्मरण : संश्लेष तथा विश्लेष दशा ।

५ ४ ३ श्रीरामचंद्र का स्मरण ।

५ ४ ४ स्वर्ण भूमि नापनेवाले, नीलवृषभ के सदृश मेरे कृष्ण भी नहीं पधारते ।

५ ४ ६ मेरे जीवन की कौन रक्षा करेगा महा महिमायुत चक्रराज से अलंकृत मायावी मेरे कृष्ण भी नहीं पधारते ।

५ ४ ८ हाय ! अपने विधेय चक्र से विभूषित मेरे कृष्ण भी नहीं पधारते ।

५ ७ १ श्रीवरमंगल क्षेत्र के भगवान् का स्मरण सात गीतों में श्रीवरमंगल क्षेत्र निवासी परमात्मा से प्रार्थना

५ ७ ८ बकासुर का मुख चीरनेवाले श्रीकृष्ण !

५ ७ ९ हे बकासुर के मुख चीर डालनेवाले । यमुलार्जुन वृक्ष के

बीच चलनेवाले ! सात वृषभों का मद दमन करनेवाले श्रीवरमंगल क्षेत्र निवासिन मेरे उद्धार का मार्ग बता दीजिए ।

५ ७ १० हे देवनायक ! मेरी आत्मा आपके ही अधीन है ।

५ ८ २ कुंभघोण के भगवान् का स्मरण

५ ८ ३ आपके श्रीपादों के आश्रय में रहूँ ।
इन दस गीत कुम्भघोण क्षेत्र के भगवान् के वृत्तांत ।

५ ८ ११ पूतना वध करनेवाले श्रीकृष्ण ही कुंभघोण क्षेत्र निवासी है

५ ९ २ परांकुशनायिका वल्लभ क्षेत्र के मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकती है । अतः उसका विरहावस्था बढ़ती है ।
इस नवम दशक पूरा वल्लभ क्षेत्र में विराजमान श्रीमन्नारायण का ध्यान ।

५ १० २ विवाह के प्रस्ताव में वृषभों का दमन । कपटी दैत्य का मुहचीर डालना, गोपियों के साथ रास लीला खेलना इत्यादि श्रीकृष्ण की लीला है ।

३ १० ३ पूतना स्तन्यपान, शकट भंजन, मक्खन चोरी इत्यादि चेष्टितों से मेरा हृदय को पानी-पानी कर दिया ।

५ १० ५ गोपों के समानीत अन्न का स्वयं खाना, गोवर्धनपर्वत उठाना, वामन, वराह मूर्तियों के चेष्टित, उनका चिंतन करते मेरे हृदय मोम की भांति पिघल गया ।

५ १० ९ वामनावतार, त्रिविक्रमावतार वृत्तांत

५ १० १० ' जन्म कर्मच मे दिव्यम्

इसका अर्थ है कि मेरे जन्म व कर्म दिव्य है।

६ १ १ परांकुश नायिका (नम्माळ्वार) संदेश भेजती हैं।

चार दशक स्त्री भावना से गाती हैं।

६ १ २ तिरुवणवण्डूर क्षेत्र के भगवान् को संदेश भेजतो है।

६ १ ४ नायिका अपने दुःख को बताते हुए कहती है कि श्रीकृष्ण के दर्शन करनेवाले सुंदर हंसो ! नायिका के विरह वर्णन।

६ १ ५ सदा प्रिया के साथ रहनेवालें हंसो ! तिरुवण बण्डूर दिव्य क्षेत्र के भगवान् को मंगला शासन करो

६ १ ६ हे पुन्नाग वृक्ष पर निवास करनेवाले सुंदर कोयल तिरुवण वणडूर क्षेत्र निवासी के दर्शन कर मेरी व्यथा दूर करनेवाले कोई वार्ता लाओ।

३ १ ७ हे सुंदर बकल शुक ! भगवान् के सौंदर्य को देखकर मुझे बताओ।

६ १ ८ हे सुंदर बाल सारिके ! तिरुवणवंडूर क्षेत्र के स्वामी के लक्षण मुझे बताओ।

६ १ ९ हे पुष्पों में खेलनेवाले हंसो ! तिरुवणवंडूर में विराज–

मान श्रीकृष्ण के दर्शन कर मेरी दुर्दशा के. रहस्य विनती करो।

६ १ १० हे सुगंधयुत भ्रमरो ! श्रीरामचंद्र जी से कहो कि आप के रक्ष्य वर्ग में मै एक बाकी हूँ।

६ २ २ प्रभो ! यहाँ से जाते रहो ! अतः तुम अपनी परम कृपा के प्राप्त, मोर पिंछ के सदृश सुंदर केशवाली भाग्य=वतितों को सुनाते हुए, गायों के साथ उधर जाकर वंशी बजाओ।

६ २ ४ सातों लोकों को निगलकर तुमने वटपत्र पर शयन किया बन में जाकर गाय चराने वाले हे प्रभो ! हम से यह अधिक प्रसंग मत करो।

६ २ ७ परांकुश नायिका कृष्ण से बात तक करना न चाहती है। नायिका की यह उपेक्षा कृष्ण को बहुत ही असह्य प्रतीत हुई। श्रीकृष्ण ने यह निश्चय किया, कि किसी प्रकार इस नायिका के साथ कलह को ही चालू रखना चाहिए।

६ २ ८ पूर्वोक्त दण्ड प्रहार की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने सकोप कहा, कि ' क्या यहां पर मुझे भी दण्ड प्रहार करनेवाले धीर रहते हैं ?

६ २ ९ श्रीकृष्ण ने उनके साथ खेलना चाहा। जब नायिका श्रीकृष्ण की उपेक्षा करती थी तब कृष्ण अपने पदाघात से उन सब क्रीडा गृहादियों को ध्वंस कर दिया

६ २ १० इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करनेवाले हे परशुराम ! हे समस्त जगत् के सृष्टि कर्ता ! हे गोपकुल के उद्धारार्थ हाल में यहां पर अवतीर्ण, दिव्य माणिक्य सदृश ! गोपियां सर्वदा आपके द्वारा हिंसा ही पा रही है, न तु सुख प्रणयरोष की शांति संश्लेश से ही होती है।

६ ३ ४ श्रीकृष्ण का अवतार मथुरापुरी में वसुदेव-देवकी के यह, हुआ, श्रीकृष्ण व्रज पधारे।

६ ३ ५ भगवान् सत्य बोलने के लिए एक अवतार रामावतार और कृष्णावतार लिया। यध्यपि श्रीकृष्ण ने भी उत्तर गर्भ को जीवित करते समय 'यदि मैं ब्रह्मचर्य स्यात् सत्यं च ऽवि तिष्टति' अर्थात् यदि मैं सत्य ही ब्रह्मचारी, सत्यवादी व निरंकुश ऐश्वर्यवान् हो तो यह बालक जीवित हो।

६ ३ ७ तिरविण्णगर में निवास करनेवाले ही श्रीकृष्ण मेरे शब्द शेषी व स्वामी है।

३ ४ २ गोपियों के साथ प्रवर्तित रासक्रीडा, गोवर्धनोद्धरण कालियां नाग का दमन इत्यादि का स्मरण।

६ ४ २ कर्ण मनोहर मधुर मुरली वादन गोचरण, नीलादेवी का वरण इत्यादि माया मानुष विग्रह श्रीकृष्ण प्रभु के स्मरण करते हुए अत्यंत आनंद से कालक्षेप करुंगा।

६ ४ ३ अनुपम बलयुत मल्लों का निरसन गोचारण, लंबी सूंडवाले गज का दमन करना इत्यादि अत्युज्वल ज्योतिर्मय श्रीकृष्ण के चिंतन करनेवाले मुझे क्लेश का क्या प्रसंग ?

६ ४ ४ यशोदाकृत उलूख बंधन समय का क्रंदन, वंचना करनेवाले पूतना का स्तन्य पीकर उसका संहार करना, शकटासुर वध, दिव्य सुंदर विग्रहवाले श्रीकृष्ण के चेष्टितों का अनुसंधान करने का भाग्य मुझे मिला है ।

६ ४ ५ देवों से प्रार्थित होकर भूतल पर अवतार लेना, भय के मारे प्रलाप करनेवाली देवकी के भय-शोक परि-हारार्थ व्रज में प्रवेश करना, इन चरित्रों का अनुसंधान करने का भाग्य मुझे प्राप्त है ।

६ ४ ६ बकासुर का मुख चीर डालना, बलिष्ठ सात वृषभों का दमन करना, एवं ऊंची शाखाओं से विभूषित कुंद वृक्ष को तोड़ डालना, स्वामी के अदभुत चेष्टितों का कीर्तन करने का भाग्य मुझे प्राप्त है ।

६ ४७ बाणासुर वध तथा वामनावतार विचार

६ ४ १० भूदेवी के भार मिटाने के लिए भारत युद्ध चलाकर पांडवों की रक्षा करनेवाले श्रीकृष्ण मेरे आराध्य है ।

६ ५ ३ सागर पर शयन करना, त्रिविक्रमावतार कार्य और गोचरण इसके बारे में प्रलाप कर रही है ।

६ ५ ४ इस के सभी वार्तालाप सागरवर्ण श्रीकृष्ण भगवान् को लक्ष्य करते है ।

६ ५ ९ हे मणिवर्ण !कहती है की फिर घोडे का मुख चीर डालने वाले भगवान् का निवासस्थान यह तो तेंविलि मंगल है ।

' मनः पूर्वो वागुत्तर ' यन्यसाध्यायति तद्वाचा वदति ।

६ ६ ४ राजाधिराज पांडवों के दूत बननेवाले श्रीकृष्ण स्मरण ।

६ ६ ८ कुंद वृक्ष को तोडनेवाले, अद्वितीय शकटासुर पर लात मार कर उसका विनाश और पूतना का संहार करने वाले के ध्यान में मेरी पुत्री ने अपनी सुध खोई

६ ६ ९ वामनावतार और रामावतारका स्मरण ।

६ ७ १ इस दशक मातृ वचन है ।
परांकुश नायिका तिरुकोळूर चली जाती है ।

४ ८ ९ इस गाथा में नायिका नानाविध सुंदर पदार्थ देखकर ' ये मेरे कृष्ण के योग्य व भोग्य होते हैं । ' इस दशक में आळवार की स्त्री भावना है ।
वियोग व्यथा में पक्षियों से अपने दुःख कहती है ।

६ ९ २ शुक को भगवान् के पास भेजती है ।

६ ८ ३ हे भ्रमर गणों ! पांडवों के लिए महारथ पर सवार होकर शत्रु सेना को भस्मसात् करने वाले श्रीकृष्ण के तुलसी माला पर बैठकर उसका रस पीकर शीघ्र लौट आओ ।

६ ८ ५ भ्रमर और शुक इधर आओ भगवान् को जहाँ तहाँ भी ढूंढ निकालकर उनसे कहो कि 'क्या यह कार्य उचित है' ?

६ ८ ७ चक्रायुधधारी, महोपकारक और केशी नामक घोडे का मुख चीर डालनेवाले मधुसूदन को मेरे संदेश पहुंचाओ ।

६ ९ २ वामनावतार के दर्शन करने की प्रार्थना।

६ ९ ४ श्रीकृष्ण के शकटासुर भंजन—वृत्तांत।

६ ९ ५ श्रीवैकुंठ में विराजनेवाले! श्रीवेंकटाचल में खड़े रहनेवाले! हे क्षीरसागर पर शयन करनेवाले! हे राम—कृष्णादि अवतार करनेवाले हे वहाँ सर्वत्र अंतर्यामि हो निगूढ़ रहनेवाले! वही मेरे हृदय में विराजते हैं।

सातवाँ शतक

७ २ २ छठे शतक में श्रीवेंकटेश भगवान की शरणागति करने पर भी आळवार ने अपने इष्ट नहीं पाया। सातवें शतक के दूसरे दशक में मातृवाणी से श्रीरंगनाथ भगवत्सन्निधि में प्रार्थना

७ ३ २ नायिका भाव। पिछले दशक में आळवार का मानसिक विक्षिप्त भाव था इस दशक में तेन [illegible] दिव्यदेश के भगवान् की सन्निधि में जाने लगे।

७ २ ४ भगवान् के वीर चरित्रों का वर्णन

७ २ ६ गोवर्धनोद्धरण विवरण तथा नृसिंहावतार का वर्णन

७ २ ७ भगवान् के मानस साक्षात्कार से आळवार दुःख पाते हैं

७ २ ८ भगवान् के अत्याश्चर्य मय जगदाकारत्व का वर्णन

७ २ ९ आळवार भगवान् से कृतज्ञता का निवेदन करते हैं।

७ ८ १० आळ्वार तिरुवारनविळै दिव्यदेश में भगवान् को सहस्र गीति सुनाया है।

७ २ २ आळ्वार भगवान् के स्वरूप व गुणों में अतिशंका करते हैं।

७ २ २ सांसारिक आत्मा व आत्मीय वस्तुओं में तुच्छभाव का वर्णन।

८ ३ १ मंगलाशासन

८ ७ १ भगवत्कृत महोपकार का चिंतन

८ ८ १ जीवात्म स्वरूप की महत्ता का प्रकाशन ।

८ ९ १ सखी वाणी से अनन्यार्हत्व का विवरण करना श्रीपरांकुश नायिका केरल देश के अंतर्गत तिरुण्पुलियूर दिव्य देश के नाथ से गुप्त रूप से मिल गयी थी। सखी मन में विचार करती है—

'ओह ! यह कैसी आपत्ती आ गयी ।

८ १० १ भागवत शेषत्व का महत्व बताना। आळ्वार ने अपने को भगवद्दास दास दासानुदास बताया

९ १ १ आळ्वार भगवान् को ही समस्तविध बंधु बताते हैं।

९ २ २ आळ्वार एकांत में तिरुप्पुलिंगुडि क्षेत्र के नाथ के कृपा कटाक्ष आदि पाने की इच्छा करते हैं।

९ २ १ भगवान् के दर्शन प्राप्त कर हृष्ट होते हैं।

९ ५ १ पक्षियों के दर्शन से परांकुश नायिका दुःख पाती हैं।

९ ६ १ अप्रीति गर्भ गुणानुसंधान।

९ ७ १ तिरुमूलिक्कल दिव्य देशाधिपति को दूत भेजना।

९ ८ १ तिरुनावाय दिव्य देशाधिपति से मिलने की त्वरा।

९ ९ १ संध्याकाल का प्रलाप।

९ १० २ तिरु मोगूर भगवान् को मार्ग बताना।

१० २ १ अनंत शयन क्षेत्र की स्तुति।

१० ३ २ गोपियों का प्रलाप।

इस दशक में विरहिणी नायिका की दशा पाकर गाने लगते हैं। श्रीकृष्ण विश्लेष से गोपी के प्रलाप का अनुकरण। गोपियां कहती है कि हे कृष्ण! सत्य ही आप दया शून्य है।

१० ४ १ भगवान् की भक्ति— सुलभता का वर्णन।

१० ५ २ आळवार का चरम संदेश।

१० ६ १ भगवान् के शीलगुण का वर्णन

१० ७ १ भगवान् के सीमातीत भक्तजन विग्रह व्यामोह का वर्णन

१० ८ १ भगवान् की निर्हेतुक कृप का वर्णन।

१० ९ १ अर्चिरादि मार्ग का वर्णन

१० १० २ आळवार परम भक्ति दशा प्राप्त करते हैं।

अध्याय — २

दास साहित्य

कन्नड़

पुरंदरदास

दास साहित्य

विष्णु संबंधी प्राचीन शासन क्रि. पू. के तीसरी शताब्दी के हथिबाड़ा शासन है।

शासन -३—' अनिहताभ्यां सर्वेश्वराभ्यां पूजा शिला—

प्रकारो नारायण वाटिका ॥'

इस पुराने शासन में 'नारायण वाटिका' होने से 'सर्वेश्वर' संकर्षण वासुदेव को नारायण नाम विशेषण है। संकर्षण बलराम है। कृष्ण को वासुदेव भी कहते है। कहा जाता है कि तक्षशिला के दियोनन के पुत्र भागवत हेलियोदरस ने देव-देव सर्वेश्वर वासुदेव का गरुडस्तंभ खड़ा किया था। एक यवन रायभारी ने इसे 'भागवत' नाम की प्रशस्ती दी थी। इससे मालूम होता है कि विदेशी भी भगवान् वासुदेव के भक्त थे। रहा देव-देव कहने से कृष्ण सर्वोत्तम माना जाता है। कहा जाता है कि संगराज महाराज ने भी उसी नगर में भगवान् के मंदिर के सामने एक गरुड़ ध्वज की स्थापना की थी।

भागवतादि पौराणिक ग्रंथों से मालूम होता हैं कि यमुना नदी के किनारे दो नगर मथुरा और कृष्णपुर हैं। इस शूरसेनी नगर में श्रीकृष्ण की पूजा होती थी। मेगस्थेनीज के समय में श्रीकृष्ण के मूर्ति-पूजक और असंख्यात भक्त भी थे। अतः पतंजली ने—

'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'

इस सूत्र भाष्य में क्षत्रिय वासुदेव और परमात्मा वासुदेव दो नहीं थे। केवल वासुदेव के पुत्र एक मात्र श्रीकृष्ण हैं।

'जघान कंसं किल वासुदेवः।
कंसारि कृष्ण ही वासुदेव परमात्मा है।

करीब कि. पू. पहली शताब्दी में मोरा (मथुरा) से सात मील दूर में रहनेवाले शिला शासन में—

'भगवतो वृष्णेः पंञ्चवीराणां प्रतिमा ....

भगवान् वृष्णि श्रीकृष्ण और उनके सार्थी पांडवों की प्रतिमाएँ हैं। मथुरा के और एक शासन से जो पहली ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा एक प्रसिद्ध विष्णु क्षेत्र था।

कई पुराणों और शिला लेखों से मालूम होता है कि पतंजली भाष्य पाणिनी सूत्र इत्यादियों में अर्जुन, बलराम नारायण, पद्मनाभ आदि के विवरण हैं। कि. पूर्व छठी शताब्धी तक कृष्ण भक्ति की बोलबाल कृष्ण अवतार मथुरा प्रांत्य मात्र में नहीं, गुजरात, नासिक, नानाघर आदि जगहों में भी फैला हुआ था विष्णु भक्ति तथा कृष्ण भक्ति के अनेक उदाहरणों को हमने देखा। किंतु आध्यात्मिक दृष्टि से भक्ति मानव में जन्मतः हीं हैं।

कि. शक के प्रारंभ में कृष्णाजिला चीर गाँव के शासन में—।

'नमो भगवते वासुदेवाय'

वासुदेव कृष्ण को भगवान् कहा है। [illegible] के दौहित्र सोमत्राता ने भगवान् के उपयोग के लिए दो पत्थर के नाव बनवाया था।

त्रकूट के राजा कि· शक पांचवीं शताब्धी में टंकों पर 'परमवैष्णव' का वर्णन किया है। गुप्त राजाओं ने अपने नाम के साथ परम भागवत व वैष्णव रखते थे। गुप्तों के बाद भी कृष्ण व विष्णु भक्ति का विकास होता ही रहा। नौवीं शताब्धी में देवपाणी में प्राप्त विष्णु मूर्ति पुरानी है। दसवीं शतब्धी की मूर्तियों में नारायण भट्टारक कीर्ति प्रतिमा को परम वैष्णव लोकदत्त से बनवाया गया था। तेरहवीं शताब्धी में केवोर्रा के विष्णु मूर्ति को श्रीवैकुंठ प्राप्त करने की इच्छा से वंगोक ने बनवाया था। गुप्तों के बाद जो आये वलभी राजाओं ने भी परम भागवत या वैष्णव नाम से प्रशंशित है। इस तरह परिशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उत्तर हिन्दूस्तान के शिला शासनों और ताम्र पत्रों में विष्णु, वासुदेव और कृष्ण भक्ति के विवरण प्राप्त है। भागवत के निरुपण के अनुसार कृष्ण सृष्टिकर्ता तथा 'परभक्ति' कर जो शरणागति करते है उसकी रक्षा करनेवाला है।

कि शक के पूर्व तीसरे शासन से ज्ञात होता है कि पौडागड जयपुर एजन्सी के शासन में हरिस्तुति विष्णु स्मृति ही है।

शासनो से ज्ञात है कि दाक्षिणापथ तथा दक्षिण हिन्दूस्थान में विष्णु भक्ति का प्रचार, नासिक आदि जगहों में केशव, संकर्षण, वासुदेव राम, केशव के शौर्य तथा देवता स्वरूप आदि के विवरण है। आंध्र भृत्य, कदंबों के समय तक विष्णु पुजा या भक्ति के उल्लेखित कोई शासन इस प्रांत्य में नहीं है, भगवान् व भक्ति आदि शब्द प्रयोग और स्थूप-स्तंभ, मूर्ति पूजा वैदिक धर्म के अनुकरण है।

बनवासी के कदंबों के शासन—उनमें
'नमो हरिहर हिरण्य गर्भेभ्य:'

इस तरह त्रैपुरुष की वंदना है। कदंबों के युवराज कृष्णवर्म, विष्णुवर्म, हरिवर्म, दामोदर आदि राजाओं के नाम हैं। उनके समकालीन शासन करनेवाले आगे दसवीं सदी तक, कर्नाटक में राज करनेवाले गंग खानदान के राजाओं में हरिवर्म, कृष्णवर्म, विष्णुगोप माधव वर्म आदि के नाम कृष्ण भक्ति की बुनियाद हैं। गंग राजा विष्णुगोप के वर्णन में-

'गुरु गोब्राह्मण पूजकस्य'
'नारायण चरणानुध्यातस्य'

इत्यादि विचार उस समय के भागवतों के भक्ति पंथ के परिचय दिखाता है।

बादामी के चालुक्य वंश वर्णन में—

'सकल भुवन संस्तुयमान मानव्यस गोत्राणां भगवन्नारायण प्रसाद समासादित वराहलांछनेक्षणक्षण वशी कृताशेष महीभृतां·····चालुक्यानां'

भगवान् नारायण के प्रसाद से प्राप्त वराह लांछन की कृपा से चालुक्य अन्य राजाओं को हराया। चालुक्य कहते हैं कि आप नारायण के भक्त हैं। अपने कुल देवता वराह भगवान् है।

जिस परमात्मा ने समुद्र में डूबकर पृथिवी का उद्धार किया उस देव के बिंब चालुक्य के राज्य चिह्न है, उनके शासन और टंकों पर वराह मूर्ति ही अंकित है। बादामी के टीले पर मंगलीश ने विष्णु गुफा खुदवाया, उस शासन में बताया है कि वहाँ प्रतिष्ठित चक्रपाणि विष्णु के वर्णन में भक्ति के विवरण हैं। विष्णु की प्रतिष्ठा के सुवसर पर भगवान् को पूजा आराधना, दीप-धूप के लिए लंजेश्वर गाँव का दान किया था। उस गुफा में खुदी हुई र्तियों में कृष्ण के शैशव कौमार आदि लीलाएँ है। विष्णु

के समुद्र मथन के चित्र, कृष्ण भक्ति के प्रतीक हैं। भगवान् के भक्त चालुक्यों के समय में कर्नाटक में भी विष्णु भक्ति का बोलबाला था।

बारवीं शताब्दी के एक शासन मे निरुपित है कि सृष्टिकर्ता परमात्मा को शिव, ब्रह्मा, विष्णु, बुद्ध आदि नामों से पूजा करते थे ? परमात्मा विष्णु को सब नामों मे पुकारते थे। वेदोपनिषद्, ब्रह्मसूत्र भागवतादि पुराणों से भी ज्ञात होता है। उस समय सब धर्म कर्नाटक में भी शायद प्रचलित रहे होंगे। कि श आठवीं शताब्धी में श्री आदि शंकराचार्य विष्णु के उपासक थे उन्होंने 'भजगोविंद' की रचनाकर विष्णु भक्ति का प्रचार किया। लेकिन उनके जीव-ब्रह्मैक्यवाद विष्णु की उपासना या विष्णु भक्ति की उन्नति न कर भक्ति के जड़ को कुठाराघात किया। आगे आळवारों की परंपरा में ग्यारवीं शताब्धी में श्री रामानुजाचार्य वैष्णव भक्ति को सर्व मान्य कर दिया। आचार्य रामानुज ने विशिष्टाद्वैत तत्व का उपदेश किया। अनेक लोग उनके अनुयायी बने।

कर्नाटक में होयसळ राजा रामानुज मत के अनुयायी बनकर उनके शिष्य हुआ। अपना नाम विष्णु वर्धन रखा। विजयनगर के राजगुरु वैष्णव आचार्य थे।

श्री रामानुजचार्य जी के उपदेश भक्त जनों को अत्यंत प्रिय हुअ। आचार्य ने प्रपत्ति या शरणागति उपदेश देकर हरिभक्ति का जन-जन में प्रचार किया। आचार्य ने भगवान् के भक्तों में ऊँच-नीच, छूत अछूत तथा जाति-लिंग के बिना भेद-भाव से सब को भगवान् के दर्शन करने योग्य कहा। इसलिए वे अपने गुरु की आज्ञा को भी टाला स्वयं नरक भाजन होने पर भी परवाह नहीं कह मंदिर के ऊपर चढ़ कर सर्व सामान्य को भी मोक्ष प्रदायक अष्टाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया मध्वाचार्य

7

१३ वीं शताब्दी में द्वैत सिद्धांत का प्रचार करने लगे। आगे हरि सर्वोत्तम की स्थापना हुई। विष्णु-उपासना बढ़ी।

बौद्ध-जैन धर्म अवैदिक हैं कदंब और चालुक्य वैदिक धर्म के अनुयायी थे। द्राविड़ देश में आळवार तथा आचार्यों के विचार तरंग ने सब के मन को जीता। आळवार भाव प्रधान थे किंतु आचार्य वर्ग युक्ति प्रधान संत वैष्णव आळवारों के प्रबंध में हरि भक्ति-प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ती है लेकिन आचार्य वर्ग उ में छिपे हुए शास्त्र प्रमाणों को तर्कबद्ध विचार कर जनमन को अपनाया।

इसके बाद शैव और वीरशैव मत का प्रचार भी जहाँ तहाँ होने लगा लेकिन द्वैतमत अन्यमतों के दोषों को दूरकर अभादित वैदिक तत्वज्ञान तथा विष्णु भक्ति के उपदेश करने लगे।

इस तरह भक्ति का प्रवाह विविध क्षेत्रों में बढ़कर आखिर शिव और विष्णोपासन में रुका। जैन-बौद्ध मतों का प्रचार रुक गया वैदिक धर्म का प्रचार निरंतर बढ़ता आ रहा है जन भाषा में ही अपने मत तत्वों का उपदेश करने लगे! वैष्णव हरिदास भी कन्नड़ वाङ्मय को अपनी कृतियाँ समर्पित किया भगवान् की भक्ति का प्रचार किया!

श्री बसवण्णा के धर्मतत्व श्री रामानुजाचार्य के भक्ति तत्व तथा मध्वाचार्य के द्वैतसिद्धांत के प्रचार से परा परतत्व को ऊँचा उठाया।

'द्वैत-सिद्धांत के सामान्य वचर'

आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः-पुनः ।

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥'

महा भारत ग्रंथ में विष्णु की महिमा को प्रतिपादित किया है अनुमान प्रमाण, आगम प्रमाण को और निर्दिष्ट प्रत्यक्ष के साथ मिल कर रहना चाहिए प्रत्यक्ष और बिना अनुमान के बाह्य जगत का ज्ञान नहीं होगा। अतींद्रिय सूक्ष्मपरावस्तु ज्ञान तो वेदादि आगम के बिना नहीं होगा। आगम-निगम दो तरह के हैं—पौरुषेय और अपौरुषेय है। पहला महाभारत, पांचरात्र मूल रामायण और तदनुकूल पुराणेतिहास, स्मृत्यादि है। दूसरे में मंत्र, ब्राह्मण आरण्यक उपनिषदादि ऋगादि चतुर्वेद मिलते हैं। इन तत्त्व वाङमय को (१) उपनिषत् प्रस्थान (२) ब्रह्मसूत्र प्रस्थान (३) गीता प्रस्थान कहते है कि प्रस्थानत्रयी। इस सब शास्त्रों के विमर्शों से ज्ञात होता है कि—

इंद्रियों को दिखाई पड़नेवाले जगत् सत्य है-झूठ नहीं है। इनमें जीव-जड़ मिला हुआ है। जीव नित्य, अणु अस्वतंत्र अल्पज्ञ हैं। जीवों में तीन विध हैं कि सात्विक, राजस और तामस नाम के स्वरूप भेद असंख्यात जीवराशियों में एक दूसरे से भेद भाव तथा असमानता भी हैं।

बीज रूप में रहनेवाले स्वरूप गुण विकास के लिए जीव परमात्मा के संकल्प के अनुसार जड़ शरीर प्राप्त कर जनन-मरण प्राप्त करता है

जो सात्विक जीव है वह परमात्मा के समान सच्चिदानंद रूप से श्री हरि के प्रतिबिंब है और अधीन भी। सन्मार्ग पर प्रवृत्त होने के लिए विषय विराग और हरि सर्वोत्तमत्त्व का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। गुरु उपदेश से तत्वनिश्चय प्राप्तकर परतत्त्व को प्राप्त करने के लिए श्रवण, मननादि से भगवान् की उपासना करना चाहिए।

जिसका चित्त स्थिर नहीं है उसे अप्रतिपत्ति, विप्रतिपत्ति, अन्यत प्रतिपत्ति होती है। उन सब को दूर कर सात्विक अधिकारी को योग्य मार्ग दिखाने के लिए श्रीहरि ने—' तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहं ' कहा है। वह स्वयं अवतार करता है या गुरु जनों के जरिए कार्य करवाता है श्री वेदव्यास, शंकर, रामानुज और मध्वाचार्य का अवतार हुआ।

श्री हरि सर्व स्वतंत्र है। स्वगत भेद शून्य है। चेतना-चेतन जगत् के लिए बिंब रूप है। संसार के सृष्टि, स्थिति, साधु जन कल्याण के लिए अपनी लीला दिखाता है। वह नित्य मुक्त है; समस्त ब्रह्मांड के लिए उपादान कारण है, प्रकृति से अतीत ; और उसका नियामक है, सर्व गुण संपूर्ण है। सर्व व्यापी, अणु महत्त्वादि विरोधों को अपने में रख कर लोक विलक्षण है।

द्वैतमत में लक्ष्मीदेवी नित्यमुक्त हैं। केवल श्रीहरि के अधीन है। जड़ प्रकृति के लिए नियामक है। ब्रह्मादि देवताएँ श्रीहरि और लक्ष्मीदेवी के अधीन है। जीव राशियों में पांचविध हैं कि—देवता, ऋषि, पितृ राजा और मनुष्य। ये सब अपने-अपने गुण कर्म के अनुसार श्रीहरि की प्रेरणा से स्वरूपाविर्भाव के लिए कर्म करते रहते है। श्रीहरि के प्रसाद से भक्ति बढ़कर विवेक ज्ञान से संसार से विमुक्त होते है।

ये सारे विचार प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाणों से प्राप्त होता है। श्रीहरि वेदैक्य वेद्य है।

'महात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा ॥'

श्रीहरि सर्वोत्तम है। इस ज्ञान से प्राप्त दृढ स्नेह नही भक्ति है श्री आनंदतीर्थ का अभिप्राय यही है। दासकूट के साहित्य में ये सब विचार निरूपण हुआ है।

दास साहित्य

'श्रीमन्मध्वमते हरेः परतरः सत्यं जगतत्वतो।
भेदो जीव गणा हरेरनुचराः नीचोच्च भावं गताः ॥

मुक्तिर्नैज सुखानु भूति रमला भक्तिश्च तत्साधनं।
ह्यक्षादि तृतयं प्रमाणुर्मखिलाम्नायैक वेद्यो हरिः ॥

भारत देश पवित्र भूमि है। सनातन काल से इस भूमि पर कई ऋषि मुनि तपस्या की ! जब धर्म की ग्लानी होती है तब भगवान् यहाँ अवतार करता है। दुष्ट शिक्षण—शिष्ट रक्षण हीं भगवान् का संकल्प है। भगवान् के अवतार के प्रतीक इस देश में अनेक मंदिर-देवालयों का निर्माण हुआ है। धार्मिक लोग राजे-महाराजे आदि ने इन मंदिरों का निर्माण किया है।

इतिहास और पुराणों से ज्ञात होता है कि वेदकाल से इस देश में ज्ञानी—पंडित अपनी स्वानुभूतियों को अनेक पुस्तकों में सुरक्षित रखा हैं। इनमें ज्ञानी, भक्त, संत और साधु लोग भगवान् के संकीर्तन द्वारा जन-मन में भक्ति के भाव जाग्रत किया। उनमें कई धम व जाति के लोग है। उनमें त्रिमतस्थ आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी की व्याख्या कर वैदिक धर्म की रक्षा की! ये हैं कि 'शंकराचार्य' (अद्वैत) 'भगवद्रामानुजाचार्य' (विशिष्टाद्वैत) और 'मध्वाचार्य' (द्वैत) ये तीनों अपने-अपने विचारों के अनुसार तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार मत प्रचार करने लगे। भारतीय धर्म-संस्कृति और वैदिक वाङमय मठ-मंदिरों में सुरक्षित अजरामर है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वाक्य के अनुसार भारतीयों में धार्मिक भावना घुल-मिल गयी है। इसका कारण आचार्य साधु-संत इसके रक्षक हैं। वे अपने उपदेश संकीर्तन द्वारा जनता तक पहुँचते हैं। उन्हें जाग्रतकर दुर्मार्ग से बचाते हैं। ये लोग भगवान् से माता-पिता, भ्राता, मालिक आदि संबंध जोड़कर उससे अपनी रक्षा पाते हैं। उन भक्तों का पूर्ण विश्वास है कि भगवान् आपद्बंधु और रक्षक हैं।

आचार्य गुरु और साधु-संतों को राजाश्रय प्राप्त हुआ। पंडितों की सभा होती थी विद्वानों को पुरस्कार प्राप्त होता था।

आगे इन संकीर्तनकारों के गेय-गीतों ने साहित्य में स्थान पाया। संत आळवारों के दिव्य प्रबंधम मंदिरों में भगवान् के सामने गाया करने यो संघकाल में शैव-वैष्णव दोनों मतों के विद्वान कई कृतियाँ रचकर प्रसिद्ध हुए थे। वैष्णवों में नाथमुनि, यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य आदि प्रसिद्ध थे। वैसे ही शैव संप्रदाय में माणिक्य वाचकर तिरुनावक्करसर आदि प्रसिद्ध थे।

आगे मत प्रचारकों में यानी—

आचार्य

अद्वैत	विशिष्टाद्वैत	द्वैत

अद्वैत मत प्रचारक आदि शंकराचार्य हैं। वे छोटी उम्र में ही अपार पांडित्य पाकर ज्ञानी-जिज्ञासु बने। इन्होंने वैदिक मत की रक्षा करने के लिए सन्यास ले लिया चार महावाक्यों का तत्त्वार्थ प्रचार कर वेद वेदांगों का प्रचार किया। आसेतु-हिमाचल पर्यंत पर्यटन किया; जहां-तहां मठों की स्थापना कर तत्वमसि, सर्वं खल्विदं अहंब्रह्मास्मि आदि महा-वाक्यों द्वारा वैदिक धर्म की रक्षा की शंकाराचार्य ज्ञानी और पंडित थे। लोग उनके ऊंचे विचार तक नहीं पहुँच पाते थे।

आगे विशिष्टाद्वैत मत प्रचारक नाथ=यामुनमुनि आदि श्रेष्ठ विद्वांस वैदिक धर्म प्रचार करने लगे। इन्होंने ज्ञान मार्ग के साथ साथ भक्ति का भी अवलंबन लिया। देवमंदिरों का निर्माण कर उनसे भगवन्मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवायी। आगम शास्त्र विधि के अनुसार पूजा.आराधना होने लगी। पूजा आराधनाओं के समय वेद.वेदांगों के पठन इन मंदिरों में हुआ करता था।

संत श्री वैष्णव आळवारों के गेय सब भगवान् के गुण संकीर्तन हैं। उस समय की जन भाषा में गेय होने के कारण भक्त लोग शीघ्र सीख लेते थे। वैसे भगवद्भक्त मंदिरों में इन गीतों को गा.गाकर जनता में भक्ति का भाव जाग्रत किया करते।

इन वैष्णवों में अनेक प्रभेद हैं। वल्लभ चतन्य, निंबार्क आदि आदि। सबका ध्येय एक है भगवान् का संकीर्तन करना और उनसे

भक्ति करना। आगे कर्नाटक मे द्वैत मत प्रचारक आनंदतीर्थ प्रबल हुए। 'दासकूट' अथवा दास पंथ ये भी भगवद्गुण संकीर्तन द्वारा देश में प्रचार किया।

भगवान् की व्याप्ति

'पुरुष रूपत्रय पुरातन
पुरुष पुरुषोत्तम क्षराक्षर
पुरुष पूजितपाद पूर्णानंद ज्ञानमय।
पुरुष सूक्षनुमेयतत्त
त्पुरुष हृत्पुष्करनिलय मह
पुरुषजांडांतरदी बाहिरादि व्याप्त निर्लिप्त ॥

भगवान् तीन रूपों में हैं कि—अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और संकर्षण, तथा विष्णु, ब्रह्म, या शिव आदि रूपों में प्रकट हैं। पुरुष सुक्त से प्रतिपादित परमात्मा प्रत्येक के हृदय कमल में निवास करता है। ब्रह्मांड के भीतर और बाहर व्याप्त है। मानव के पंचेंद्रियों में परमात्मा विराजमान हैं। परमात्मा आत्मा और शरीर के शेषी है। इसलिए विशिष्टाद्वैती शरीरात्म भाव को मानते है। यस्य आत्मा शरीरं, यस्य पृथिवी शरीरं इत्यादि··········। अगर शरीर के अंदर परमात्मा नहीं हो तो वह केवल जड़ है। चेतना.चेतन. सब भगवदधीन हैं। मानव के प्रत्येक किया में परमात्मा के रूप स्थिर होता है।

परमात्मा की व्याप्ति का और एक दृष्टांत—

'एलगेलु तानिप्प तन्नोलुगेलरनु धरिसिहनु अपति
मल्ल मन्मथजनक जगदादयंत मध्यमगळ
बल्ल बहुगुण भरित दानव

दलुण जगन्नाथ विठल
सोह्ल लालिसि स्तंभदिंदलिवंद भकुतनिगे ॥

भक्त प्रह्लाद की प्रार्थना सुनकर भगवान् स्तंभ में ही प्रत्यक्ष हुए। दुष्ट निग्रह किया ।

मानव के आहार में भी परमात्मा है। दासवर्यों ने इसका विवरण नाना भक्ष.भोज्यों के ज़रिए दिया है।

एक उदाहरण—

'वासुदेवनु अन्नदोळु ना
ना सुभक्ष्यदि संकरुषण कृ
ईश परमान्नदोळु घृतदोळडगिप्पननिरुद्ध ।
आ सुपर्णसगनु सूपदि
वासवानुज शाकदोळु मृ (श्रीमद्धरिकथामृत सार)
लेश नारायणनु सर्वप्रदलि नेलसिहनु ॥'

जो भगवान् के प्रीत्यर्थ शुद्ध, पवित्र अन्न भुजता है वह पाप से मुक्त हो जाता है। यहाँ दासवर्य ने अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनंदमय के विवरण दिए है।

ज्ञानियों के लक्षण है कि किसी एक वस्तु में कुछ विशेष गुण हो तो समझना चाहिए कि वहाँ भगवान् का सानिध्य है। भगवान् तुलसी सालिग्राम गाय अतिथि, अश्वत्थवृक्ष संन्यासि के अंतरात्मा में रहते हैं। मानव के सारे शरीर में भगवान् व्याप्त है—

'पद्मनाभनु पाणियोळगिह
बदनदलि हृषीकेश नासिक
सदनदलि श्रीधरनु जिह्वेयोळिप्प वामननु ।
मृदुळ स्कंदेशादि त्रिविक्रम
मधु विरोधियु लोचनक
गेदलि इप्पनु विष्णु नामक श्रवणनेंदेनिसि ।

जब मनुष्य जन्म लेता है, उसी समय भगवान् का स्मरण प्रारंभ हो जाता है। इसलिए जन्म से ही भगवान् से प्रेम होता है वही भक्ति है। किसे युग-युग में भक्ति का रूप परिवर्तित हो रहा है, कृतयुग में ज्ञान ही भक्ति के रूप में था। वह कठिण तपस्या, मंत्र-पठन जप-तप होम-हवन इत्यादि से भगवान् के साक्षात्कार पाना।

त्रेतायुग और द्वापरयुग में यज्ञ-याग कर वेदोक्त मंत्र द्वारा देवाधि-देवताओं के जरिए भगवान् को प्राप्त करना। यह सामान्य लोगों के लिए दुस्साध्य हो गया।

कलियुग की बात ही अलग है। केवल स्मरण मात्र ध्यान ही भक्ति है। क्योंकि यज्ञ-याग आदि करने की शक्ति आज कल के मानव में नहीं है। भक्ति की बुनियाद ही स्मरण हैं। सभी पंथों में नवधा भक्ति प्रसिद्ध है। अनवरत हरिनाम स्मरण करना ही भक्ति का लक्षण है। परमात्मा की सृष्टि में ऊँच नीच भेद-भाव स्पृश्या-स्पृश्य इत्यादि नहीं।

हरिदासों ने भगवान् की पूजा के बारे में कहा हैकि मानसिक पूजा और बाह्य पूजा! मूर्ति में मन को स्थिर रखकर ध्यान द्वारा चिंतन मनन कर साक्षात्कार पाना एक विध। दूसरा फल फूल, नारियल

मंत्र-पठन, स्तोत्र संकीर्तन से परमात्मा को संतुष्ट करना। ये सब अपने-अपने विश्वास पर आधारित है। कुछ भक्त इस प्रकृति में स्थित पहाड़, नदी नाला, फल-पुष्प दिशाएँ और चंद्र-सूर्यों को ही भगवान् मानकर समर्पण करते हैं। अर्चना और पूजा इसके बारे में दासवर्य कहते हैं कि पंचभूतों से निर्मित यह शरीर पंचतत्व मय है; अतः भगवान् के नाना रूपों कीचिंता, स्मरण, ध्यान आदि करना ही पूजा है।

इसके लिए उदाहरण —

'जलज नाभन मूर्ति मनदलि
नेले गोळिसि निश्चल भकुतियलि···············

भक्त की सद्बुद्धि ही ज्ञान–दीप है, इसकी महिमा का वर्णन ही आरती और उसके संकीर्तन ही नैवेध्य हैं। अतः शुद्ध मन से भगवान् की प्रार्थना करना ही पूजा है।

भागवत धर्म

भागवत धर्म कब प्रारंभ हुआ, लोग उसे कब से आचरण में लाये इसका निश्चित समय बता नहीं सकते। जब से लोग भगवान् के भजन करने लगे तब से भागवत धर्म प्रारंभ हो गया। भागवत धर्म अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैतमत इन तीनों के आचार्यों को भी अभिमत हैं।

धर्म केवल प्रकृति के अंतर्भूत एक मानव गुण है। भागवत धर्म के प्रसिद्ध आचार्य नारद महर्षि है। वे अनवरत भगवान् के अनंत कल्याणगुणों का गान करते रहते हैं। वाल्मीकी प्रणीत आदिकाव्य रामायण को श्रीरामचन्द्र के याग मंडप में जिन्होंने गायन किया वे है लव कुशहैं। पद्मपुराण में भी भागवत धर्म का उल्लेख है। श्रीमद् भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने—

'सततं कीर्तयंतोमां यतंतश्च दृढव्रताः।
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्य युक्ता उपासते ।।

गीता में कीर्तन के उल्लेख देखें तो श्रीकृष्ण के समय तक उन्नति पाया था। भागवत धर्म अर्थात् कीर्तन रूप के धर्मोपदेश एक तरह की शिक्षा–संस्था है जिस राजा और प्रजाओं से आदर पाया। उपदेशकोंके प्रभाव से राजा लोग भी उनसे मदद पाते थे।

तमिल नाडु में भागवत् धर्म दो शाखाओं में विभाजित हुआ शैव और वैष्णव। संत श्रीवैष्णव आळवारों से वैष्णव शाखा और पुराने

शिव शरणों से शैव शाखा की श्री वृद्धि हुई। इन दोनों के जन भाषा में उपदेश संकीर्तन करने से समाज को नैतिक शिक्षण प्राप्त हुआ।

उत्तर भारत में मुसलमानों के आक्रमण से राज्यों का नाश हो गया इस क्रांति में विद्यापीठ का नाश, ग्रंथभंडारों में आग लगकर कई महान् ग्रंथों का भस्म हो जाना, कई लोगों को मार डालने के कारण भागवत धर्म का इतिहास के अधिक भाग नाश हो गया। कुछ धार्मिक पंडितों ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए परिश्रम किया। उत्तर देश के श्रीकृष्ण चैतन्य, तुलसीदास तथा अन्य संत भागवतों ने हिन्दू धर्म की रक्षा की।

ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य रामानुज और कर्नाटक के राजा लोगों से भागवत धर्म की रक्षा हुई।

इन भागवतों ने पुराण, स्तोत्र तथा कीर्तनों द्वारा भागवत धर्म की रक्षा की। इन लोगों में नवीं शताब्दी के अचलानंद जी का नाम है। धर्माचरण और सनातन संस्कृति की रक्षा में कर्नाटक प्रथम स्थान है। इन दासवर्यों की परंपरा आज तक विकास पा रही है। १३ वीं शती से १८ वीं सदी तक कई हरिदास हुए। १३वीं शती में श्री मध्वाचार्य द्वैत मत का प्रचार कर लोगों को सन्मार्ग में लाये। भागवत संप्रदाय में 'अद्वैत' और 'विशिष्टाद्वैत' के बाद द्वैतमत वेदांतो का प्रचार सारे भारत देश में हुआ।

मध्वाचार्य के बाद इन दासवरेण्यों ने कीर्तनों द्वारा जनता में भक्ति को जाग्रत किया। इसमें श्री नरहरितीर्थ ने कई (देवरनाम) स्तोत्रों और गीतों की रचना किया।

श्रीपादराय :

श्रीपादराय बड़ा विद्वान् सज्जन थे। प्रातः स्मरणीय श्रीपादराय की कृति 'वाग्वज्र' नामक वाद ग्रंथ है। इनके मां-बाप चन्नपट्टण (कर्नाटक) के अबबूर में बाग.बगीचा और कृषि के द्वारा जीवन बिताते थे। श्री पादराय के बचपन का नाम लक्ष्मीनारायण है। यही आगे जगद्प्रख्यात श्रीपादराय के नाम से प्रख्यात् हुए।

बालक लक्ष्मी नारायण छोटी उम्र में रोज गाय चराने जंगल जाता। एक दिन स्वमी स्वर्णवर्णतीर्थ जी उसी जंगल में 'पुरुषोत्तम' स्वामी जी से भेंट करने आ रहे थे। मार्ग में लक्ष्मीनारायण मिला। स्वामी जी बालक से पूछा कि अब्बूर कितनी दूर है? बालक ने बताया कि स्वामीजी आप मुझे. इन गायों को और सूरज को देखिए केवल इतना ही दूर है। बालक की बातों से स्वामी जी संतुष्ट हुए। उनकी कृपा से वे ही आगे श्रीपादराय हुए।

श्रीपादराज :

श्री मध्वाचार्य के प्रमुख शिष्यों में नरहरितीर्थ जी के बिना सब ने अलग-अलग मठों के स्थापना को पद्मनाभ तीर्थ की समय में थे प्रख्यात हुए। कई जहागीर पाये। आज भी इस मठ की उत्पत्ती तीस हज़ार से कम नहीं है।

श्रीपादराज का अभिप्राय है कि भागवत धर्म प्रचार हरि संकीर्तनों के द्वारा ही होना चाहिए। उस समय सब काम-काज संस्कृत भाषा में

ही चलने थे। पंडित लोग सामान्य जनता को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।

लेकिन तमिलनाडु में ऐसी स्थिति नहीं थी, वहाँ के मठाधिपति और प्रजावर्ग द्राविड़ भाषा को भी संस्कृत के समान मानते थे। श्रीवैष्णव दिव्य प्रबंधों को द्राविड़वेद के नाम से अभिहित कर मठमंदिरों में संकीर्तन करते थे। तमिल भाषा में जितने धर्म ग्रंथ हैं उतना भारत के अन्य किसी भाषा में नहीं है। इसका कारण तमिल लोगों के भाषा प्रेम है। श्रीरंग तमिल का सांस्कृतिक केंद्र है। वहाँ पर्यटन करने से श्रीपादराज ने भी कन्नड़ भाषा में धर्मग्रंथों का अनुवाद करवाया। भागवतों को ज्ञानोपदेश किया। वैदिक लोग जैसे वेदपरायण करवाते हैं, वैसे ही भागवतों के जरिये हरिनाम संकीर्तन करवाये। उस समय पूजा के समय केवल संस्कृत श्लोक पठन होता था। प्राकृत का नाम लेने का धैर्य किसी में नहीं था। ऐसे समय में श्रीपादराज ने पूजा के समय भ्रमरगीत, वेणुगीत और गोपी गीत आदि गाने का इंतजाम किया। इन गीतों को स्वयं श्रीपादराज ने ही रचा था। ये गीत सुंदर, सरल, लयबद्ध भक्तिरस से ओतप्रोत हैं श्रीपादराज पूजा के समय भागवतों के साथ सुस्वर से गाते थे। उस समय भक्तगण आनंद विभोर होकर नर्तन करते थे। इसे देखने के लिए हज़ारों भक्त आते थे। उनके समय में कन्नड़ साहित्य की श्रीवृद्धि हुई और श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ।

कि शक १४७१ में सलुव नरसिंह चंद्रगिरि के राजा था। वह किसी भी हालत में विजयनगर के राजाओं के अधीन रहना स्वीकार नहीं किया। विजयनगर के राजा तिरुपति देवस्थान के अर्चकों की तरफ था। लेकिन सलुव नरसिंह को यह पसंद नहीं था राजा नरसिंह अर्चकों के कुल का ही नाश किया। इस दुष्कृत्य से सलुव नरसिंह को

दुःख हुआ। आखिर उसने श्रीपादराज से कई शांतिकर्म करवाये। आचार्य ने ब्रह्महत्या दोष निवारण किया।

स्वामी जी के पांडित्य, शम-दमादि गुणों से संतुष्ट होकर श्रीपादराज को सिंहासन पर बिठाया और स्वर्णाभिषेक किया। उस समय स्वामी जी को मोती के कवच, नवरत्न के किरीट पहनाया गया था।

उपर्युक्त विवरण श्रीपादराज अष्टक में—

'श्रीद्वीर नृसिंह नृपतेर्भूदेवहत्या व्यथां।
दूरीकृत्यतदर्पितोज्वल महा सिंहासने संस्थितं॥

श्रीमत्पूर्व कवाट नामक पुरे सर्वेष्टसिद्धि प्रदः।
श्री श्रीपादयतींद्र शेखर मणिभूयात्सनः श्रेयसे॥'

इस तरह श्रीपादराज की इज्जत देते थे। आगे श्रीपादराज तीर्थयात्रा पर निकले। काशी के महापंड़ितो से वाद-विवाद हुआ। भागवत धर्म के उपदेश काशी के पंडितों को अच्छा नहीं लगा। वहाँ के संस्कृत पंडित साधारण देशी भाषा को श्रेष्ठ स्थान नहीं देते थे। इसलिए वे उन्हें—

'पांडित्य हीना कवयो भवति।

कवित्व हीनाश्च पुराण भट्टः॥

पुराण हीना कृपि माश्रयंती।

भग्नाः कृष्णेर्भागवता भवंति॥'

यानी जिन्हें पांडित्य नहीं है वे कवि होते हैं। जिन्हें कवित्व प्रतिभा नहीं है वे पौराणिक बनते हैं जो पुराण भी नहीं जानते हैं वे कृषि कार्य करते हैं। जिन्हें कृषि कार्य भी नहीं आता है वे भागवत धर्मावलंबी होते हैं।

इस तरह जो संस्कृत पंडित नहीं है उसे भागवत कहते थे। ऐसी परिस्थिति में विद्वत् सभा में स्वामी जी ने भागवत धर्म के बारे में कहा तो उन्हें विद्वत् वरिष्ठ नहीं माना।

जब आदिशंकराचार्य ने भक्तिमार्ग का उपदेश दिया तब भी लोगों ने यही समझा। शंकराचार्य शुष्कवाक्यार्थ चर्चा में जन्म व्यर्थ करना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने उन पंड़ितों से

संप्राप्ते सन्निहिते काले नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥

भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढमते ॥ कहा। आखिर स्वमी जी ने राजा के सामने उन लोगों से वादार्थ किया पीठाधिपति यतिवर्य वेदांत के द्वारा धर्म प्रचार करना चाहते थे। उन पंडितों को यह ठीक नहीं लगा। आखिर दोनों ने वाक्यार्थ किया स्वामी जी के वक्तृत्व तथा व्यक्तित्व से राजा बहुत प्रसन्न हुआ। जो पहले ही शर्त थी जो हारेगा उन्हे विजय प्राप्त करनेवाले का आश्रम धर्म स्वीकार करना चाहिए। स्वामी जी की विजय हुई। जो हार गए उन्होंने सन्यास आश्रम स्वीकार किया।

आगे कुछ समय में मध्व मत का प्रचार बढ़ गया श्रीपादरायने कन्नड़ वाङमय को प्रथम स्थान दिया। उससे ही दास साहित्य की

श्री वृद्धि हुई। उनसे कन्नड़ भाषा में सरल शैली प्रारंभ हुई। उनसे प्रेरित अनेक पंड़ित रामायण, भागवत आदि ग्रन्थों को कविता के रूप में रचा।

व्यासराय

विजयनगर कर्नाटक साम्राज्य की स्थापना के कारण कर्ता श्री विद्यारण्य हैं। किंतु विजय नगर की उन्नति के कारण कर्ता श्रि व्यासराय है। जैसे विद्यारण्य के नाम के बिना कर्नाटक का इतिहास नहीं है, वैसे ही श्री व्यासराय के नाम के बिना कर्नाटक की उन्नति का विचार कहा नहीं ज ासकता विद्यारण्य जी ने अद्वैत तत्व का प्रचार और ग्रन्थरचना की लेकिन श्री व्यासराय जी ने मध्वाचार्य के पीठ पर बैठा कर द्वैतमत संबंधी ग्रन्थ रचना की। ये दोनों विभूति पुरुष केवल दो सौ साल के अंतर में जन्म लेकर, दोनों एक—एक पीठाधिपति के स्थान से मत प्रचार किया। ये दोनों ग्रंथ कर्ता हैं। एक ही राज्य के साम्राज्य स्थापना और अभ्युदय किया ! इनके कार्य विवरण कर्नाटक इतिहास नें स्वर्णाक्षरों में अंकित किया है।

उस समय के पंडित विद्वान और मठाधीश पांडित्य की प्रशंसा करते थे, परंतु मतीय विषयो में झगडा नहीं करते थे। एक बारविधारण्य हाथीपर चढकर काशीयात्रा से वापस लौट रहे थे। रास्ते में जयतीर्थ

से भेंट हुए। एक माध्व मत ग्रंथ के टीकाचार्य, दूसरे शांकर सिद्धांत के टीकाचार्य। दोनों मठाधीश हैं। विद्यारण्य वेदों के भाष्य रचकर प्रख्यात हुए थे! उस समय जयतीर्थ जीने कहा कि

स्वामी जी आप तो वेद भाष्य कर्ता है। मेरे यहां जो ग्रंथ है 'यह हमारे आचार्य विरचित प्रमाण लक्षण ग्रंथ है आप जैसे महान् ही तात्पर्य बताने शक्त हैं। किंतु मैंने तो एक साधारण व्याख्या की है कृपया देखिएगा। यह सुनकर लक्षण ग्रंथ और उसकी व्याख्या को विद्यारण्य जी के करकमलों मे दिया विद्यारण्य जी ने जयतीर्थ जी की व्याख्या को देखकर दांतो तले उंगली दबाया। और कहा कि जयतीर्थ जी ! मेरे काशीयात्रा पूर्ण हुई। मैंने इस हाथी पर बैठकर सब देशों पर द्विग्विजय किया। लेकिन आज आपके पांडित्य से प्रसन्न होकर उसी हाथी पर आपको बिठाकर उत्सव मनाउंगा। जयतीर्थ जी को हाथी पर बिठाकर उत्सव मनाया था। इस तरह पूर्ण पांड़ित्य शोभि दोनों विद्वान् विमत्सर थे श्रीव्याासराय जी मैसूर जिले के कावेरी के किनारे बन्नूर के है॥ १३२ साल पहले मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टणम् था श्री व्यासराय सुंदर, सुशील और वेदशास्त्र पारंगत ब्रह्मण्यतीर्थ स्वामी जी से उन्होने उपदेश लेकर सन्यास स्वीकार किया! इसका नाम भी व्यासतीर्थ रखा गया! ब्रह्मचर्याश्रम से सीधातुरीयाश्रम स्वीकार किया था। व्यासराय ने सारे देश में यात्रा कर मत प्रचार किया। कई जगह वाद-विवाद कर द्वैत मत के भक्ति पंत का विकास किया श्री मध्वाचार्य द्वारा निर्मित द्वैतसिध्दांत का ६४८वर्षों में सारे देश में दिन ब दिन विकास होता गया। जो मत प्रचार के लिए सन्यास लेते थे वे

अपने देश में न रहकर सारे भारत में घुम घुमकर द्वैत मतका प्रचार करते थे। १४८६ में विजयनगर की, स्थापना हुई. सालुव नरसिंह राजा के वंशवालों के समय में साम्राज्य की स्थापना हुई. राजा तिरुमलै तिरुपति के वेंकटेश्वर के भक्त थे। राजा अपने गुरु को देश में ही रखा था। वह एक बहुत बडा विद्याकेंद्र बनाया उस वक्त श्रीपादराय बहुत बडा विद्वान थे उन्होने व्यासराय जी को तिरुपति भेज दिया। राजा ने श्रीव्यास तीर्थ श्रीपाद जी को राज मर्यादाओं से राजधानी में ले आये। राजा भक्ति से गुरु की अर्घ्यपाद्यसे पूजा की व्यासराय राजा की इच्छा के अनुसार तिरुमला तिरुपति में भगवान के आराधना करते हुए मत प्रचार करते थे।

'ईसु मुनिगळिद्दरु माडिदरु व्यासमुनि मध्वमतवनुध्दरिसिद ॥

व्यासराय जी केवल मध्वमत प्रचारक मात्र नहीं है। सारे मत के यानि शंकर, रामानुज और मध्वमत के समान भक्ति पंथ को सारे भारत खण्ड में प्रचार किया।

श्री वादिराज

कन्नड़ भाषा में भागवत धर्म के प्रचार करनेवाले यतीश्वरों में श्री वादिराज चौथे हैं। उडुपि के अष्टमठो में स्वादी मठ के पीठारोहण कर १२० वर्ष तक जीवित थे। वादिराज ने कई संस्कृत ग्रन्थों की रचना की, वादिराज जी उडुपि मठ में यतियों के पूजा के समय को दो महीने से दो वर्ष तक बढाया जिसे पर्याय कहते है। भागवतों की भजन पद्धति को प्रत्येक मठ में चालू किया। वादिराज एक बार पूना में चातुर्मास का व्रत का अनुष्ठान किया। उस वक्त उन्होंने 'रुक्मिणीश विजय'नामक महाकाव्य की रचना की

श्री वादिराज जी ने बदरिकाश्रम जाना चाहा। उस समय साक्षात् व्यास ऋषि भी श्रीवादिराज को बदरिकाश्रम ले जाने के लिए उन के पास आये। दोनों बदरिकाश्रम गए। श्री वादिराज जी ने त्रिविक्रमोपासन करना चाहा। उन्होंने गुरु मध्वाचार्य से प्रार्थना की कि त्रिविक्रम मूर्ति चाहिए। मध्वाचार्य जी ने उन्हें ठीक समय पर त्रिविक्रम मूर्ति का प्रदान किया। इस तरह श्री वादिराज जी ने बदरिकाश्रम में नर नारायण, मध्वाचार्य और वेदव्यास के पास कुछ समय रहकर प्रयागक्षेत्र वापस आगए। उनके सारें शिष्य आचार्य के आगमन से संतुष्ट हो गए।

श्री वादिराज जी उडुपि में बहुत समयतक मत प्रचार और ग्रंथ रचना करते रहे। फिर उन्होंने शिष्यों के साथ यात्रा करने निकले।

जब स्वामी जी निकले तब एक विधवा और एक ब्राम्हण सामने आये। उसे देखकर शिष्य गण शकुन की बातें करने लगे, किंतु आचार्य दृढ मनस्क थे और कहा 'मनोजय हीं सब कार्य से दिग्विजय' है।

'हते कंसे गते कृष्णे गते ज्ञानक दुंदुभौ।
मत धर्म विनाशाय कुत्र तिष्टति देवकि ॥

तात्पर्य—

जब कंस मर जाता है, तब कृष्ण परंधाम सिधारते हैं। वसुदेव भी चला गया, तब मत धर्म नाश करने के लिए देवकि कहाँ है? देवकि शब्द का एक अर्थ है कि विधवा।

इस तरह संचार करते-करते, भद्रा नदी किनारे मध्वाचार्य जी ने जिस चट्टाना पर पूजा की थी उस चट्टान पर वादिराज जी ने पूजा की। उसके बाद बेलूर आये।

उस समय होयसळ राजा विष्णुवर्धन रहा भगवान के उत्सव धूम-धाम से चलाता था। सब आचार्य बेलूर पहुंचे तब गरुडोत्सव चल रहा था भगवान के दर्शन कर श्री वादिराजतीर्थ बहुत खुश हुए। उस समय आचार्य ने गाया—

बेग बारो बेग बारो। वेलापुरद चेन्न।
बेग बारो बेग बारो नीलमेघवर्ण ॥
इंदिरे रमण गोविंद् बेगबारो।
नंदन कंद मुकुन्द बेग बारो ॥

यह गीत सुनकर श्री वैकुंठदास जी ने नृत्य किया और आचार्य के श्री चरणों में प्रणाम किया।

जब आचार्य बेलूर से निकले तब भगवान् पर एक मंगळ गीत गाया। उस गीत में दशावतार का वर्णन है। आज भी भगवान् के सामने उसी गीत को गाते हैं।

क्रि शक १६०० में वादिराज परलोक सिधारे। भारतीय यतिवर्यों के इतिहास में सशरीर बृंदावन प्रवेश करनेवाले में ये प्रप्रथम हैं। वे १२० साल जीवित थे। महामंत्र, स्तोत्र, वादिराज कवच आदि की रचना की हैं। इस तरह आचार्य वादिराजतीर्थ संसार में जन्म लेकर मत प्रचार कार्य में हमेशा निरत थे।

पुरन्दर दास

'मनोभीष्ट दातारं सर्वाभीष्ट फलप्रदं ।
पुरंदर गुरुं वंदे दास श्रेष्टं दयातीर्थं ॥

सोलापुर जिला में पंढरापुर हैं। इसी गांव में पुरंदरदास का जन्म क्रि श १५५० में हुआ । यहां वरदप्प और राधाबाई नाम के ब्राह्मण भक्त थे । ये दोनों रोज भक्ति से भगवान् की आराधना करते थे । एक दिन राधाभाई को एक स्वप्न हुआ कि हे साध्वी ! तुम्हारे गर्भ में एक परम भागवतोत्तम का जन्म होगा । राधाबाई की खुशी का ठिकाना नहीं है उसने पति से स्वप्न वृत्तांत सुनाया । पति पत्नि दोनों परम संतुष्ट हुए। कुछ समय के बाद उन्हे एक पुत्र पैदा हुआ । उस पुत्र का नाम श्रीनिवास नायक रखा गया । वहीं दास वरेण्य पुरंपरदास है।

बालक श्रीनिवास नायक बड़ा कंजूस और लोभि था । किसी को एक पैसा नहीं देता था । ठीक समय पर सुंदर और सुशील कन्या लक्ष्मी से उसका विवाह हुआ । सति और स्वर्ण पर मुग्ध था । भक्त वरदप्प नायक पुत्र की हालत से बहुत चिंतित हो गया । उसे ठीक समय पर जाग्रत करने के लिए कई उपाय किये । आखिर पत्नि के उपदेश से लोभि श्रीनिवास नायक की आंखे खुलि । भगवान् की कृपा उस पर पड़ी उसने अपनी सारी संपत्त को दान कर हरिदास बन गया वह पचले

स्मार्त ब्राह्मण था। श्री व्यासराय से उपदेश पाकर वैष्णव हो गया। भगवत्सकीर्तन कर, भागवतों की सेवा में निरत हो गया। भगवान की कृपा से दिव्यज्ञान प्राप्त हुआ। उसके मन में कई भावनाएं तरंगें मारने लगी रोज कई गीत उसके मुंह से पुरंदर दास गीत गाते-गाते रोज घर-घर में जाकर भिक्षा मांगने लगा। जो नवकोटि नारायण था। आज वह पुरंदर दास बन गया। पत्नि पुत्रों केसाथ भारत भर में गीत गाते फिर– ता रहता था। इस परिवर्तन से लोग विस्मित हो गए। उसकी भक्ति सच्ची थी, इसकी प्रार्थना पवित्र। वह ऐसे महान् हो गए कि एक लाख पच्चीस कीर्तनों के रचनाकार हो गये। इनके गीतों में उपनि- षत का सार हैं।पुराणेतिहास का विवरण है। ऐसे ज्ञानी हरदास ने पामर लोगों के उद्धार करने के लिए पुण्य क्षेत्रों का संचार करने लगा जहां जाते थे वहां के लोग इसके संकीर्तन से जाग्रत होते थे। भग वान् पर भक्ति स्थिर हो गयी। कन्नड़ वाङ्मय में इसके गीत के समान गीत नहीं है।

दासवर्य के कीर्तन श्रुति-स्मृतियों के सारसर्वस्व है। साथ साथ भक्तों के भवतारक भी हैं। इसके चार पुत्र और चार -पुत्री सब दासकूट में सम्मिलित है। हरि भक्ति का प्रचार करने लगे पुरंदर दास संगीत साम्रा- ज्य के पितामह है। तेलुगु के प्रख्यात कीर्तनाकार त्यागराज भी पुरंदर दास को गायन कला के महाचार्य मानते थे। पुरंदरदास संगीत और साहित्य भी प्रख्यात थे। इनके चारों पुत्र हरिदास थे। किंतु उन चारों की संतान नहीं होने के कारण इस वंश यहीं रुक गया। किंतु जो दासकूट की स्थापना की वह दिन ब दिन बढ कर विश्व व्यापी हो गया। हरिदासों की और कीर्तनाकारों की संख्या असंख्यात हैं। वंश माने शारीरिक संबंध से उत्पन्न मानव देह मात्र नहीं है। परंतु

कृति — क्रिया से उत्पन्न प्रक्रिया का विकास भी मुख्य हैं। इस तरह पुरंदर दास के जीवन, गीत रचना, भक्ति इत्यादि कार्य क्षेत्रों का विकास किया जो सैकड़ों साल से प्रख्यात हैं। पुत्र पौत्र अच्छे और बुरे भी हो सकते हैं, लेकिन सत्कार्य और सत्प्रवृत्ति शाश्वत है पुरंदर दास के गीतों को पुरंदरोपनिषत' करते हैं।

कन्नड साहित्य में दास साहित्य का विशेष स्थान है। पुरंदर दास के गीत झोपडि से महल तक प्रचलित है।भगवान् के शिशु रूप से लेकर परतत्व तक का विवरण हैं इन गीतों में।

भगवान् को ढूढते 'कूसन कंडिरा' इस आत्मीय शब्द को सुन कर मातृहृदय गद्गदित होते है। आगे–

पांडुरंग को 'अप्प बारो तिम्मप्प बारो' कह कर प्रेम से बुलाते हैं। भक्तों के मन में प्रेम जाग्रत करता है। भगवान् दूर कहीं वैकुंठ में नहीं है। यहीं हमारे पास ही है। हमारे अंदर ही है।

भारत देश की माहिमा विश्व प्रसिद्ध है।

यह त्याग, और ज्ञान भूमि की है। यहां भगवान् भी कभी-कभी अवतार लेता है। दुष्टों को दण्ड देकर शिष्टों की रक्षा करता है। उत्तर देश के मथुरा, द्वारका, बृन्दावन, काशी और अयोध्या आदि भगवद वतरित स्थल है। ऋषि,मुनि और साधक हिमालय की गुफाओं में तपस्या कर मानव जीवन को सार्थक मानते है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो दूसरे देश अज्ञान के अंधाकार में

पडे हुये तब भारत देश ज्ञान ज्योति से लोगों को सन्मार्ग पर चलाया। भारत देश हमेशा शांति और परस्पर सौहार्द्र चाहता है । आज भी जब पडे हुए थे तब हमारे देश के लोग सुख-शांती से रहना चाहते हैं ।

इनकी सांस्कृतिक परंपरा अविच्छिन्न हैं । धार्मिक विचार अत्यंत उन्नत है । नैतिकस्तर ऊंचा है । यहां के आचार्य, गुरु और भगवद्भक्त लोगों को सन्मार्ग पर ले जानेवाले ज्योति हैं. ये अपने को भगवान् के दास कहते हैं । भगवान् मालिक और स्वामी है ।उसके भक्त ही दास कहलाने योग्य हैं । भक्ति भगवान् पर ही कीजा सकती हैं। दासत्व के आधार ईश से भक्ति करना है । जब भगवान् से प्रेम बढ़ता है तब भक्त की भक्ति बढ़ति है । ध्यान, पूजा, तप इत्यादि से भगवान् के साक्षात्कार प्राप्त होता है । जो भक्त साक्षात्कार पाता है वह अंतः चक्षु से उसे देख सकता है ऐसे महात्मा लोग भारत में पैदा हुए । सूर, तुलसी कबीर संत आळ्वार आदि ऐसे ही महान् हैं ।

दास साहित्य और वचन-साहित्य दोनों एक है । किंतु उनके वैशिष्ट्य, रूप — आकार अलग — अलग हैं । मध्वाचार्य दास साहित्य के अध्वर्यु हैं। आचार्य ने भक्ति का प्रचार किया । इनके भक्ति गीत श्रेष्ठ हैं। द्वादश स्तोत्र के कई रागों में भक्ति रस उमड आता है । संस्कृत भाषा को साधारण लोग नहीं समझ सकते थे । इसलिए जन भाषा कन्नड में गीत रचकर लोगों में भक्ति को फैलाया । पहले-पहल श्री नरहरि तीर्थ ने जनवाणी में गीत रचा । उसके बाद यही परंपरा आगे बढी।

'दास साहित्य के वैशिष्ट्य'

१ वेद, उपनिषत्, अरण्यक, दर्शन आदि के सार तत्व कन्नड भाषा में ज्यों का ज्यों प्रति बिंबित है। दासवरेण्यों ने कन्नड़ भाषा में बहुत बडा कार्य किया है।

२ इनके कई गीतों में भारत क इतिहास वर्णित है।

३ पौराणिक विचार और अवतारों का विषय इनके मूल भंडार हैं।

४ कुछ गीतों में सृष्टिक्रम और वैज्ञानिक विचार हैं।

५ कन्नड़ भाषा में छन्दो की परिपाठी पहले-पहल दास साहित्य से ही प्रारंभ हुआ।

६ इनके गीतों में शांति, भक्ति, वात्सल्य, करुणा आदि रसों का निरूपण है।

७ वृत्तनाम, सुळादि, उगाभोग आदि की रचनाएं की हैं।

८ ताल, लय, राग संयोजन इनके गीतों में अच्छे हैं। संगीत शास्त्र के अनुसार गीतों की रचना हुई है पुरंदर दासजी तो भगवान् को गीतों से ही स्तुति कर उसे राग-रागनी यों से पूजा की।

९ इनके गीतों में कई आवश्यक ज्योतिषशास्त्रों का विवेचन था किया गया है।

१० लोगों में भक्ति का प्रादुर्भाव कर, उनके नैतिकस्तर की उन्नति की हैं। बाह्याडंबर का खण्डनकर उन्हे सन्मार्ग पर चलाया हैं।

A दास साहित्य में कन्नड़ छंद के षट्पदि के कई प्रकार हैं ।

B त्रिपादि उसमे कुछ प्रथक् है ।

C चौपादि और संगत्य में कई कंद पद्य हैं ।

D रगळे नाम के अनेक पद्य भा है । पुळ'दि भी हैं ।

भगवान् की नाम महिमा ! त्रिकालाभादित सत्य को सरळ और सुंदर शैली में गाया हैं । कर्नाटक के गांवों में इन गीतों को कई ताल-रागों में गाते हैं । दास साहित्य में उगा भोग के चरित्र आठ सौ साल पुराना है । इस तरह हरिदास साहित्य सर्व श्रेष्ठ कृति रत्नों से भरा है ।

कृष्णदेवराय के समय में पुरंदरदास की इज्जत सौगुनी होकर बडी राजा कृष्णदेवराय पुरंदरदास जी को गोदान करना चहा । किंतु दास जी ने कुछ नहीं स्वीकार किया राजा ने चक्रतीर्थ के सामने एक ध्यान मंदिर बनवाया और एक मंडप बनवाकर पुरंदरदास की सेवा की आज भी उस मंडप को पुरंदर दास मंड़ा कहते हैं ।

पुरंदरदास जी के लोकोपकार—

प्राचीनकाल में अचलानन्द जी, नरहरितीर्थ, श्रीपादराय और व्यास राय जी को धर्मोपदेश देने का श्रेय इन महानुभावों का हैं ! किंतु पुरंदरदास जी ने कई कीर्तनों की रचना कर घर-घरमें प्रचार किया शिवाजि महाराज का समय था । पुरंदर दास जी कर्नाटक के कीर्तनाचार्य हैं । उन्होने वेदान्त तत्त्व, पुराण, इतिहास आदि कन्नड़ के कीर्तनों द्वारा समाज के नैतिक उन्नति में योग दिया ।

उस समय संस्कृत भाषा प्रधान थे । विद्वत् सभाओं में कन्नड़

का प्रवेश नही थीं। उस विचार को दूर करने के लिए श्री नरहरि तीर्थ, श्रीपादराज और व्यासराय इन तीनों ने कन्नड़ भाषा में स्तोत्र और सुळादि की रचना की इन यति त्रयने धर्म प्रचार और भाषा प्रचार दोंनो का साथ साथ किया। फिर भी एक समर्थ व्यक्ति की आवश्यकता थी। ऐसे सुसमय में श्री पुरंदर दास जी इस सेवा में कमरकस कर खडे हुए। उन्हों ने सारे धर्म ग्रंथों के सार तत्वो को कन्नड़ भाषा में गेयों जनपद गीतों के द्वारा प्रचार किया। पुरंदर दास जी के समय संस्कृत ग्रथ को जितना पुरस्कार प्राप्त था इतना ही पुरस्कार इस पूतात्मा की कृति मे मध्वाचार्य जी को प्राप्त हुआ।

पुरंदरदास जी ने अपूर्व रागों में भक्ति भरित साहित्य को मिलाकर, कई गीतों तान और वर्ण भगवत्संकीर्तन की रचना की श्री त्यागराज के इतिहास से ज्ञात होता है कि त्यागराज की माता जिन गीतों को गाती थी, उन गीतों से प्रेरणा और स्फूर्ति पाकर त्यागराज ने भी उसी तरह के गीतों को तेलुगु में रचकर गाया।

संसार में जो मति सम्मत है वह मताचार्यों को भी सम्मत होता है। पुरंदरदास जी ने भरतखण्ड के वैदिक और अवैदिक मतों में जो सर्व सम्मत विषय है. उसे चुन-चुनकर अपने गीतों में निरूपण किया सारे विचार 'मध्वसिद्धान्त प्रकाशिनी में हैं। (७-२-१९२२)

श्री रामानुजाचार्य के जैसे पुरंदरदास के विचार भी थे कि।

'जन्मतः चंडाल से जो कर्मतः चंडाल है वह नीच है। हरिजनों के बारे में जो गीत गाया है

'होलेय बंदनेदु ओळगे देवर माडि।
गण-गण गंटेय भारिसुवरय्य ॥

तनुविन कोपवु होलेयल्लवे ।
परधन परसति होलेयल्लवे' ॥
हरिय वीस्मृति तानु होलेयल्लवे ।
होरगिद्ध होलेयन--ओळगे बच्चिट्टरे ॥

भारतवर्ष में करीब पांच हजार वर्ष पहले ही देवमंदिर में मूर्ति की पूजा होती थी ।अपने-अपने इष्ट देवता की पूजा भक्ति से करते थे भारतीय संस्कृति के संपूर्ण विचार वेदों में प्रतिपादित हैं । मंत्र, ब्राह्मण अरण्यक और उपनिषत यह संपूर्ण वैदिक वाङमय है । इनमे भक्ति श्रद्धा और मूर्तियों का उल्लेख हैं । कहा जाता है कि वेदों को अपौरुषेय, अनादि आस्तिक वर्ग अपने अपने मत तत्त्वा को वेदवाक्य से उदद्दत करते हैं।

अगर अपौरुषेय वेद नाम की निधि नहीं हों तो धर्म तथा अन्य अतींद्रिय पदार्थों के ज्ञान को समझ नहीं सकते थे ।

प्राचीन आचार्यों के समान शंकर, रामानुज और मध्वाचार्य ने भी वेदों को अपौरुषेय निरूपण किया हैं । श्री मध्वाचार्य ने अपनो 'विष्णुतत्व निर्णय' अनुव्याख्यान में और गीताभाष्य में सप्रमाण वेद प्रामण्य का निरूपण किया है । वेद के मुख्य उद्देष आध्यात्मिक ज्ञान उत्पन्न करना है । आध्यात्मिक तत्त्व निरूपण ही वेदों का स्पष्ट अर्थ है । प्राचीन आचार्यों ने ब्रह्म सूत्र के समन्वयाधिकरण से परब्रह्म महाविष्णु के सर्वोत्तमत्व का प्रतिपादन किया है । ऋषि, मुनि और तत्त्वज्ञानियोंके जीव, जड़ है और ईश्वर तत्त्व ज्ञान है ।इसलिए वे —

'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ' कहा है ।

यानि इतिहास और पुराणों से जो अर्थ प्राप्त होता है वही वेदों का मूलर्थ है। जो वेदों में नहीं बताया गया है वह और कहीं नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि इतिहास और पुराण वेदों की व्याख्या है।

प्राचीन वाङमयों में अंगों पांग भक्ति हो तो परम पुरुषार्थ मोक्ष के लिये नियत साधन भक्ति योग है इसकी प्राचीनता के सप्रमाण प्रमाणित है। ऋग्वेद के श्रद्धा मंत्र से श्रद्धा को देवता के रूप में वर्णन किया है।

'श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।' (ऋग्वेद १०, १७)

....

'भजे रथस्य सत्पतिं।' (ऋ. १०, ६०)
इस तरह के अनेक वाक्य वेदों में हैं।

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वां॥'

इस वाक्य में भक्ति के फल रूप देवता प्रसाद का वर्णन है। ऋग्वेद में इंद्र, वरुण इत्यादि देवता आभूषणों से अलंकृत हैं। उन्हें भक्ति से लोग आह्वान करते थे।

'आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः-पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥'

इत्यादि पुराण वाक्यों से प्रतिपादित विष्णु ही हैं। वेदों में विष्णु ही मुख्य देवता है बाकी सब परिवार देवताएं हैं। करीब क्रि.श. पूर्व

५-६ शक में रहनेवाले वैय्याकारणी पाणिनी भी 'भक्तिः' देवार्जुनाभ्यां वुन् इन सूत्रों में वासुदेव की भक्ति का निरूपण किये हैं। विष्णु शब्द देश काल, गुण से व्याप्त परमात्मा का बोध करता है। तैत्तरीय आरण्यक में 'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।' कह नारायण, विष्णु और वासुदेव को एक है यह स्पष्ट होता है कि विष्णु, नारायण-वासुदेव कृष्ण की भक्ति मानव सृष्टिसे लेकर उस पुरुष-स्वरूप को साधना का साधन बनाकर अपने-अपने स्तर और अर्हतानुसार व्यवहार में रहा।

ई. पूर्व. छठी. शताब्धी तक शायद ई. पूर्व द्वितीय शताब्धी से कृष्णभक्ति और उसके पराक्रम जन जनित हो गया। कृष्ण नारायण के अवतार है, यह सर्व श्रुत है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु, वामन है, महाभारत में दामोदर आदि विशेषण कृष्ण के लिए निरूपित है। विष्णु और कृष्ण एक है कि विचार क्रमानुसार बोधायन धर्मसूत्र तथा महाभारत में निरूपित हैं। पतंजलि के समय में वासुदेव को कृष्ण भक्त कहा है) अतः यह भी स्पष्ट है कि विष्णु के अनेक अवतारों के बीजरूप, पद्मनाभ रूप भी यही कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं। पुराण के विशेषज्ञ कहते है कि कृष्ण भक्ति और विष्णु भक्ति अति प्राचीन संप्रदाय है।

बनारस के प्रति में है कि संज्ञैप तत्र भगवतः वासुदेव पद देवता बोधक है।

जयदित्य ने सातवीं शताब्धी में अपनी काशिकावृत्ति मे कहा है कि—संज्ञैषा देवता विशेषस्य न क्षत्रियाख्या न्यासकार जिनेंद्र बुद्धि ने कि. श. सातवीं सदी में काशिका व्याख्या में अभ्यर्हितत्वंतु वासुदेव शब्दस्य देवता विशेषत्वात कैयतर ने बारहवीं शताब्दी के अपने प्रदीप में—

नित्यः परमात्मा देवताविशेषः इह वासुदेवो गृह्यते इत्यर्थः हरदत्त ने तेरहवीं शताब्धि में अपनी पदमंजरी में भी व्याख्या की है कि—व

सत्यस्मिन् सर्वमिति व्युत्पत्या परमात्मन एषा संज्ञा

अतः स्पष्ट कह सकते हैं कि वासुदेव के पुत्र वासुदेव कृष्ण परमात्मा के अवतार हैं।

महाभारत में प्रसिद्ध नर-नारायण ही अर्जुन और कृष्ण हैं। पाणिनी ने भी इसी के अनुसार वासुदेवार्जुन को एक साथ मिल कर कहा है। बेस नगर के स्तंभ लिपी से भी ज्ञात होता है, साथ-साथ कई लेखों द्वारा भी मालूम होता है शिला शासन और कई यात्रियों के वितरण से ज्ञात होता है कि कृष्ण–विष्णु भक्ति की ऐतिहासिक प्राचीनता का बोध होता है।

अचलानन्ददास

इन कीर्तनाकार अपने भक्ति गीत के द्वारा जनता में जाग्रति फैलाया । अचलानन्द जी के समय के बारे में विवाद है । कुछ लोग नवीं शताब्दी और कुछ लोग पंद्रहवीं शताब्दी कहते है ।

श्री अचलानंद दास जी 'हरिणपुर' निवासी होने पर भी कई जगह घूमते-फिरते थे । वे भारत भर में घूमते फिरते भागवत धर्म का प्रचार तथा उपदेश करते थे । अचलानन्द की महिमा का वर्णन—

'भूतैर्यान पथानु गोचर पदः श्री नारसिंहो गुरुः' किंवदंती है कि-

दास जी ने अपने आराध्य मूर्ति नारसिंह को म्याने में बिठाकर हाथ में तंबूरा लेकर गीत गाते जाते थे । जहां-तहां लोग दास जी के गीत सुनते थे वहां के लोग भागवत धर्म को अपनाते थे । एक बार दास जी ने पंढरपुर में चंद्रभागा (भीमरथी नदी) नदी में स्नान कर अर्घ्य देते समय भगवान् विठल उसको दर्शन दिया । पांडुरंग के दर्शन होने के बाद दास जी ने वैष्णव चिन्ह गोपी चंदन का धारण किया । इस का प्रमाण —

काशिति संख्याशक कालकेब्दे
विळंबि वर्षे कलि चैत्र शुक्ले ।
पक्षे दशाम्यां दिन मध्य काले
प्रत्यक्ष को भूद्गुरु विठ्ठलाख्याः ॥

'अकाना वामतो गतिः इस न्यास से 'क' वर्गीय व्यंजन के प्रथम अक्षर होने के कारण 'न' अशीति माने ८०-अस्सी के आगे न रखने पर ८०१ यानी शालिवाहन शक विठ्ठवी सं. शुद्ध दशमी दुपहर को 'विठल' भगवान् का साक्षात्कार हुआ ।

अचलानंद दास अनेक तीर्थों के संदर्शन कर नेपाळ राज्य में गए। उस समय राजपुत्र सर्प के डंकने पर मरा था । दुःखी राजा शव संस्कार के लिए जा रहा था । जब स्वामी जी के श्री नरसिंह भगवान् के ध्याने को देखा तब राजा ने प्रार्थना की कि अपने पुत्र को जीवित कीजिए । स्वामी जी राजा के दुःख से गद्गदित हुए । गरुड़ मंत्र का जाप किया ।

गरुड मंत्र प्रभाव से राजपुत्र के शरीर गत विष नाश हुआ । वह उठ बैठा । इस आश्चर्य को देख राजा बहुत खुश हुआ । राजा ने धन धान्य आदि दिये । किंतु दास जी ने केवल बारह क्षेत्र के सालिग्राम को लिया । इन सालिग्रामों को छे मठों में स्थापित कर पूजा का इंतजाम किया । हरिभक्तों ने गीत गा-गा कर हरिमत का प्रचार किया ।

दास जी ने अपने संकल्प के अनुसार तीर्थ यात्रा कर फिर कर्नाटक राज्य पहुँचे । उस समय कर्नाटक राष्ट्रकूट के राजा शासन कर रहे थे । राजा ने अचलानंद दास को कई गांव दिया । देवताराधन, धर्म प्रचार के लिए सहाय किया । तुरवेकेरे गांव से तुमकूर तक प्रचार कार्य किया । इनके औलादों ने आज भी स्मार्त होने पर भी, मध्व वैष्णवों के जैसे गोपी चंदन धारण करते हैं । तात्पर्य है कि वे अपने को अचलानंद संप्रदायी कहते हैं । इस पुंड्र धारण के बारे में

गुरुपीठ से कोई शिकायत नहीं है। इन वंशीयों में और एक आश्चर्य है कि घर-घर में अलग-अलग पूजा आराधन नहीं करते हैं किंतु पर्याय पद्धति के अनुसार प्रत्येक देव मंदिरों में विठल, नरसिंह आदि दास युग की र्तियों में सालिग्राम की पूजा करते हैं। इनके आराधन पूजादियां डील डौल हैं। पूजा के समय संकल्प करते हैं। कि—

श्रीमदचलानंद देशिकार्य, रसरसिज दिव्य कर्णिका पीठोपरि सुखोपविष्ट —विठल नरसिंह प्रेरणया।

दासवंश के लोगों के पास अपूर्व ग्रंथ सुरक्षित है। अचलानंद जी के बाद अच्युतदास का नाम प्रसिद्ध है। हरिदास परंपरा आगे अत्यंत महत्व का है।

पुरंदरदास के गीत में राग और ताल

राग—कांबोजी—एकताल

यादव नी बा यदुकुल नदन। माधव मधुसूदन बारो ॥
माधव मधुसुदनबारो ॥ सोदरमाबन मधुरेलि मडुहिदय।
(य) शोदेकंदने नीबारो ॥ प ॥

शंख चक्रवु कय्यलि होळैयुत बिंकर गोवळ नी बारो ॥ प ॥

अकळंक महिमने आदि नारायण। बेकॆंव भक्तरिगोलि बारो । १ ।

कणकालंदुगे घलु-घलुरेनुताल। झण झण वेणुनिनादलि॥
चिणिकोल चॆंडु बुगरिय नाडुत। सण्ण-सण्ण गोवळरोडगूडि ॥ २ ।

खग वाहनने बगे-बगे रूपने नगुमोग दरसने दरसने नी बारो ॥
जगदोळु निन्नय महिमेय पोगळुवे। पुरंदर विठल नी बारो ॥ ३ ॥

राग सौराष्ट्र छापु—ताल

कृष्ण एन बारदे। कृष्णान नेनदरे कष्ट ओंदिष्टिल ॥ प ॥
नर जन्म बंदाग नालिगे इद्धाग कृष्ण एन बारदे ॥ अ ॥
मलगेद्धु मै मुरिदु एळुतलोम्मे। कृष्ण एन बारदे ॥ नित्य ॥
सुळिदाडुत मनेयोळगादरु ओम्मे। कृष्ण एन बारदे ॥ १ ॥

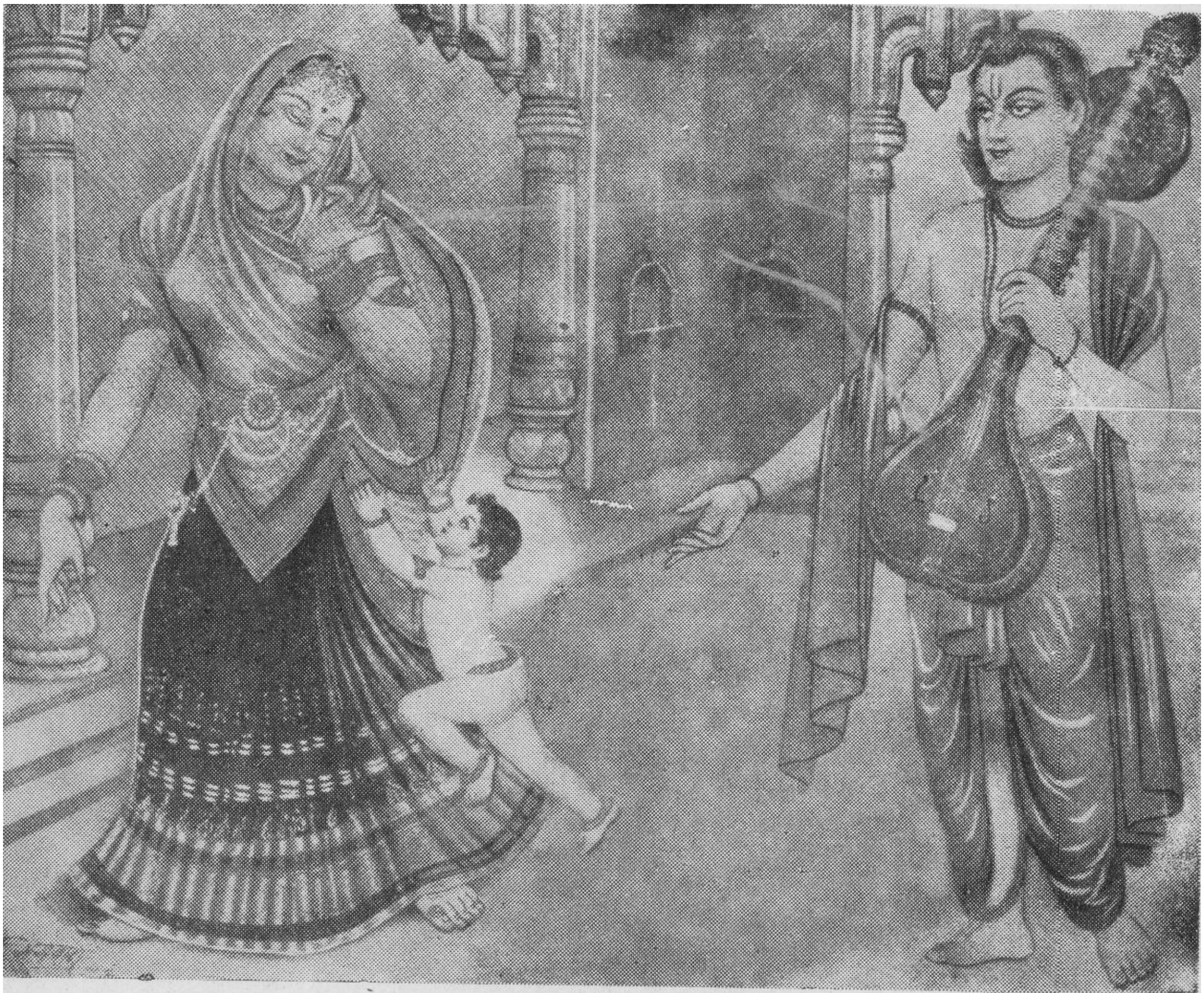

यादव नी बा यदुकुल नन्दन

मेरे तप्पि मातनाडुवागलोम्मे । कृष्ण एन बारदे । दोडु ॥
दारिय नडेवाग भारव होरुवाग । कृष्ण एन बारदे ॥ २ ॥
गं धव पूसि तांबूलव मेलुवाग । कृष्ण एन बारदे ॥
तन्न ॥ मंद गमने कूड माताडुतलोम्मे । कृष्ण एन बारदे ॥ ३ ॥
परि-परि केलपदलोंदु कलप बेंदु । कृष्ण एन बारदे ॥ ४ ॥
कंदन बिगिदप्पि मुद्दु डुतलोम्मे । कृष्ण एन बारदे । ब्हु ॥
चंदुळ्ळ हासिगे मेले कुळितोम्मे । कृष्ण एन बारदे ॥ ५ ॥
नीगदलोचने रोगोपद्रदलोम्मे । कृष्ण एन बारेदे ।
ओळ्ळे (नु भोग पडेदु अनुरागदिंदिरुवाम कृष्ण एना बारदे ॥ ६ ।
दुरित राशिगळु तरिदु बिसडलु कृष्ण एन बारदे । सदा ॥
गरुड वाहन सिरि पुरंदर बिटलन्ने । कृष्ण एन बारदे ॥ ७ ॥

राग कल्याणी—त्रिपुर ताल

'पिळ्ळं गोविय चेलव कृष्णन । एळि नोडिदिरि ! रंगन ।
एळि नोडिदिरि ! प ॥ एळि नो डेदरळि नानिळ दिलबेंन्दु बल जागरु ॥ अ ॥

नंदगोपन मंदिरंगळ संदु गोंदिनलि ।
चंद-चंदद गोपबालर वृंद वृंददलि ॥ सुंदरांगद सुंदरियर हिंदु मुंदिनलि । अंददाकळ कद करुगळ मुंदे मुंदेयलि ॥ १ ॥

श्री गुरुक्त सदा सुमगळ योग योग दलि ।
आगमार्थद ळगे माडुव याग यागदलि ।
श्रीगे भाग्य नाथ वर्तिप भोग-भोगदलि ।
भागवतरु सदा बागि पाडुव राग रागदलि ॥ २ ॥

ई चरा चरदोळगे जनंगळाचे ईचेयलि ।

खेचरेंद्रन सुतन रथद चौक पीठदलि ।। नाचदे माधव एंब भकतर वाचकंगळ्हंल बंचु कोंडद पुरंदर विठलन लोचनाग्रदलि ।। ३ ।।

राग सुरबारि क्षटताल

मकरुळ माणिकवे मनोहर निधिये । पैरि । रक्कस शकटन तुळिदुदी पादवे ।। प ।। बलिय दानव वेडि नेळन ईरडि माडि । जलधिय पडेदद्धी पादवे कृष्ण ।। हलवु कालगळिंद शिले शाप पडेदिरलु । फल काल वकोदगिद्धदी पादवे कृष्ण ।। १ ।।

कडु कोपदिंद कार्ळिगन मडुव कलकि । हेडेयनु तुळिदद्धी पादवे कृष्ण ।। सडगरदि कौरवन सिंहासनवनु ह्रोडे मगुचि केडहिद्धी पादवे कृष्ण ।। सडगरदि कौरवन सिंहासनवनु ह्रोडे मगुचि केडहिद्धी पादवे कृष्ण ।। २ ।।

श्रृगार दिंदारु हेंगळ साहित श्री । अंगने योत्तुवुदी पादवे कृष्ण ।। संग सुखादि श्री पुरंदर विठऌने अंग दोळडगेद्दुदी पादवे कृष्ण ।। ३ ।।

राघ पीलु श्रटताळ

देवकीनंद मुकुंद ।। प ।। निगमोद्धार नवनीत चोर ।।
खगपति वाहन जगदोद्धार ।। १ ।।

शंख चक्र धर श्री गोविंद । पंकज लोचन परमानंद ।। २ ।।

मकर कुंडल धर मोहन वेष । रुकुमिणि वलभ पांडव पोष ।।३।।

कंस मर्दन कौस्तुभा भरण । हंस वाहन पूजित चरण ॥४॥
वर वेलापुर चेन्न प्रसन्न । पुरंदर विठल सकल गुणपूर्ण ॥५॥

राग देशीय तोडि आदिताळ

अळुवुदेतको रंग । अत्तरंजिप गुम्म । नी । ॥ प ॥ हुट्टि देळु दिवसदल्लि दुष्ट पूतनिय कोंदि ॥ मुट्टि विषयद मोलेयुंड कारण । दृष्टि तगिते निनगे रंगय्य ॥ १ ॥

तुरुव कायलु पोगि । भरदींद्र मळेगरेये बेरळल्लि बेट्टव नेगळिद कारण । बेरळु उळुकिते निनगे रंगय्य ॥ २ ॥

बालक तनदल्लि गो । पालरोडनाडि ॥ काळिय मडुव कलकिद कारण । कालु नोंदिते निनगे रंगय्य ॥ ३ ॥

वासुदेव सुतनागि । असुर मल्लर कोंदु ॥ कसुविन कंसन कोंद कारण । किसरु तागिते निनगे रंगय्य ॥ ४ ॥

शरणु वेलापुरद । दोरेये चेन्निगराय ॥ शरणर सलहुव करुणा-निधिये । वरद पुरंदर विठलराय ॥ ५ ॥

राग तुजावंतु आदिताल

पोगुवुदुचितवे माधव मधुरेगे । बागुवे एळो निनगे ॥
नाग शयन निन्न नगलि ओंदु क्षण । हेगे सैरिसुवेवो ॥

आगमानुत कृष्ण ॥ प ॥ अक्रूरनेंबंदु निल्लिगेतके बंद चक्रधरगु ।
नमगु । सत्कीडे गळेल्ल केडिस बेकेनुतलि । बक्रनंददि बंदु
चक्रधरने पोगबेड नी मधुरगे । अक्करदिंदलि अभग को
कृष्ण ॥१॥

हुट्टिसिदवरनु अष्टमाडुवरेनो : कृष्ण रायने नीनु ::
एष्ट हेळिदरु ओंदिष्टु दयबारदे : बेन्नट्टिदलदे बिडबो : कृष्णराय
निन्नलो एष्टु गुणगळ : अष्टव माडदे कृष्णरायने बेग ::२::

मारन बाधेगे अगली नी मधुरापुरकागि होगुवरे ::
सेरिदवरनेल्लमीरि नी पोदरे : यारेलो गति नमगे ::
बरद श्री पुरंदर विठल रायने : सेरगोड्डि बेडुवेबो निल्लु निल्लो
कृष्ण ::३::

राग—धन्यासी-आदिताल

यशोदे निन्न कंदगे एसु रूपवे ::अ।। शिशुबल निन्न मग कृष्ण
जगत्पतिये ::अ:: हसुगळ करेवलि हलवु रूपव तोरुव :
बिसिय हालिडुवलि बेन्न हिंदे इरुव :: मोसर कडेवलि मुंदे ता
निंतिरुव । हसनागि मोस माडि बेण्णेय मेलुव ::१ :

ओब्बर मनेयलि मलगि ता निरुव । ओब्बर मनेयलि बेण्णे
कध्दु मेलुव ॥ ओब्बर मनेयलि अति क्रीडे याडुतिरुवा, ।।
ओब्बर मनेयलि पुटि चेंडनाडुव ॥२॥

हिंदे ता निंदिरुव मुंदे होगुतिरुवाग । इंदुमुखियर कूडे सरस
वाडुत ॥ बंदु नोडे यशोदे बण्णद मातल । नंद-गोपन कंद
पुरंदर विठल ॥३॥

राग-नवरोजु-एकताळ

इक्को नवनीत चोर सिक्किदनम्मा । हे । मक्कळेल्लरु कूडि नम्मक्कर तीरिसकोंब ॥प॥ अंद मादलागि नम्म । मन्दिर गळहि पोक्कु । तिंद मोसल बेण्णे । दंगे माडि पोदनक्क । बहु दंगे माडि पोदनक्क ॥१॥

गाढदिंदलिवन । हेडे मुडिय बिगिदु कट्टि । ओडि होदरे सिक्क किडि । गेडि रंगन बिडबेडि । किडि गेडि कृष्णन बिडबेडि ॥२॥

यारु इल्लद वेळेयलि । दारिय नोडुत्तलिब ॥ सूरे माडुब हालु मोसरु चोर रंगन बिड बेडिरे पुंड कृष्णन बिडबेडिरे ॥३॥

गंड निल्लद वेळे नोडि । भंडु माडि सीरे कद्दु ॥
कोंडु हालु केनेय कद्द । लंड रंगन बिडबेडिरे । पुंड कृष्णन बिड बेडिरे ॥४॥

कादु कोंडिब बाहो । हदिय नोडि ना दणिदे । अदु देम्सय्य काम साधिसि कोंब । कोब साधिसि कोंब ॥५॥

ओरळलि कट्टिसि कोंडु । ओरळ कोंडाडुवनिथ । दुरुळ कृष्णन बिड बेडि ॥ मरळु माडि होदनम्म ॥६॥

ईदिन दिन सुदिन ! मंदर धर दोरेत कारण । तंदे पुरंदर विठलन्न अप्पिकोंब । संतोष दिंद अप्पिकोंबा ॥७॥

रांग सौराष्ट आदिताल

मंगळं जय मंगळं । मंगळं शुभ मंगळं ।।प।।

अक्रूरगोलिद त्रिविक्रमगे । नक्रन गोलिद पराक्रमिगे ।
शक्रन गर्वपहारव माडिद । शुक्रन शिश्यन गोलिपवगे ।।१।।

गंगेय पडेद श्रीरंगनिगे ! शिशु माणिक दुंगुरदवगे ।।
भृग कुंतळेयर व्रतवने केडिसद । अंगजनय्त शुभांगनिगे ।।२।।

धरेयोळ्धिक वेंकटाचलगे । स्थिरवागि पुष्करिणिलि नेलसिहगे ।
परतर तत्व श्री पुरंदर विठलगे । वर वेंकट श्रीनिवासनिगे ।।मंगळं।।

नवनीत चोर

श्री व्यासराय

राग — मोहन — छापुताल

१. अंतरंगदल्लि । हरिय काणदव । हुट्टु कु डनो ।
संतत श्रीकृष्ण चरिते केळदव । जडमति किवुड-नो ।
एंदेंदिग् ॥

२. कुवीरर सरबनाद । कृष्णन मुंदे । कुणियदवने कुंटनो ।
नरहरि चरणोदक । धरिसद शिर । नायुंड हेंचु कणो ॥
हरुषदिंदलि नरहरिय पूजेज माडदवने कैमुगक-नो सुरवर्य
कृष्ण प्रसादवल्लद ऊटा । सूकर भोजनवो ।एंदेंदिगू ॥

३. सुर धेनु विरलागि श्वानन पालनु । करेदु कुडियबेडवो ।
करि तुरगवु इरलागि केडहुबंथ । कत्तेयेरलि बेडवो ॥
जरे हुट्टु मरणव तोडेव सुधेय बिट्टु । सुरेय सेविसबेडवो ।
परमपदव नीव पशिरि कृष्ण निरलागि ! नरर सेबिस बेडवों
एंदेंदिगू ॥

कनकदास के गीत

१. ईश निन्न चरण भजने । आशेयिंद माडुवेनु ।
दोष राशि नाशमाडु । श्रीश केशव ॥

२. शरणु होक्केनय्य एन्न। मरण समयदल्लि निन्न
चरण स्मरणे करुणिसय्य नारायण ॥

३. शोधिसेन्न भवद कलुष। बोधिसय्य ज्ञानवेनगे।
बाधिसुव यमनबाधे बिडिसु माधव।

४. हिंदनेक योनिगळल्लि। बंदु बंदु नोंदे नानु
इंदु भवद बंध बिडिसु तंदे गोविंद।

५. भ्रष्ट नेनिसबेड कृष्ण। इष्टु मात्र बेडिकोंबे
शिष्टरोडने इट्टु बिडिसु विष्णुवे।

६. मोदलु निन्न पाद पूजे। मुददि माडुवेनु नानु
हृदयदोळगे हुदगिसय्य मधुसूदन।

७. कविदुकोंडु इरुव पाप। सवेदु होगुवंते माडि
जवन बाधेयन्नु बिडिसो त्रिविक्रम।

८. काम जनक निन्न नाम। प्रेमदिंद पाडुवंथ
नेमवेनगे पालिसय्य। स्वामि वामन।

९. मदननय्य निन्न महिमे। वदनदल्लि इरुवंते
हृदयदल्लि सदनमाडु। मुददि श्रीधर।

१०. हुसियनाडि होट्टे होरेव। विषयदल्लि रसिकनेंदु
हुसिगे हाकदीरय्य—हृषीकेशने।

११. बिद्दु भवदनेक जनुम। बद्धनागि कलुषदिंद
गेद्दु पोप बुद्धितोरो पद्मनाभने।

१२. काम क्रोध बिडिसि निन्न। नाम जिह्वेयोळगे नुडिसु
श्री महानुभावनाद। दामोदर।

अन्नमाचार

तेलुगु साहित्य

आंध्र प्रदेश की सभी नदियाँ–

गोदावरि, कृष्णा, पिनाकिनी पश्चिमी दिशा से प्रवाहित होकर पूर्वी घाटियों को चीरते हुए इस भूभाग को सस्य शामला बनाकर समुद्र गामिनी हो रही है ।

इन्हीं पूर्वी श्रेणियों पर क्रमशः विशाख पट्टणम जिले में नृसिंह स्वामि गोदावरी जिले में भद्राद्रि पर्वत पर श्रीरामचंद्र कृष्णा जिले में इंद्र कीलाद्रि कनक दुर्गाम्बा, कर्नूल जिले में नल्लमल श्रेणी पर श्रीशैल मल्लिकार्जुन, अहोबल नरसिंह और चित्तूर जिले में शेषाचल पर्वत पर वेंकटेश्वर (बालाजि) विराजमान हैं ।

आंध्र भूमि असंख्य पवित्र नदियों की क्रीडास्थली है । मंजीरा प्राणहिता, शबरी, इंदुवती इत्यादि उपनदियो से युक्त गोदावरी नदी — भीमा, तुंगभद्रा मूसी आदि उपनदियों से शोभित कृष्णा नदी के अतिरिक्त पालेरु, पेन्नेरु, गंडलकम्मा, शारदा, नागवली, वंशधारा और ऋषिकुल्या यहां का अन्य नदियां हैं । 'आंध्र, शब्द का उल्लेख जाति परक रूप में वेदों में प्राप्त है । प्राचीन ऋग्वेद के 'ऐतरेय ब्राह्मणों' में है जिसका रचना काल ई.पू. १००० वर्ष माना जाता है । ऋषि विश्वामित्र ने शुनश्शेप को अपने ज्येष्ठ पुत्र के रूप में स्वीकार नहीं किया । साथ ही उन्होने अपने पचास पुत्रों को आर्याश्रम धर्मच्युत घोषित करते शाप दिया ।

इस प्रकार विश्वामित्र द्वारा शप्त लोग ही आंध्र पुंड्र शबर आदि कहलाये। कुछ विद्वान् इन्हें आर्येतर बताते हैं, कुछ आर्य बताते हैं। महर्षि कृत रामायण में भी आंध्र जाति का उल्लेख है। राम सखा सुग्रीव सीतान्वेषण के लिये वानर सेना को भेजते हुए उन्हें उपदेश देते हैं—

नर्थैरंाध्रश्च पुंड्राश्च चोलान्, पांड्यान् सकेरलान्।
अयो मुखश्चरन्तव्यः पर्वतो धातु मंडितः। इत्यादि—
(वा. रा. किष्किन्धा–४१

महाभारत के सभा पर्व में, ब्रह्म, मत्स्य, वायु इत्यादि पुराणों और वराहमिहर में है। हरिवंश पुराण के अनुसार कंस के दरबार में श्रीकृष्ण के साथ लड़नेवाले चाणूर मल्ल आंध्र ही थे। इतिहास वेत्ता का कहना है कि ई. पू. ७०० सौ के करीब आंध्र-वासियों की एक शाखा यमुना नदी के तट पर निवास करती थी, तथा आपस्तम्ब नामक ऋषि उनके गुरु थे।

आंध्र शब्द जाति बोधक है मौर्यों के बाद शक्ति शाली आन्ध्र ही है। अशोक के शिलालेखों में भी आन्ध्र के राजाओं का विवरण है

'आंन्ध्र' शब्द भाषा परक रूप में —

तेलगु भाषा के प्रथम महाकवि 'नन्नय भट्ट' ने 'नन्दपूडि के शिलालेख में अपने संबंध में लिखा है -

'आंन्ध्रकविता विशारदुंडु'

तमिल के प्राचीनतम व प्रथम व्याकरण 'तोलिकाप्पियम' में विद्वानों का अभिप्राय है कि कन्नड़ और तेलगु का निकट संबंध है।

इन भाषाओं के मूल रूप कन्नड़ और तेलगु से समझ सकते है ।

वे ही आज हमारे सामने कन्नड़ और तेलगु के रूप में हैं। इन दोनों भाषाओं की लिपि-साम्य भी इस बात का प्रमाण कहा जाता है । डा. चिलकूरि वीर भद्रराव का भी यही कथन है कि तेलु-कन्नड़ ही तेलगु के रूप में परिवर्तित हो गया है। सिद्धान्त के अनुसार-तेलगु, कन्नड़, मलयालम और तमिल- इन चारों भाषाओं की मूल भाषा एक ही है और वह है मूल द्राविड परंतु तेलु-कन्नड़ का अर्थ शुद्ध कन्नड़ बताया गया है।

पाश्चात्य विद्वान काबेल ने तेलगु शब्द का मूल रूप त्रिलिंग मान है। उनका विचार है कि यह शब्द व्याकरण सम्मत है और त्रिलिंग से उसकी उत्पत्ति हुई है।

अः- ग्रियर्सन और मर्मज्ञ विद्वान् डा. गिडगु सीतापति के विचार है । तेन (गु) लन में परिवर्तन हो गया है

आः- सीतापति का विचार है कि 'आन्ध्र साम्राज्य का विस्तार धीरे-धीरे तेलुगु देश के बहुत से भू-भागो में फैल गया था। आन्ध्र साम्राट अपने अधीन नहीं रख सके, आन्ध्रजाति और आन्ध्र भाषा इन प्रदेशों में तेलुगु का व्यवहार हो गया ।

आन्ध्र का इतिहास पुराणों में था प्राचीन काल में आन्ध्र राज्य की समस्त भूमि में घना जंगल था। अरण्य में निवास करनेवाले इन्हें 'आन्ध्र' नाम से पुकारते थे आन्ध्र राज्य के संस्थापक आन्ध्र विष्णु है ।

पुराणों तथा अन्य ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर यह विदित हुआ है कि सर्व प्रथम आन्ध्र राज्य स्थापना करने वाले वीरवतंस 'आन्ध्र-

विष्णु' थे ये बड़े पराक्रमी थे। इनकी संतानों ने इन्हें भगवान ही मान कर इनकी पूजा करनी शुरु कर दी श्री काकुलम् में एक मंदिर भी बनवाया। जहां के देवता ये ही आन्ध्र विष्णु हैं।

सातवाहन, इक्ष्वाकु आदि हैं। आन्ध्र के प्रख्यात कवि 'कुमारिल भट्ट' ने जैमिनी सूत्रों के भाष्य लिख कर वैदिक धर्म का प्रचार किया।

चालुक्य — ई. सन् ६२५—१११८

चालुक्य के बाद चोल राजाओं के शासन काल में कांचीपुरम के पल्लव राजाओं के साथ ऊंचा संबंध स्थापित किया राज राज नरेंद्र ने ई सन् १०२२--६३ तक राज्य किया। इन्हीं के आस्थान कवि 'नन्नय भट्ट' ने महाभारत का काव्यानुवाद प्रारम्भ किया! राज राज नरेन्द्र ने तमिल नाडु के राजेन्द्र चोल की पुत्री 'अम्मंगदेवि' के साथ विवाह किया था। इनके पुत्र ने मातामह के राज्य पर 'राजेन्द्र चोल' अथवा 'कुलोत्तुंग चोल' नाम से शासन किया। चोल के बाद रेड्डी तथा नायक राजा थे।

आज से तीन शताब्दियों के पूर्व के तमिल विद्वान् अप्पय्य दीक्षित ने आंन्ध्र भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'आन्ध्रत्वमान्ध्रभाषा' च नाल्पस्य तपसः फलम्'--तेलुगु स्वरांत भाषा है। इसमें स्वर-प्रधान संगीत और वर्ण-प्रधान साहित्य का सुंदर समन्वय हुआ है यही कारण है कि तेलुगु देशी और विदेशी विद्वानों की प्रशंसा का पात्र बन सकी है।

अग्नि पुराण के वर्णन के आधार पर भी तेलुगु भाषा की प्राचीनता का मूल्यांकन किया जा सकता है, जिसमें कहा गया हैं कि मधुर पदार्थों

के प्रति ममता दिखानेवाले महाविष्णु को यह भाषा अत्यंत प्रिय थी —- त्रिमूर्तिनां संस्कृतान्ध्र, प्राकृतां प्रियंकर' । इसकी प्राचीनता शिला लेखों में मिलती है । तेलुगु आर्य परिवार की भाषा है अथवा द्राविड परिवार की। किसी प्रदेश की जीवंत भाषा को देश्य कहते हैं ।संस्कृत भाषा में रचित एक प्राचीन तेलुगु व्याकरण में कहा गया हैं 'नित्या प्रवाहिनी देश्या'- अर्थात भाषा नदी के समान सतत परिवर्तनशील होती है ।

तेलुगु साहित्य के इतिहास को तीन भागों में विभजित किया है: (१) प्राचीन कवि, (२) मध्ययुग के कवि (३)और आधुनिक कवि- लेकिन श्री गुरुजाड़ राममूर्ति ने कवियों की रचनाओं के अधार पर क्रमशः (१) महाभारत के कवि (२) रामायण के कवि और (३) प्रबंधों के कवि नामसे तीन भागों में विभाजित किया है । परंतु विषय की दृष्ठि से तेलुगु में महाभारत रामायण और प्रबंध-काव्य ही नहीं, अपितु नाटक कहानी, उपन्यास जीवनियां शतक,खण्डकाव्य इत्यादि भी रचे गए हैं ।

सन् छठी शताब्दी में प्रथम तेलुगु शिला लेख उपलब्ध हुआ है । ई. सन् के प्रारम्भ से ही तेलुगु जनता के व्यवहार में प्रयुक्त होती थी सातवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह सर्वसिद्धि ने (ई. स ६३३ से ६६३ तक) तीस वर्ष तक वेंगि नगर का शासन किया था । उन्होने अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की थी तथा अनेक आचार्यों को नियुक्त करके उन्हें अग्रहार आदि दान में दिया था । महाकवि दण्डी ने 'आन्ध्र नाथेन जयसिंहेन' कहकर इनकी प्रशंसा की है।

कन्नड़ के महाकवि पंप, रन्न, तथा नाग वर्मा इसी वेंगी प्रदेश के निवासी थे । रन्न, ने अपने ' अजित पुराण ' में वेंगी देश की स्तुति की है । जयसिंह सिद्धि ने ई. सन ६४६ में गुंटूर जिले के नरसराव पेटा

के समीप में 'विर्पेळ' नामक ग्राम में तेलुगु के एक शिलालेख खुदुवाया था उस समय वेद विद्या और संस्कृत की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। साथ ही अन्य विद्याओं के अध्ययन का भी प्रबंध था । इनके पूर्वजों में अधिकांश लोगों ने वैदिक धर्म का पोषण किया था । उन्होंने वैदिक धर्म के उद्धार का संकल्प किया उन दिनों वैदिक धर्म को प्रतिपादित करने के लिए जिन धर्म शास्त्रियों के प्रवचन होते थे, उनसे पुराणों की प्रमुखता थी, किंतु साधारण जनता और स्त्रियों की अभिरुचि महाभारत के प्रति अधिक थी । लोगों में यह विश्वास भी था महाभारत श्रवण से सौ गायों के दान तथा अनेक वैदिक विप्रों को दान देने का फल प्राप्त होता है, अतः अपने अवकाश के समय लोग महाभारत का श्रवण करते थे । उस समय के राजा लोग भी वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने में लगे हुए थे । उनका विचार था कि वेद अपौरुषेय है इसलिए प्रामाणिक है (२) वेदों द्वारा प्रतिपादित यज्ञ–यागादि के आचरण से स्वर्ग की प्राप्ति होती हैं । (३) उपनिषदों का श्रवण मोक्ष–प्राप्ति का मार्ग दर्शक है (४) चतुर्विध वर्ण एवं आश्रय मानव— समाज के आचार- धर्म संबंधी नियम् हैं , (५) ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर क्रमशः इस जगत की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारण भूत है ।

नन्नय भट्ट:-

नन्नय भट्ट संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित, कवि, आचार्य पुराणों के ज्ञाता और शब्द शास्त्र (व्याकरण) के पारंगत थे । महाभारत की रचना में सहायक उसके सहपाठी एवं संस्कृत, प्राकृत, कन्नड एवं तेलुगु भाषाओं के उदभट कवि शिखामणि तथा वज्रांकुश आदिनामक उपाधियों के विख्यात नारायण भट्ट ने की थी । नन्नय ने नारायण भट्ट की इस सहायता के लिए सहृदयता से आभार प्रकट किया है । महाभारत

के युद्ध में नर (अर्जुन) की नारायण (कृष्ण) ने जैसी सहायता की थी, वैसी ही सहायता 'महाभारत' की रचना में नन्नय के आप्त मित्र एवं सह पाठी नारायण भट्ट ने दी थी।

नन्नय ने महाभारत की रचना को गद्य-पद्य युक्त चंपू शैलि में की है। तेलुगु वाङमय की पृष्ठभूमि में भी धार्मिक राजनीतिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का मनोभाव हैं। चोळ नृपति शैव धर्मानुयायी थे उस समय शैव-वैष्णव का द्वेश बढ़ गया। फलत: उनके धार्मिक झगड़े शुरु हुए। राजा कुलोत्तुंग चोल ने शैव धर्म को प्रोत्साहित किया, उसी समय पुन: बौद्ध तथा जैन धर्मों का प्रचार जोर- शोर से शुरु हुआ। श्रीपेरंबुदूर में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार प्रारम्भ किया। रामानुजाचार्य का मत भक्ति प्रधान होने के कारण अनेक लोग उनके अनु-यायी हुए। आचार्य रामानुज जाति-पांति, उच्च नींच, स्पृश्या-पृश्य का (अधिक गुंजाइश) विचार नहीं रखा। भगवान् के सारे भक्त समान है। उन्हें सन्त आळवारों का मार्ग दर्शन प्राप्त था।

महाकवि तिक्कन्ना 'भव्य भारति' नामक उपाधि से विभूषित थे। वे मंत्री भास्कर तिक्कन्ना के पोते थे। इन्होने रामायण की रचना की थी तिक्कन्ना से पहले 'भास्कर रामायण' और रंगनाथ रामायण की रचना हुई थी। अत: तिक्कन्ना 'उत्तररामायण'की रचना की होगी। महा-भारत की रचना में भी इसने चंपू शैलि का प्रयोग किया है।

तेलुगु के विख्यात समीक्षकों का विचार है कि संस्कृत-साहित्य में कालिदास की रचनाओं को जो मान्यता है वही तेलुगु महाकवि तिक्कन्ना की रचनाओं ' तिक्कन्ना ' तेलुगुवाङमय में ' कवि ब्रह्म ' नाम से विख्यात है। अनेक शिष्य-प्रशिष्य इन्हें अपने कृति-पति बनाया। अनेक कवि-

यों ने तिक्कन्ना को तेलुगु साहित्य का उद्धारक बताया है। आदि कवि नन्नय्या के दो सौ साल बाद तिक्कन्ना ने महाभारत के शेष १५ पर्वों की रचना करके आन्ध्र जनता की प्रशंसा प्राप्त की। तेलुगु के तीन कवि- नन्नय्या की शैली कथन प्रधान, तिक्कन्ना की नाटकीयता और एराप्रेगडा की वर्णनात्मक। तिक्कन्ना के शास्त्र ज्ञान और लोक ज्ञान का सम्मिलत-दर्शन 'महाभारत' में मिलता है। महा कवि के अन्य ग्रंथ काव-सार्वभौम छन्द और कृष्ण शतक हैं।

पाल्कुरिकि सोमनाथ—

चोल चालुक्य राजाओं के यहां दण्डनायक थे। १३२३ के समय में वीरशैव और वैष्णव संप्रदायों को समान रूप से आदर प्राप्त था।

१३८५ से १३५८ के

एराप्रेगड़ा के समय राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थिति ठीक नही थी १३२३ में प्रतापरुद्र द्वितीय को मुसलमानों ने बंदी बनाया और दिल्ली ले गए। इस प्रकार काकतीय साम्रज्य सूर्य का अस्त हो गया। साम्रज्य के प्रधान सेनापतियों ने अपने—स्वतंत्र राज्य स्थापित किए। उनमे रेड्डी और वेलमा नायक राजाओं के नाम विशेष उल्लेख-नीय हैं।

एराप्रेगडा के रामायण, हरिवंश, नृसिंह=पुराण और महा-भारत के वनपर्व का शेष भाग लिखा है।

नाचन सोमनाथ —१३१० से १३६० तक

हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए आंध्र में रेड्डी तथा नायक राजाओं ने बीडा उठाया और मुसलमानों को आंध्र से भगा दिया। इसी समय

विद्यारण्य की कृपा से १३३६ मे हरिहर और बुककराय नामक दो भाइयों ने विजयनगर की नीव डाली। इसी समय वैदिक धर्म का पुनः उद्धार हुआ। माधव और सायणाचार्य ने वेदों के भाष्य लिखे। उन्हें शैव धर्म के प्रति द्वेष न था। संस्कृत भाषा का अधिक सम्मान होता था उस समय एराप्रेगडा को प्रशंसा होती थी। सोमनाथ ने भी अपने काव्य के आश्वासांत पद्यों में अपने को –

'सकल भाषा, भूषण साहित्य रस पोषण-संविधान चक्रवर्ती, संपूर्ण कीर्ति नवीन गुण बताया' है।

सोमनाथ रचित हरिवंश में छः आश्वास और ५०० सौ पद्य हैं इसकी कृति में भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष की प्रधानता है। इनके उत्तर हरिवंश में नरकासुर का वृत्तांत, उषा और अनिरुद्ध का प्रणय-वृत्तांत अत्यंत मनोहर बन पडे हैं।

श्रीनाथ (ई.सन् १३८० से १४६० तक)

तेलुगु साहित्य में महाकवि तिक्कना के बाद उनकी समता कर सकनेवाले पण्डित कवि श्रीनाथ हुए। 'कवि सार्वभौम उपाधि' से विख्यात श्रीनाथ का साहित्यिक जीवन तेलुगु साहित्य के इतिहास में बहुत महत्व पूर्ण है।

तेलुगु साहित्य में प्रबंध-काव्य का श्रीगणेश हुआ था और १५०० वी शताब्दी के बाद समस्त लक्षणों से पूर्ण कतिपय प्रौढ़ प्रबंध-काव्यों की रचना हुई। अतः यह युग श्रीनाथ-युग के साथ 'सन्धियुग' भी कहा जाता है।

काव्य वस्तु की दृष्टि से इस युग को अनेक भागों में विभाजित किया जा सकता है। काव्य-प्रबंध, मिश्र-काव्य, नीति काव्य, शतक काव्य और द्विपद काव्य है। तेलुगु साहित्य में पुराण कवि व महाकवि तिक्कन तथा विपुल काव्य की रचना पोतना द्वारा चरम परिणिति को प्राप्त हुई है। पोतना और त्रिपुरांतक मिश्र काव्यों की रचना के जन्मदाता कहे जा सकते हैं।

वल्लभ रायडु —

कर्नाटक राजा हरिराय के रत्न भंडार के अध्यक्ष त्रिपुरांतक के पुत्र ही वल्लभराय थे। इन्होंने दशविध रूपकों में से 'वीथी' रूपक की रचना क्रीडाभिरामुमु' नामसे की। आलोचकों का मत है कि सम्भवतः तेलुगु का यही प्रथम दृश्यकाव्य है। [श्री बालशौरी जी की कृति के आधार पर]

तालपाक अन्नमाचार्युलुः– ई. सन् १४२३ से १५०२ तक

अन्नमाचार्युलु का जन्म कडपा जिला ताल्लपाक नामक गांव में सन् १४२३ में हुआ। ये अपनी १६ वर्ष की अवस्था में ही घर छोडकर भगवान बालाजी के चरणों में रहकर कैंकर्य में तत्पर रहने तिरुपती चले गए और अपने अंतिम समय तक वहीं रहे। ये संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित थे और संगीत के आचार्य थे इन्होंने तेलुगु और संस्कृत भाषाओं में ३२,६००(कीर्तन) पद रचे। भक्त और कवि होने के कारण नित्य प्रति पद रचकर अपने आराध्य की उपासना में उन्हें गाया करते थे, अतः ये संकीर्तनाचार्य के नाम से भी विख्यात है। इनके कीर्तन श्रृंगार और आध्यात्म संकीर्तन नामों से दो भागों में विभाजित हैं।

अन्नमाचार्य के अन्य ग्रंथों में द्विपद रामायणमु वेंकटाचल महात्म्य-मु, श्रृंगार मंजरी हैं। इनके, कीर्तनों में से केवल १२००० कीर्तन ही उपलब्ध हुए है, जो ताम्रपत्रों पर अंकित हैं। इनके पद तिरुमलै तिरुपति के मंदिर के एक कक्ष में सुरक्षित है तिरुपति में 'अन्नमाचार्य' कि कलामंदिर स्थापित कर संगीत साहित्य और नृत्य आदि सांस्कृतिक कार्य चला रहे है।

वेमना :—ई. सन् १४१२ से १४८० तक

वेमना का जन्म रेड्डि वंश में हुआ था। इनके जन्म स्थान चितनपल्ली हैं। ये १५ वीं शती में हुये।

आन्ध्र प्रदेश के संतों में वेमना विशेष रूप से लोकप्रिय है। आन्ध्र प्रदेश के प्रत्येक व्यक्ति वेमना के गीत याद कहते हैं इन के पद सरल और मधुर भाषा में ज्ञान, भक्ति, सदाचार और नीति से ओत-प्रोत हैं।

वेमना का जन्म संपन्न परिवार मे हुआ था। इन्होने सामाजिक अंध-रूढ़ियों का खण्डन किया और ये जाति - पांति के भेद-भाव के कट्टर विरोधि थे। मूर्ति पूजा जप तप उपवास आदि बाह्याडंबर की भी वेमना ने कटु आलोचना की है। वेमना अपनी स्पष्ट वादिता के लिए विशेष विख्यात है। इनकी सूक्तियां लोकोक्तियों की भांति सुंदर हैं। इनकी भावना क्रांतिमय थी ये सदाचरण रत हो आत्म तृप्ति और अहिंसा और सत्यपालन करनेवाले थे। इनके पद्यों की संख्या पांच हजार कहते हैं। किंतु आजकल अधिक गीत उपलब्ध नहीं है। वेमना ने जनता को संतुष्ट करने के लिए चमत्कार भरित रचना करते थे।उनकी रचना पंडित और साधारण लोगों में समादरणीय है।

रीतिसे वेमना सर्वदा सच्चरित्र का आदर करते थे। आत्म शुद्धि और सदाचार प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य हो, कोई इस पर जोर देते थे। इनका विचार कि शरीर और आत्मा के अनेक भावनाओं को अपनी कविता में चित्रित कर प्रत्येक व्यक्ति आत्म शुद्धि,आत्म बल और आत्मानुभूति से मोक्ष पा सके यदि उनके पदों का भाव लय है आन्ध्र प्रदेश के जन-प्रिय कवि वेमना है।

बम्मेर पोतना:-

महाकवि पोतना का जन्म स्थान कड़पा जिले के ओंटिमिट्टा है कुछ लोग वरंगल के समीप स्थित बम्मेर कहते हैं।

पोतना के ' आन्ध्र महाभागवत 'प्रसिद्ध है। अलावा इसके इन्होने कई कृतियों के रचयिता है भागवत पुराण को पोतना ने अत्यंत सुंदर ढंग से रचा है तेलुगु—भागवत भक्ति प्रधान कृति है। इस में अनेक भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। पोतना की कविता प्रांजल, ललित एवं मधुर हैं उनकी प्रतिभा और मनोहरता बहुत आकर्षक है। कहा जाता है कि पोतना को स्वयं श्री रामचन्द्र जी ने प्रेरणा दी। भगवान् की प्रेरणा से पोतना खुश होकर रचना करने लगे। मुक्ति प्रदायक इस कृति की रचना से उनका पक्का विश्वास हो गया कि संसार सागर से विमुक्त हो जाऊंगा। पोतना भगवान् की मधुर स्मृति में ध्यान मग्न रहा करते थे। उस वक्त उसके हृदय सिंधु से काव्य की लहरें उठती थी। पोतना के सभी काव्य जनप्रिय है इनकी सरल कृतियां तेलुगु साहित्य में सर्व श्रेष्ट माने जाते हैं। इनका महाकाव्य सारे काव्य लक्षणों से सुसज्जित है। सूरदास और तुलसी के समान पोतना भी भक्ति-भाव से अपने आराध्य देव से दास भावना रखते थे पोतना ईश्वर के दशावतारों के उपासक हैं। पोतना विष्णु और शिव में भेद-भाव नहीं रखते थे। यह अद्वैत भाव के एक दार्शनिक रहे।

पोतना की कृतियों में वात्सल्य और प्रेम अभिव्यक्त है। कृष्ण जन्म के समय जैसे वैष्णव संत अळ्वारों ने तथा सूरदास आदि वैष्णव भक्तो ने अपनी रचनाओं में निरूपित किया है वैसे ही पोतना का भी निरूपण है पोतना का कीर्तिध्वज भागवत है। पोतना ने भागवत की रचना मुक्ति पाने के उद्देश्य से की उसकी प्रार्थनाहैं कि तुम अपने और आप की सेवा करनेवाले भागवतों की सेवा करने का भाग्य मुझे प्रदान करें। पोतना की भगवान् पर अचल भक्ति थी। सुगंधित मधु से भरे पुष्प पर आकर्षित भ्रमर बिना मधु के माधुर्य को अनुभव किये बिना कहां जायेगा। वैसे ही कमलपुष्प भरित सरोवरों में तैरनेवाला राजहंस छोटी नदी नाले में कैसे जाएगा ? आम्र पल्लव से पुष्पित वृक्ष को छोड़कर कोयल कहां जाएगा ! पूर्णिमा के समुज्वल चंद्रमा की शुभ्र एवं शीतल ज्योत्स्ना का सेवन करने वाला चकोर क्या कभी ओसकी बूंदों पर आसक्त होगा !

पोतना की रचना ' नारायण शतक 'एक मौलिक कृति है। पोतना के भागवत के कुछ भाग शिथिल हो गया था। आगे के लेखको ने उसे पुनः रचा है। शायद पोतना के शिष्यों ने रचा होगा। पोतना ब्राह्मण वंश में जन्म लेने पर भी कर्म से कृषिकर्मी थे। महाभागवत से वे (संपत्तिवान) धनी हो सकते थे। लेकिन उन्होने ऐसा नहीं किय परिणाम स्वरूप आजीवन कठिनाइयां झेलते रहे। उनकी कविता आंध्र प्रजा की कंठहार बनी हुई हैं। पोतना ने आंध्र जनता के सामाजिक जीवन का चित्र ऐसा उतारा हैं, जो युग-युगों तक उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचय. देते हुए स्मरण किया जायगा।

पोतना के काव्य में भागवत द्वादश स्कंधों का हैं। महाकाव्य के सारे लक्षण इनकी कृति में हैं। उनका उद्धेश्य है कि कथा वस्तु

सुंदर-सरल तथा भक्ति भाव से ओत-प्रोत है इनके दास्य-भाव काव्य में प्रतिबिंबित हैं। पोतना भगवान् के दशावतार के उपासक हैं। चमत्कार और उक्ति वैचित्र्य भी सुंदर ढंग से निखर उठा है। कृष्ण जन्म का वर्णन प्रत्येक स्त्री—पुरुषों को ऐसा संतृष्ट करता है कि खबर सुनते ही लोग यशोदा मैय्या के यहां दौड पड़े। गोपिकाएं वात्सल्य भाव से शिशु को तुरंत देखने के लिए तरस उठी—सूरदास ने भी इसी तरह का वर्णन किया है।

'है इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढ़ोटा जायो घर-घर होति बधाई॥
द्वारें भरि गोप-गोपिन की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनन्द होत गोकुल में, रतन भूमि सब छाई॥
नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस बीच मचाई।
सूर —दास सुख-सागर सुन्दर स्याम कन्हाई॥

पोतना की भक्ति—

'नी पाद कमल सेवेयु
नीपादार्चकुलतोडि नेय्यमुनु
नितांत पार भूतदययुनु
दापसमंदर नाकु दयसेयगदे॥'

पोतना भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान् तेरे चरण कमलों की सेवा में अनवरत करुं ऐसा वरदे।

इस युग की विशेषताएं

इस युग के काव्य विकास के लिए राजाओं के आश्रय ही कारण हैं। उस समय के शासक विद्वान और विद्वानों के आश्रयदाता थे।

संस्कृत में भी श्रेष्ठ रचनाएं हुई। नाटक, कविता आदि का अनुवाद भी हुआ था। अन्नमाचार्य जैसे भक्तों ने पद्य साहित्य की रचना किया।

जब देश समृद्ध रहता है तब कला और साहित्य की श्रीवृद्धि होती है। कृष्णदेवराय स्वयं कवि थे और कवियों के आश्रयदाता भी। उन्होने अपने दरबार में तेलुगु, संस्कृत, तमिल और कन्नड़ भाषाओं के कवियों को आश्रय दिया था। अलावा इसके संगीत, नृत्य और ललित कलाओं को भी प्रोत्साह देते थे। उसके महल में कलाकारों की गोष्ठी के लिए ' भुवन विजय 'नामक सभा भवन का निर्माण किया था। 'भुवन विजय सभा भवन में कभी कभी कलाकारों की गोष्ठियां होती थी। विजयियों को पुरस्कार दिया करते थे। आदर से उन्हें उपाधियों भी दी जाती थी। शिल्पियों के कला नैपुण्य को प्रोत्साह देने के लिए विविध विन्यासों के मंदिर बनवाते थे उनमें सुंदर चित्रों को चित्रित करने में प्रोत्साह भी देते थे।

आपसी धार्मिक वैषम्य के कारण मुसलमानों का आक्रमण होते रहते थे। बौद्ध जैन धर्मों के विरुद्ध वैदिक धर्म का भी विकास होने लगा। शैव वैष्णव मतों का साथ साथ विकास हुआ। रेड्डि राजाओं ने शैव मत का और विजय नगर के साम्राज्य वैष्णव मत की उन्नति में अधिक सहायता दी स्वयं राजा कृष्णदेवराय कवि थे। उन्होने विष्णु चित्तीयं अथवा 'आमुक्त माल्यद:' नामक प्रबंध काव्य की रचना की वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया।

महाभारत और रामायण के अलावा और कई नाटकों की भी रचना इस काल मे हुई

इस काल में सैकड़ों ग्रंथ रचे गए। उसमें कई ग्रंथ उच्चकोटि के हैं जो तेलुगु साहित्य इस युग की देन हैं। यह महत्वपूर्ण हैं।

आधुनिक युग

१८५५ में परवस्तु चिन्नय्य सूरी ने बाल व्याकरण नामक एक तेलगु व्याकरण को रचा। उसके विवरण श्रेष्ठ हैं उसमें आधुनिक तेलगु भाषा स्वरूप का विवरण अच्छी तरह निरूपित किया है। इसी लेखक के 'नीति चन्द्रिका' एक गद्य ग्रन्थ हैं। इस समय में कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतलु प्रसिद्ध लेखक हुए इन्हें गद्य ब्रह्म के नाम से अभिहित किया। पुराणयुग में नन्नय ने 'महाभारत' और आन्ध्र शब्द चिन्ता-- मणि, की रचना करके उस युग का प्रवर्तन किया, वैसे ही चिन्नयसूरि ने 'नीतिचन्द्रिका' नामक गद्य ग्रन्थ एवं 'बाल व्याकरण' रचकर अपना नाम अंकित किया है।

१९१९ में वेंकटरत्नम् पंतलु तेलुगु और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और कवि थे। इस युग में कई नाटक, अनुदित कृतियां और 'गीत-- रामायण' आदि गीत प्रबंधों का विपुल प्रचार हुआ।

आजकल तेलुगु में कहानी जीवन, नाटक इत्यादि अनेक रचनाएं प्रमुख मानी जाती हैं।

२० वीं शताब्दी में पालकुरिके सोमनाथ के समय में ही लोक गीत प्रचार में आये थे क्रमशः लोक गीत साहित्य में संगीत नृत्य का समन्वय भी हुआ यही आगे यक्ष गान के रूप में प्रचलित हुआ। यक्ष गान एक देशी नृत्य संगीत रूपक हैं।

आन्ध्र देश में कुरुवलु जाति के लोग कुरुवंजि का प्रदशन करते हैं। ये लोग 'अंजि' नामक नृत्य का विशेष प्रदर्शन कर अपनी जीविका चलाते हैं। यक्ष-गान में हास्य के प्रधान स्थान हैं। उस हास्य नट को 'कोणांगे' अर्थात 'कोडंगी कहा जाता है। यक्ष-गान का प्रदर्शन तंजाऊर के नायक राजा तथा महाराष्ट्र राजाओं के समय में हुआ। 'वीथि-भागवतलु' और 'गोल्ल कलापमु' इत्यादि का विकास हुआ। कूचुपुडि नृत्य आज कल भी प्रसिद्ध हैं, जो इसी से विकसित विशिष्ट कला है। लोक कथाएं तेलुगु में मुख्यतः दो रूपों में प्राप्त होती हैं। वीर रस प्रधान पातिव्रत्य तथा सदाचार और नीतियुक्त हैं। पातिव्रत्य संबंधि कथाओं में बालनागम्मा की कथा, चिन्नम्मा कामम्मा कथा। अन्य कथाओं में शतकंठ रमायण, ऊर्मिलादेवी निद्रा' और लक्ष्मण देवर नव्वु' प्रसिद्ध हैं।

आन्ध्र में चल मोहन रंगा और 'नायडु बावा 'इत्यादि गीत आन्ध्र जन पदों में प्रत्येक नागरिक के कंठ में थिरकते दिखाई पडते हैं। तेलुगु में लोक साहित्य का भी अपना गौरवमय स्थान है।

ई. सन् १४८७ से १५३०

श्री कृष्णदेवराय—

संस्कृत में कालिदास कृत 'रघुवंश' और 'कुमार संभव' भारवि द्वारा विरचित 'किरातार्जुनीयम' इत्यादि को महत्व हैं। इसी प्रकार तेलुगु भाषा में 'अल्लासानी पेद्धना' कृत मनुचरित्र, कृष्णदेवराय कृत ,आमुक्त माल्यदा' रामराज भूषण कृत 'वसु चरित्रमु' 'श्रृंगार नैषध और तेनाली रामकृष्ण कृत 'पांडुरंग महात्म्यमु' पंच महाकाव्य माने जाते हैं।

कृष्णदेवराय के दरबार में अष्टदिग्गज नाम के तेलुगु के आठ महाकवि थे। राजा कृष्णदेवराय ने कवि सम्मेलन के लिए ही एक सभा भवन का निर्माण किया था। उसका नाम है 'भुवन विजय' हमेशा पंडित, कवि और आचार्यों से भरा रहता था।आन्ध्र-भारती की उस समय काव्यकारों द्वारा उपासना होती थी। स्वयं कवियों के साथ पंडित मण्डली और राजा भी उसमें भाग लेते थे!

कृष्णदेवराय स्वयं संस्कृत और तेलुगु के प्रकाण्ड पंडित था। उन्होने संस्कृत में मदालसा-चरित्र, सकल कथा-सार संग्रहम् 'ज्ञान-चिंतामणि' 'रस-मंजरि' 'जांभवति परिणय' नामक काव्य और नाटक लिखे। उन्होंने तेलुगु में सन् १५११ में आमुक्त माल्यदा(विष्णु चित्तीयम)नामक प्रबंध काव्य की रचना की है। इस में करीब नौ सौ पद्य हैं। इस काव्य में तत्कालीन परिस्थिति प्रतिबिंबित है आंध्र वाङमय के लिए यह काव्य एक अलंकार प्राय अमूल्य रत्न इसमे एक वैष्णव भक्ता के जीवन का वर्णन है। विशिष्ठाद्वैत को प्रतिपादित करनेवाली यह कृति साहित्यिक दृष्टि से भी सर्व श्रेष्ट स्थान रखा है।

मथुरा में 'मत्स्यध्वज' नामक पांडय नरेश राज्य करता था वह एक दिन नगर संचार के लिए निकला उस समय एक चबूतरे पर एक ब्राह्मण किसी को उपदेश दे रहा था कि रात्रि के लिए दिन में वृद्धावस्था के लिए यौवन में, नए जगत के लिए इस जगत में आवश्यक सामग्रियों का संचय करना चाहिए विप्र की बात से राजा संतुष्ट हुआ। दूसरे दिन पण्डितों को बुलाया विचारणीय विषय था कि कौन---सा धर्म श्रेष्ठ है। इस सभा में अनेक दिग्गज पण्डित गण पधारे। श्री विल्लिपुत्तुर में एक वैष्णव भक्त रहता था। उस नगर के भगवान् की फूल माला बनाकर रोज समर्पण करता था। उस भगवान् मन्नार स्वामी ने इस भक्त आळवार के स्वप्न में कहा कि कल की सभा में जाकर विशिष्टाद्वैत संप्रदाय की श्रेष्ठता को निरूपित करो। तब विष्णु चित्त ने कहा भगवन् मैं केवल आपकी पूजा आराधना करना जानता हूँ। लेकिन पण्डितों के बीच में क्या करु। भगवान् ने उसे आश्वासन देकर भेजा।

भगवान् के आग्रह से पाण्डय राजा के दरबार में गया वहां सारे पण्डितों को पराजित किया। विशिष्टाद्वैत तत्त्व की स्थापना की। वहां उन्होने अष्टाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया। राजा बहुत खुश हो गया। इस भक्त का शिष्य बन गया। विष्णुचित्त जी पुनः अपने फुलवारी का काम करने में लग गया। एक दिन तुलसी पौधे के नीचे एक शिशु मिली। आळवार ने उसका नाम गोदा रखा। लाड़ – प्यार से पाला-पोषा। उसने बढकर भगवान् विष्णु को ही अपना पति माना।

जब आळ्वार भगवान् के लिए माला तैयार कर रखते थे। तब 'गोदा' उस माला को स्वयं पहन कर—'भगवान् के लिए मैं लायक हूं या नहीं' यही सोचती थी। भगवान् भी उस माला को ही पसंद करता था। इस वृतांत से संतुष्ट राजा ने 'आमुक्त माल्यदा' की रचना की

गोदादेवी ने दो कृतियां रची– एक तीस पद्यों का तिरुप्पावै दूसरा 'नाच्चियार तिरुमोळि' इन दोनों कृतियां संत–आळ्वार की कृतियों के साथ समान आदर हैं।

भक्त विष्णुचित्त की प्रार्थना सुनकर श्रीरंगनाथ ने 'गोदा' नाम के आंडाल से स्वयं विवाह किया। विष्णुचित्त के वृत्तांत होने के कारण 'आमुक्तमाल्यदा' का दूसरा नाम विष्णुचित्तीयम् है। इस काव्य में तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन सुंदर ढंग से किया है। पुष्प भरित जलकुंभ ले जानेवाली भारतीय नारियों का चित्रण, मछली पकड़नेवालों का वर्णन ग्रामीण कन्याओं का हास्य परिहास्य आदि का वर्णन अद्भुत है। यह काव्य कृष्णदेवराय के जीवन के सर्वांगीण परिचय का एक रूपक हैं। राजा कृष्णदेवराय स्वयं कवि और कवियों के पोषक भी थे। उस समय के सारे कलाकार कृष्णदेवराय के यश गान कर उससे कुछ न कुछ प्राप्त करते थे।

आमुक्त माल्यदा

आन्ध्र साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रबंध का अपना मौलिक एवं महत्व पूर्ण स्थान है । प्रबंध युग नामकरण का आधार भी यही है । जैसे संस्कृत साहित्य में पंच महाकाव्यों का उल्लेख किया जाता हैं । वैसे ही तेलुगु के प्रबंध काव्यों में भी प्रबंध पंचक का उल्लेख किया जाता है । इस प्रबंध पंचक में भी शीर्ष स्थान को सुशोभित करनेवाला प्रबंध 'आमुक्तमाल्यदा ही माना जाता है ।

आमुक्त माल्यदा का दूसरा नाम 'विष्णु चित्तीयमु' है । इन दोनों नामों की अन्वर्थता कवि द्वारा अभिव्यक्त किया गया है । भावों और वर्ण कर्मों में स्पष्ट रूप से पाठकों को यह बात दृष्टि गोचर होती है । इसका प्रमाण स्वान्तः सुखाय है । अतः सर्वोत्तम माना गया है।

आमुक्त माल्यदा के रचयिता स्वयं श्रीकृष्णदेवराय है । जिन्हें साहिती समाराङ्गण सार्वभौम एवं आन्ध्र भोज आदि बिरुदोंसे विभूषित किया गया है । आमुक्त-माल्यदा का रचनाकाल श्रीकृष्ण देवराय के जीवन काल से संबद्ध है । उनका जन्म १५ वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ और विजय नगर साम्राज्य के सिंहासन पर १५०७ इस्वी सन में पट्टाभीषिक्त किए गए । अतः आमुक्त-माल्यदा का रचनाकाल सोलवीं शति का पूर्वार्ध माना जाता है । इस पर किसी प्रकार का संदेह करने का कोई अवसर नहीं रह गया है ।आमुक्त माल्यदा में ही कृष्णदेवराय ने तेलुगु भाषा को सभी देश भाषाओं से उत्तम सिद्ध करने का प्रयास किया है । बार-बार जिसका प्रमाण इस कृति में

मिलता है। इस कृति की प्रौढ शैली भाषा की प्रांजलता सार्थक पदावली, हृदय स्पर्शी भाव विन्यास, भव्य कथानक का गुम्फन, रस--भाव--अलंकार शय्या-पाक लोकोक्ति प्रभृति काव्य विशेषों की शैली के विन्यास आदि के आधार पर ही विद्वानों ने सर्वोत्तम प्रबंध माना है। इसी के आधार पर तेलुगु साहित्य के युग विभाजन में प्रबंध -युग को कृष्णदेवराय युग अथवा स्वर्णयुग माना जाता है।

आमुक्त-माल्यदा के रचयिता के कुल, पांडित्य रचना कौशल्य संस्कृत रचना और तेलुगु रचना के विषय मे अपेक्षित एवं वास्तविक सूक्ष्म ज्ञान होना कठिन है। आमुक्त माल्यदा के रचयिता कृष्णदेवराय के विषय में भी अधिक शोध नही हुआ है। अत: उपलब्ध शोध कार्यों के आधार पर उनका जन्म पन्द्रहवीं ईस्वी के आसपास मान लिया जाता है। इनके पिता की साहित्यिक रुचि का परिपाक पुत्र में अपनी चरम सोमा पर पहुच गया। श्रीकृष्णदेवराय बचपन से ही साहित्य एवं संगीत दोनों की आराधना में तत्पर होकर सरस्वती देवी के वरपुत्र हो गए। जिसके प्रभाव से इसको आंध्र भोज एवं साहिती समरांगण सार्वभौम आदि विरुदों से विभूषित किया जाने लगा। इसके दरबार में अष्ट दिग्गजों के नाम से प्रसिद्ध आठ कवियों को राजाश्रय मिला था।

जिन्होने कृष्णदेवराय से साहित्यिक प्रेरणा पा कर उससे लाभ उठाया और आन्ध्र भारती का सांगोपांग श्रृंगार किया। साथ ही साथ श्रीकृष्णदेवराय की प्रतिभा का प्रकाशन करने में भी काफी योगदान दिया। इससे श्रीकृष्णदेवराय के पांडित्य का प्रकर्षन ज्ञात होता है। 'विद्वान एव विजानाति विद्वज्जन परिश्रमम्' यह उक्ति यहां अक्षरशः चरितार्थ होती दिखाई पड़ती है। अनुकरण की अपेक्षा स्वातन्त्र्य से स्वकीय कल्पना का विलास, काव्यात्मक दृष्टि एवं रमणीय सन्निवेश की

प्रधानता से युक्त कविता रीति, आत्माभिव्यक्ति स्वयं चित्रित वस्तु का प्रयोग नायक नायिका भाव, उदात्त चित्रण, श्रृंगार और वीर रस चित्रण, रस प्रवणता' वर्णों की पेशलता, रसालंकारादि काव्यविशेषों की निविडता आदि समुचित सन्निवेश एवं सर्व सार संग्रहणी प्रतिभा का विलास, श्रीकृष्ण देवराय की कृति में परिपूर्ण रूप से दृग्गोचर होते हैं जिन्हें हम उनकी रचना कौशल ही मान सकते हैं।

श्रीकृष्णदेवराय उभय भाषाविद् ही नहीं अपितु अनेक भाषाविद् थे। उनका संस्कृत-आन्ध्र भाषा पांडित्य उनकी कृतियों के नामोल्लेख से ही हृदय आह्लादित हो जाता है। उन्होंने आमुक्त माल्यदा की पीठिका में ही उल्लेख किया है कि उनकी पांच संस्कृत कृतियां हैं। (१) मदालसा चरित्रम् (२) सत्यवधु प्रीणनम् (३) सकल कथा सार संग्रह (४) ज्ञानचिंतामणि (५) रस मंजरी। दुर्भाग्य से सभी कृतियां काल कवलित है। इस विषय में विमर्शकों का संशोधन चल रहा है।

फलतः विचार किया जायातो श्रीकृष्णदेवराय के कवित्व की श्रेष्ठ-ता बनाव संप्रति उपलब्ध एक मात्र आन्ध्रकृति 'आमुक्त-माल्यदा' ही है। जिसकी रचना का क्रम भी कुछ दैवीकृपा पर आधारित है। इस ग्रंथ की रचना के हेतु. 'आन्ध्रविष्णु' भगवान् ने श्रीकृष्णदेवराय को स्वप्न में दर्शन दिया और उनकी संस्कृत रचनाओं का उल्लेख करते हुए एक आन्ध्र भाषा काव्य की रचना करके उन्हे अंकित करने का आदेश दिया। जिसके फल स्वरूप यह 'आमुक्त—माल्यदा 'प्रकाश में आकर संपूर्ण आन्ध्र साहित्य को देदीप्यमान करने लगि। आज आन्ध्र भारती के उपासन 'आमुक्त माल्यदा'के आस्वादन से वंचित रहने वाले अपने पुण्य का अभाव ही मानते हैं।

'आमुक्त–माल्यदा' इस नाम की व्युत्पत्ति के पीछे एक बड़ी, मनोरम हृदयस्पर्शी, पवित्र भावनामयी कथा है। यह कथा रामायण महाभारत आदि से नहीं अपितु द्रविड़ों से गृहीत हैं। द्रविड़ देश में बारह आळवारों में पेरियाळवार (नामधारी विष्णुचित्त) नामक एक परम भक्त थे। उनको पोष्य पुत्री गोदादेवी थी। जो स्वयं ऊपर उधृत आळवारों में एक मात्र वैष्णव भक्ता थी। विष्णुचित्त जब भगवान् रंगेश जी को अर्पित करने के लिए पुष्पमाला तैयार करके रख देते थे तब चुर के से गोदादेवी उस माला को पहन कर आइने में अपना सौंदर्य देख लेती थी। उसी मधुर भाव की मूर्तिमति नायिका से इस काव्य का नाम 'आमुक्त-माल्यदा' पडा। इसका दूसरा नाम 'विष्णुचित्तीयम पडने का कारण भी स्पष्ट है कि चित्त में रहनेवाले भगवान् विष्णु का परम भक्त अपनी पोष्य पुत्री गोदादेवी को जो लक्ष्मी का अवतार, विष्णु स्वरुपी रंगेश भगवान् की पत्नी बनाकर ये महात्मा धन्य हुए। उससे संबद्ध कथा (प्रबंध काव्य) ' विष्णुचित्तीयमु ' नाम से प्रचार हो गया।

' आमुक्त-माल्यदा ' में छः या सात आश्वास हैं। श्री वेद वेंकट-शास्त्रि जी ने सात आश्वासों कि संजीविनी टीका का प्रकाशित किया। परंतु यह भी उपयुक्त विवरण से अपरिचित नहीं है। अतः उन्हो ने वेद वेंकटशास्त्री की सप्ताश्वास योजनावमें कुछ प्रक्षिप्त माना गया हैं। इससे मौलिक कथांश के विन्यास में कोई काम नहीं है। व्यवहार की दृष्टि से इपने विभिन्नकर्ता की प्रति का उल्लेख हैं। इस प्रबंध में वचनों (गद्य) की संख्या प्रथमाश्वास — ५, द्वितीया-श्वास ६, तृतीय आश्वास७, चतुर्थाश्वास—२४, पंचमाश्वास-११, षष्टा-श्वास २२ + १८ हैं। वस्तुतः ये वचन भाग बड़े ही महत्वपूर्ण इनका योग ग्रंथकार की कुशलता का द्योतक है। इन वचनों के प्रयोग से ग्रंथ का विस्तार नियंत्रित किया गया है और पद्यों के आधिक्य से हानि

परिवर्तन में भी काफी सहायता मिलती है। इससे इस मौलिक बात पर प्रकाश पड़ता है कि जैसे पद्यों के द्वारा सरसता के साथ भावों का गुंफन माना जाता है। उसी तरह गद्यों, खण्डोंके द्वारा भी सुंदरता का प्रकाशन सुनिश्चित हैं। संभवत: यह गद्य प्रयोग ' गद्यं कवीनां निकषं वदंति ' इस उक्ति को भी चरितार्थ करता है। इन गद्यों में गद्यों के विभिन्न रुपों का प्रदर्शन भी बड़ा मनोरंजक हैं। जैसे प्रथम पंक्ति से लेकर ७० से भी अधिक पंक्तियों के गद्य भाग दिखाई देते हैं, जिनकी शैली भी विभिन्न रुप में अभिव्यक्त होती है।

इस प्रबंध के पद्य भाग पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ठ हो जाता है कि पद्य की ही प्रधानता है मोटे तौर पर यदि गद्य अष्टमांश हो तो पद्य सप्तमांश हैं। यह पद्य भाग भी विभिन्न छन्दो में विलसित है। उसमें भी कुछ पद्यों ने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है।

उत्साह, कन्द, कविराज, विराजित चम्पकमाला तेटगीति तोटक, भुजंग प्रयात्तम, मत्तकोकिला इत्यादि वर्णछन्द गेय भी है। आमुक्त-माल्यदा का कथा सार जानना अत्यंत आवश्यक है।

अतः प्रथम आश्वास :

इसके प्रारंभ में पीठिका है। जिसमें सर्व प्रथम भगवान् वेंकटेश्वर की स्तुति की गयी है। क्रमश: गरुड़ विश्वक्सेन, पांचजन्य, नन्दक कौमोदकी, शार्ङ्ग, सुदर्शन और बारह आळवारों की श्रीवैष्णव परंपरा के अनुसार स्तुति की गयी है। फिर कलिंग की विजयेच्छा से आक्रमण करने जाते हुए विजयवाडा में कुछ दिनों तक रह कर काकुळेश्वर के मंदिर में जाने और पूजा— उपवास आदि करने का वर्णन है। एक रात चौथे प्रहर में भगवान् आंध्रविष्णु के स्वप्न में प्रत्यक्ष होना श्रीकृष्ण

देवराय की संस्कृत कृतियों का उल्लेख करना और आंध्र ग्रन्थ निर्माण करने का आदेश देना और ग्रन्थ का वर्ण्य विषय बतलाने का वर्णन है तेलुगु भाषा का महत्व, देश भाषाओं में तेलुगु भाषा की श्रेष्ठता को बताया। इस उक्ति का प्रयोग वेंकट पति को काव्य में अंकित करने का उपदेश और उत्तरोत्तर वृद्धि का आशीर्वाद भी वर्णित है। प्रातःकाल राजा सभी सामंतों के स्वप्न वृत्तांत का सुनाना स्वप्न की व्याख्या राज कुल प्रशंसा, और वर्णन है।

मूल कथा का प्रारंभ ५० वे खण्ड से होती हैं। विल्लि पुत्तूर नगरी के पेशल वर्णन के साथ आश्वास प्रारंभ होता है। विल्लिपुत्तूर नगरी का वर्णन विभिन्न रूपों में अपना आकर्षण और नवीन कल्पना परंपरा आदि से पारपूर्ण है। यह नगरी पांड्य देश में विद्यमान समस्त परंपराओं से परिपूर्ण है। यहाँ के निवासी भागवत आये हुए अतीथियों को और भागवत जनों को आवास, भोजन, आदर, सत्कार आदि के द्वारा यथा शक्ति सेवा करनेवाले है। उनमें से विष्णुचित्त एक उत्तम अद्वितीय विष्णु वैष्णवाराधक भगवद्भक्त है। पूर्व जन्म के अर्जित पुण्य के प्रभाव से बिना पढ़े ही सर्व शास्त्र ज्ञाता, सकल कला विशारद एवं अनन्य विष्णु पद सेवी के रूप में विष्णुचित्त का वर्णन है। इतना ही नहीं वे अपनी भक्ति भावना से भगवान् के मन को द्रवित कर दिया था। ये नित्य तुलसी और पुष्पमाला बना कर भगवान् को अर्पित कर अहर्निशि भगवदाराधन में निमग्न रहा करते थे।

द्वितीय आश्वास :

उस समय पांड्य देश की राजधानी मधुरापुरी थी। चंद्रवंश के मत्स्यध्वज नामक राजा राज्य करता था। सर्वगुण–संपन्न राज शिरोमणि

परम दानी एवं सभी कलाओं को प्रोत्साह देनेवाला था। उनके पुष्प वाटिकाओं का विशेष स्थान था। उसकी वेश-भूषा एवं भाषा प्रौढ और मनोरंजक थी। काव्यांगनाओं का वर्णन, मार्ग में यात्रार्थी परदेशी ब्राह्मण वर्णन राजा का वारांगना विलास की योजना, ग्रीष्मऋतु वर्णन आदि के सुनने राजा के चित्त में परिवर्तन होना, भोगिनी गृह गमन को रोकने का वर्णन है। राजा के द्वारा सभा को आयोजन किया जाना, उसमें परम तत्त्व का निर्णय करने के विषय पर वाद-विवाद, भगवान् ' मन्नारु देव ' का 'विष्णुचित्त' पर अनुग्रह करना और श्रीवैष्णव धर्म ' का प्रचार तथा विष्णु ही को परतत्त्व के रूप में निर्णय करने के लिए मत्स्य ध्वज राजा का सभा में जाने की प्रेरणा देना। विष्णुचित्त द्वारा अनभिज्ञता का द्योतक भगवान् का प्रोद्बलन और विष्णुचित्त का मधुरा पुरागमन। इस आश्वास का प्रधान कथा भाग है।

तृतीय आश्वास :

विष्णुचित्त का राजसभा में आगमन। सभा में विष्णु ही को परतत्त्व माना जाना इस निर्णय को सर्व समस्त रीति मान लेना। प्रसंगानुसार खण्डकाव्य का प्रधान कथानक वर्णित है

चतुर्थ आश्वास :

विष्णचित्त की विजय ! भगवान् विष्णु की कृपा। भगवान् का साक्षात्कार विष्णुचित्त द्वारा विभिन्न अवतार—राम, बलराम, श्रीकृष्ण बुद्ध कल्कि रूप मूर्तियों की स्तुति एवं भगवान् विष्णु का अंतर्धान हो इन बातों का वर्णन हैं।

एक दिन विष्णचित्त भगवान् के लिए माला समर्पित करके आते हैं मन्नार स्वामी जी अपनी प्राण वल्लभा से कहते हैं कि विष्णु चित्त भी

यामुनाचार्य जैसे विष्णु भक्त है। देवी ने आग्रह किया कि विष्णुचित्त के बारे में सुनाने तब भगवान् ने सुनाया।—

यामुनाचार्य जी नाथमुनि जी के पोते थे। शास्त्र कला आदि सभी विषयों का अध्ययन किया। उस समय मधुरा नगरी में धर्मध्वज नामक राजा राजकरते थे। वे वीरशैव थे। उसके अतिरिक्त वैष्णवों से द्वेष भी करते थे।

उसकी भार्या परम वैष्णवा थी। यामुनाचार्य चर्चा करने के लिए राज सभा में जब पधारे तब रानी ने कहा कि यह महात्मा विजयी होगा। उनकी बात सच निकली। विष्णु भक्ति (का धर्म) प्रतिष्ठापित हुआ और राजा भी वैष्णव बन गये। वाद-विवाद के विषय में यह शर्त थी कि जो हारेगा वह अपना मत परिवर्तन कर [illegible]। हुआ भी वही बात–विवाद के निर्णय के रूप में जो साक्षी पीपल का वृक्ष बोल उठा। 'यह सत्य है कि नारायण ही परतत्त्व है।' उन्हीं की सेवा करो। यह सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर अपनी बहन का विवाह यामुनाचार्य से किया। अपने राज्य का आधा भाग यामुनाचार्य को देकर सम्मान किया यामुनाचार्य भी दिग्विजयी होकर राजपाट करने में लगे रहे।

उसके गुरु श्री राममिश्र जी यामुनाचार्य को इस बंधन से मुक्त करने का प्रयास करने लगे। सात्विक आहार के रूप में अलर्कपत्र का शाख खिलाने की योजना कर उसमें सफलता पायी। उस संदर्भ में उन्होंने यामुनाचार्य को आत्म ज्ञान की स्थिति में पाया तुरंत उन्हें बतलाया कि वे अपने गुरुजनों के द्वारा सुरक्षित निधि को बतलाने के लिए आये हैं। श्रीरंगक्षेत्र में ले जा कर भगवान् श्रीरंगनाथ के पाद-पद्मों को दिखलाया। उन चरणारविंदों को देखते ही भगवान् की कृपा से

यामुनाचार्य जी का भ्रम दूर हो गया। उन्होंने अपने राज्य पुत्र को सौंपकर राजनीति का उपदेश देकर संन्यास ले लिया। इस आश्वास में बसंत और शरदऋतु का अत्यंत सुंदर वर्णन है।

पंचम आश्वास :

विष्णुचित्त को तुलसीवन में एक कन्या दिखाई दी। सुंदरी इस कन्या को देख कर विष्णुचित्त बड़े खुश हुए। वह भूदेवी का अवतार गोदादेवी है। उस समय उसके आसपास रहनेवाली सखिया सभी नागकन्याएं पड़ोसियों के घर में जन्मी थीं। सब मिलकर नारायण की सेवा में कीर्तन आदि करती थी। क्रमशः यौवन आया और गोदादेवी ने भी श्री रंगेश भगवान् से ही विवाह करने का व्रत ले लिया।

विष्णुचित्त जों तुलसीमाला और फूलमाला भगवान् के लिए तैयार करते थे। उसे गोदादेवी अपने प्रियतम का उपहार मानकर प्रतिदिन धारणकर कुएं के जल में अपने प्रतिबिंब देख लेती थी। बाद में माला यथास्थान रख देती थी।

गोदादेवी की विरह ज्वाला इतना बढ़ गयी, वह शय्या पर पड़ी। उपचार आदि के बाद उसने अपनी मनो व्यथा विष्णुचित्त को बतायी। उस पर भी गोदादेवी को शांति नहीं मिला। गोदादेवी की शोचनीय दशा देखकर उसे भगवान् के मंदिर में ले जाकर प्रार्थना की हे भगवान्! आप तो अंतर्यामी हैं, सब विषयों को समझ सकते हैं। भक्ति को इतना कष्ट क्यों देते हो। कृपया मेरी पुत्री के मनोभाव को समझिए। भागवान् मन्नार ने विष्णुचित्त को मालदासरी की कहानी सुनाई।

छठा आश्वास :

इस आश्वास में माल राक्षसी की कथा विष्णु चित्त को सुनायी गयी है। वामनावतार में जिस स्थान पर भगवान् थे वहां से एक योजन दूर एक भक्त रहता था। वह भगवान् का महत्व गाया करता था। सब कुछ कहते हुए भी वह अपनी कुल वृत्ति को नहीं भूला। भक्तों के द्वारा दिए गए तीर्थ-प्रसाद्र को खाकार जीता था। एक दिन आधी रात को जागा और नदी में स्नान के लिए चल पड़ा। कुछ दूर जाने पर वहाँ रहनेवाला एक ब्रह्म राक्षस दिखाई पड़ा।

उस ब्रह्म राक्षस ने माल दासरी को अपना आहार समझकर पकड़ना चाहा। माल दासरी ने उसके ऊपर बाण छोड़ना प्रारंभ किया। तो भी ब्रह्म राक्षस ने उसे पकड़ लिया। माल दासरी ने ब्रह्म राक्षस को समझाना प्रारंभ किया। वह माल दासरी भी बड़ा ज्ञानी था। अतः माल दासरी ने कहा ' मैं तो आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकूंगा। फिर भी मैं एक प्रार्थना करुंगा, उसे स्वीकार कीजिए। मैं मंदिरों में जाकर अभ्यास के अनुसार भगवन्नाम संकीर्तन कर लौट आऊंगा। शपथ खाकर बोलता हूँ। राक्षस ने उसकी बातपर विश्वास कर लिया।

दासरी मंदिर में जाकर अभ्यास के अनुसार भगवन्नाम संकीर्तन करके ब्रह्म राक्षस के पास लौट आया। ब्रह्म राक्षस आश्चर्य में पड़ गया राक्षस ने मालदासरी की प्रदक्षिणा करके मुक्ति दिखाने की प्रार्थना की और पूर्वजन्म का सारा वृत्तांत सुनाया। दासरी ने संकीर्तन पुण्य को देकर उसकी मुक्ति कराने की इच्छा प्रकट की। ब्रह्म राक्षस ने श्री लक्ष्मण योगी के विश्वस्य पूर्णाचार्य की कथा सुनाई। दृष्टांत के अनुसार दासरी भी पुण्यवान हो गए।

अंत में उनका सारा वृत्तांत सुनकर दासरी के आशीर्वाद से ब्रह्म राक्षस अपने पुराने रूप को प्राप्त कर मुक्त हो गया।

इस कथा को सुनकर विष्णुचित्त ने भगवान् को अपने घर बुलाया। अपनी पुत्री गोदादेवी का विवाह देवादि देवताओं के सामने विधिवत किया।

इसी छठा आश्वास कथा को दो भागों में विभक्त करके श्री वेंकटराव शास्त्री जी ने सप्त आश्वासों में इस ग्रन्थ की योजना मानी है। शास्त्री जी संजीविनी टीका को भी लिख कर प्रकाशित किया है। संपूर्ण आमुक्त माल्यदा ग्रन्थ का रहस्य परिशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता संस्कृत और आंध्र भाषाओं में अप्रतिम प्रतिभाशाली है। श्री वैष्णव धर्म के मर्मज्ञ हैं। यद्यपि नाम के विचार पर विषय की विचार किया जाय तो अंतिम अंश ही अधिक कथा भाग मालूम होता है। परंतु कवि की वर्णना निपुणता ने और योजना कौशल ने ग्रन्थ का सर्वांग पूर्ण रूप सुनियोजित एव सुसंबद्ध है।

कवि का कौशल 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि उक्ति के अनुसार काव्य को मधुराति मधुर नारीकेल पाक से दिखाई देता है। प्राय: पात्रों और विमर्शकों की उक्तियां इसके प्रमाण हैं। अत: काव्य में गौड़ी रीति तथा वैदर्भी रीति का ही प्राधान्य है। परंतु अन्य रीतियों और पात्रों का भी पूर्ण रूप से वर्णित है।

कवि की वर्णनाशक्ति अनन्य एवं विशद दिखाई देती है। उदाहरणार्थ श्री विल्लिपुत्तूर और मधुरा नगर का वर्णन, वसंतऋतु और ग्रीष्म ऋतुओं का वर्णन आदि कवि की कल्पना की विलक्षणता, मौलिकता का भी प्रशंसनीय है।

यह काव्य नूतन गुंफन एवं अलंकारिक रूपों की विलक्षणता की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें उत्प्रेक्षा स्वभावोक्ति, उपमा अलंकार का बाहुल्य दिखाई देता है।

शांत, शृंगार तथा भक्ति (मधुर) रस का परिपाक पूर्णतः महत्वपूर्ण है और उल्लेख के योग्य और विमर्श के योग्य भी है। इस काव्य में मधुर भक्ति का ज्वलंत उदाहरण अनुपम है। इस कथा की छन्दा-योजना पूर्व चर्चित रूप में एक विशिष्टता रखती है। उससे संस्कृत मूल और देशी छन्द व्यवहार कुशलता, कवि की रुचि पर ही प्रकाश डालता है।

अंततोगत्वा इस ग्रन्थ को पूर्णतः एक बार पढ़ने के साथ स्वाभाविक रूप में स्पष्ट हो जाता है। पाठक विष्णु भक्तिमय होकर आत्म विभोर हो उठते हैं। श्रीमन्नारायण की शरणागति एवं प्रपत्ति में पूर्णतः विश्वास करनेवाला भी हो जाता है। यह संभव हो सकता है कि इस उक्ति में पाठक की तन्मयता के आधार पर अतिशयोक्ति या अपवाद भी हो। वरन् इतना तो स्पष्ट है कि जितना प्रभाव वैष्णव मत पर प्रकट है वह विष्णु पुराण में नहीं है किंतु उससे भी अधिक प्रभाव आमुक्त माल्यादा को है।

अन्नमाचारी

ताळ्ळपाकं अन्नमाचारी :

इसका जीवन काल ई. १४०८—१७०२ है।

इन्होंने १६ वर्ष की उम्र में ही संकीर्तनों की रचना आरंभ कर दिया था।

इस कवि के जीवन काल में 'देव रायलु' 'मल्लिकार्जुन रायलु' 'विरुपाक्ष रायलु' 'सालुव नरसिंह रायलु' 'तुलुव नरसिंह रायलु' 'वीर नरसिंह रायलु' इन राजाओं ने विजयनगर साम्राज्य का शासन करते थे।

अन्नमाचारी की बाल्यावस्था सुख पूर्वक नहीं बीती। वह घर की परिस्थिति से दुःखी होकर घर से भाग गए। यात्रिकों के जाते हुए तिरुपति पहाड़ की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते थक गए। 'भाष्यकार' पाद नामक स्थान पर मूर्छित हो गिर पड़े। कहा जाता है कि उसी जगह पर वैष्णवाचार्य रामानुजाचार्य को भगवान् का साक्षात्कार हुआ था। आज भी वहाँ भगवान् के श्रीपाद–चिन्ह अंकित हैं।

बालक अन्नमय्या निद्रा में डूबा। तब जगन्माता पद्मावती का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने अन्नमाचारी से कहा—हे पुत्र! चप्पल पहन कर इस पवित्र पर्वत पर चढ़ना उचित नहीं है। अन्नमाचारी यह सुनकर

सचेत हुआ। जगन्माता की स्तुति मै 'शतक' के रूप में आशु कविता की अमृत धारा उनके मुँह मे बहने लगी। उसके उपरांत वे खुशी से यह पर्वत पर सरलता से चढ़ गए।

[अन्नमाचार चरितमु पृ-१३]

अन्नमाचारी रामानुज संप्रदाय में दीक्षित हुए। अहोबल शठकोप यतींद्र से गुरु मंत्र प्राप्त किया। उनका विवाह दो कन्याओं के साथ हुआ था। वह जिस पुण्य क्षेत्र में जाते थे वहाँ की मूर्ति को बालाजी की ही मूर्ति मानकर अभेद भाव से गीत गाते थे।

'साळुव नरसिंहराय' ने अन्नमाचारी का स्वागत कर अपने यहां बुलाया। राजा इनके भक्तियुत संकीर्तन सुनकर मुग्ध हो गए। पद्मावती और बालाजी के प्रेम गीत को सुनकर राजा ने कहा कि उसी प्रकार की रचनाएं उपने ऊपर भी गाने को अन्नमाचार्य के स्वभाव में आत्म-सम्मान एवं स्वतंत्रता का प्रेम बचपन से ही था।

अन्नमा चारी ने कहा कि—

केवल भगवान् पर आश्रित होकर भक्ति पूर्वक उसकी स्तुति करते हुए कीर्तनों का गान करना ही जीवन सर्वस्व है। नरहरि के चरणों में झुकनेवाला यह मस्तक किसी मानव के सम्मुख नत नहीं हो सकता। भगवान् के अधीन हो ही नहीं सकता। यह सुनकर राजा ने क्रुद्ध होकर उसे कठिन दण्ड दिया। कारागृह में बंद करवाया। अन्नमाचारी बालाजी के संकीर्तन करने लगे।

हे वेंकटेश्वर! मेरी रक्षा करो!

तुरंत समस्त श्रृंखलाएं टूट गयी। यह देख कर राजा की आँखें खुलीं। उन्होंने अन्नमाचारि से क्षमा मांगी।

अन्नमाचारी तिरुपति में ही सकुटुंब रहने लगा। उन्हीं दिनों में तिरुमला के मंदिर में 'संकीर्तन भंडारमु' की स्थापना हुई और उसमे संकीर्तनों को सुरक्षित रखा जाने लगा। अन्नमाचारी के पुत्र, पौत्र और पत्नी भी गीत रचना करते थे। अन्नमाचारी की रचनाएं :—

(१) श्रृंगार कीर्तनलु (२) आध्यात्म कीर्तनलु (३) वेंकटाचल महात्म्यमु (४) द्विपद रामायणमु (५) श्रृंगार मंजरी (६) संकीर्तन लक्षण ग्रंथमु (७) वेंकटेश्वर शतकमु।

इनके समस्त संकीर्तनों की संख्या ३२०००=हैं। ये प्रतिदिन एक कीर्तन की रचना करते थे। इन कीर्तनों से युक्त ताम्र पत्र आज भी तिरुपति के ओरियंटल रिसर्च इनि स्टियूट में सुरक्षित है। मार्गी कविता लोक में 'बम्मेर पोतना' महाकवि का जो स्थान है, गेय कविता वाङमय लोक में अन्नमाचारी का भी वही स्थान है। ये ही तेलुगु के प्रथम संकीर्तनकार हैं।

क्षेत्रय्या, रामदास एवं त्यागराज अन्नमाचार्य के ऋणि हैं। कन्नड़ के संकीर्तन कर्ता पुरंदरदास को भी इनका थोडा सा प्रभाव दर्शनीय है। एक बार पुरंदरदास ने अन्नमाचार्य से भेंट की थी। इनकी दो उपाधियां :—

आंध्र पद-कविता पितामह, संकीर्तनाचार्य अन्नमाचारी की कीर्तन-परंपरा उनके कुटुंबवालों से भी आगे बढ़ सकी। पेद्द तिरुमलाचारी एवं चिन्न तिरुमलय्या संगीत एवं साहित्य — कला के कोविद थे।

अन्नमाचारी की पत्नी का नाम तिरुमलांबा है । वह भी कवियित्री है । जिन्होने 'सुभद्राकल्याण 'नामक द्विपद काव्य रचा । ताळ्पाक वंशीय पहले भक्त और बाद में कवि । रामानुजाचार्य के मत में दीक्षित थे । परम वैष्णव भक्त तन-मन एवं धन से अपने आराध्यदेव श्री वेंकटेश्वर का कैंकर्य कर कृत कृत्य हुए ।

अन्नमाचारी के तीन पुश्त तक देव साक्षात्कार एवं सात पुश्त तक मोक्षाधिकार का वरदान श्री ॥ बालाजी से प्राप्त था । तेलुगु वैष्णव साहित्य ताळ्पाक कवियों का ऋणि है ।

ताळ्पाक पेद्द तिरुमलाचार्य अन्नमाचारी के पुत्र थे । ये महान् दानी थे । विजय नगर के विट्ठलेश्वर स्वामी के कैंकर्यार्थ जमीन दान में दे दी थी । बालाजी के पुष्करणी का जीर्णोद्धार और मंडप का निर्माण करवाया इन्होंने बालाजी वेंकटेश्वर मंदिर में दीपाराधन और संकीर्तन करने के लिए वैष्णव पुरोहितोंको नियुक्ति की । इन्होंने तिरुपति के आळवार तीर्थ के यहां लक्ष्मी नारायण मूर्तियों की स्थापना करायी ।

श्री बालाजी मंदिर के नाम पर १२ गावों का दान श्रीभंडार के लिए अधिकाधिक स्वर्ण एवं धन भी दिया । तिरुमल के वराहस्वामी के मंदिर का प्राकार, बालाजी मंदिर के पूर्वी गोपुर करवाने का श्रेय इन्हें प्राप्त है । इनकी तो अनेक उपाधियां हैं । 'श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापना-चार्य' 'वेदान्ताचार्य' 'कविता केसरी' तथा 'शरणागति वज्र पंजर' इत्यादि । इनके उपदेश गुरु कंदाळै अप्पलाचार्युलु थे । इन्होने अपने पिता अन्नमाचारी के संकीर्तनों को ताम्रपत्रों पर खुदवाया, और उन्हें बालाजी के मंदिर में स्थित 'संकीर्तन भंडारमु' में छिपा दिया था लगभग ३० वर्ष पूर्व ही देवस्थानम् वालों को इन ताम्रपत्रों का पता चला ।

इनकी रचनाओं की सुची—

शृंगार कीर्तनलु, शृंगार दंड़कनु, शृंगारवृत्तशतकमु, वैराग्य गीतमुलु, चक्रवाळ मंजरी, वेंकटेश्वरोदाहरणनु, सुदर्शन रगड़ा, भगवद्गीत वचनमुलु, संकीर्तन लक्षणनु,आंध्रवेदांतमु, आंध्र हरिवंशमु ।

शृंगार, नीतिशतकमु, वेंकटेश्वर वचनमुलु इत्यादि । अपने इन समस्त सुंदर रचनाओं को अपने इष्टदेव बालाजी ही को समर्पित कर दिया ।

अन्नमाचारी की रचना के ये विचार हैं कि :—

दास्यभाव, पश्चाताप, निंदास्तुति और शृंगार ।

भक्त कवियों ने दास्य भक्ति की महिमा का गायन किया है और उसे संसार से पार जाने का अमोघ उपाय माना है ।

तुलसीदास ने—

'सेवक सेव्य भाव बिनु भवन तारि उरगारी ।' पोतना ने और अन्नमाचारी ने सेवक-सेव्य संबंध पर ही बल दिया है । भक्ति दर्शन में भक्तों का विश्वास है कि जीव लघु है, परमात्मा असीम । सब से पहली हीनता, यह मानसिक है । मन अविद्यामल से ग्रस्त है, मेरा मन राग–द्वेष से लिप्त है ।

' प्रभु हौ । सब पतितन कौ टीकौ '

हे प्रभु ! अगर मैं अपने पाप लिखने बैठूं तो समस्त वनों के तालवृन्त भी पर्याप्त नहीं हो सकता । अंतद्रष्टा भक्त कम से कम

भ्रमों से मुक्त होकर अपने यथार्थ रूप को समझ लेता है। समझने के पश्चात जानता है कि यह मानव जीवन अमूल्य है।इसे मिथ्या और विषय बासना में नहीं करे। यह पश्चात्ताप बहुत समय के बाद आता है।

शरणागति की एक आवश्यक तत्त्व अनन्यता भी है। भक्त सब की ओर नहीं दौड़ता, केवल एक ही के शरण में रहना चाहता है। अन्नमाचारी ने भी कहा है कि बालाजी को छोड़कर अन्यों का भरोसा करनेवाला मन समुद्र में नाव को छोड़ कर व्यर्थ ही चतुर्दिक भटकनेवाली पक्षी के समान है। शरणागत की भावना का चरम बिंदु यह है कि जहां भक्त की इंद्रियां अन्य विषयोंसे निवृत्त होकर भगवत् विषय में ही रस लेती हैं इंद्रियों का यही सार्थकता है।

'इंटि वेलुपु वेंकटेशु गोलुवकु परुवलवेंटविरुगट' इसी तरह अन्य कविताएं भी सुंदर सर्व श्रेष्ट हैं। इसलिए अन्नमाचार्य कवि पितामह हैं।

ताळपाक पेद्द तिरुमलाचारी ने भी अपनी अनन्य भक्ति का प्रदर्शन इसी प्रकार किया—

मेरी आंखरुपी कुमुद तेरे मुख-चंद्र के दर्शन के लोलुप हैं। मेरा मन मयूर तुम्हारे शरीर के श्यामवर्ण रूपी घन का ही स्मरण करता है। तेरे श्रीपाद जल रूपी स्वाती की बूंदों के लिए मेरा मुह रूपी सीपी लालायित है। मेरे कान रुपी सर्प तेरे सकीर्तन के आश्वादन करने का अभ्यस्त है।

नरहरि कीर्तन नानिन जिह्व।
औरुल नुतिंपग नोपर्दु जिह्व॥

अर्थात नरहरि के संकीर्तन से अभिसिंचित मेरी वाणी प्राकृत जनों का गुण गान सह्य एवं स्वीकार्य नहीं हो सकता।

'श्री वेंकटपति जितिचु मनसु।
दावति नितरमु दलचदु मनसु ॥ (ताम्रपत्र १३५)

श्री बालाजी का स्मरण करने वाला मेरा मन अन्यों के संबंध में सोच भी नहीं सकता।

श्री अन्नमाचारी का जीवनकाल भी पन्द्रहवीं शताब्दि है। अन्नमाचारी ने गुरु और माता के प्रेम पूर्वक आग्रह से तिरुमलम्मा और अक्कलांबा नामक दो कन्याओं से विवाह कराया था।

अन्नमाचारी ने अपने गृहस्थ जीवन में दक्षिण के अनेक पुण्यक्षेत्रों का दर्शन किया। वे जिस किसी भी मंदिर गए, जिस किसी मूर्ति के पास गीत गाये उस मंदिर को भी तिरुमला पर स्थित बालाजी की ही मूर्ति मानकर इन्होंने उनके प्रति अनन्य भक्ति दिखाई। अन्नमाचारी ने राम कृष्ण तथा नृसिंह आदि नामों को वेंकटराम, वेंकटकृष्ण, वेंकट नृसिंह आदि नामों में परिवर्तित करके इष्टदेव के प्रति अपनी अनन्यता का परिचय दिया।

'इटिवेलु वेंकटेशु गोलुवक वहलवेंट दिरुगुह वेडविडचिवरुदगि डुट ॥

दास्य की साधना में जब भक्त कवि अपने को भगवान् के निकट तर पाता है और उसमें भगवान् का विश्वास एवं उसके साथ उसका संबंध दृढ़ हो जाता है, तब वह भगवान् से आत्मीय भाव रखता है। किंतु वे अंत तक दास्य भाव को पकड़े रहे। अन्नमाचारी जी का वात्सल्य रस के पूर्ण एक पद प्रसिद्ध है —

'नंद निंटनु जेरि नयमु मीरंग। चंद्रवदनलु नीकु सेव चेयंग जो जो। अंदमुग बारिंडुल नाडु चुंडग। मदलकु दों गवा मामुददु रंग जो जो ॥ यह गीत आंध्र के घर-घर में बडे चाव से गाया जाता है।

ताल्लपाकम चिन्नन्ना-१४७८ से १५६१

चिन्नन्ना-तेलुगु के प्रख्यात कीर्तनकार ताल्लपाकं अन्नमाचार्य के पोते तथा राजा कृष्णदेवराय के समकालीन थे। उनके चार काव्य—'अष्ट महिषी कल्याणमु' 'परमयोगी विलासमु' 'उषापरिणयमु' और 'अन्नमाचार्य—चरित्रमु'। ये चारों काव्य-ग्रंथ द्विपद छन्द में रचे गये हैं। ये पेद्द तिरुमलाचार्य और तिरुमलांबा के पुत्र थे। इनके अष्ट महिषी कल्याणमु श्रीकृष्ण के पट्ट महिषियों का विवाह वृत्तान्त है।

यह ग्रन्थ बालाजी श्रीनिवास की पत्नी अलमेलु मंगादेवी को समर्पित किया है. परमयोगी विलासमु काव्य में तमिलु नाडु के प्रसिद्ध आचार्य यामुनाचार्य रामानुजाचार्य इत्यादि बारह आळवारों के चरित्र वर्णित हैं। यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर और पद्मावती को समर्पित किया गया है। उषापरिणय और अन्नमाचार्य चरित्र भी श्रेष्ठ कृतियां है।

दक्षिणांध्र-वाङमय

दक्षिणान्ध्र वाङमय का मुख्य केन्द्र तंजाऊर, मधुरा, मैसूर और पुदुकोटे थे। ये चारों राज्य विजयनगर राजा के अधीन थे। बाद को स्वतंत्र बन गये। १५५०में तंजाऊर और मधुरा स्वतंत्र हो गए। पुदुकोट्टै पर तोंडमान वंशायों ने राज्य किया।

रघुनाथ राय के दरबार में अनेक कवि, कवियत्रियां संगीतज्ञ और नृत्याचार्य विद्यमान थे। यह सभा के अन्य नाम 'लक्ष्मी विजय' अथवा

'विजय-विलास' भी थे। इस सभा भवन में भी सदा साहित्य, संगीत, नृत्य प्रति ३६ नित होते थे। रघुनाथ नायक तेलुगु और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और कवि थे।

पारिजातापहरण आशु कविता है। रघुनाथ नायक के पिता अच्युत नायक' इस कृति पर परम संतुष्ट होकर रघुनाथ नायक का कनकाभिषेक किया। इन्होने और कई कृतियां रची हैं। रघुनाथ रामायण चंपू काव्य है। इस काव्य को श्रीरामचन्द्र के पद तलों में समर्पित हैं, महाभारत की कथा की भी रचना की है। रघुनाथ ने 'अच्युताभ्युदय' को द्विपदि छन्द में रचा है। यह तेलुगु साहित्य में एक नया प्रक्रिया का चिन्ह है।

ताळ्पाक पेद्द तिरुमलाचार्य

१ यह अन्नमाचार्य का पुत्र है। १६ वीं शताब्धी में इन्होने जन्म लिया। इसकी मातामुका नाम तिम्मांबा है। इसकी कृतियां — श्रृंगार संकिर्तन, आध्यात्म संकीर्तन, श्रृंगार दण्डकमु चक्रवाळ मंजरी, श्रृंगार वृत्त शतकमु, नीति शतकमु सुदर्शन रगडा, रेफ 'र' कार निर्णमय, आंध्र वेदान्तमु (द्विपदा) आंध्र हरिवंशमु, भगवत्गीतमु, (वत्तनमु) वेंकटेश्वर वचनमुलु, वेंकटेश्वर प्रभात स्तवमु, आदि हैं।

ये जीवन भर परम सात्विक होकर साहित्य रचना करते रहे। इन्हें वेदांताचार्य, कवितार्किक केसरी, शरणागत वज्र पंजर मंजरी, आदि उपाधियां प्राप्त हैं।

२ संकुसाल नृसिंह कवि

यह सोलहवीं शताब्धी के हैं। इसके मां बाप का पता नहीं मिला। यह भट्टर चिक्काचार्य के शिष्य हैं। कहा जाता है कि इन्होने अपने ग्रन्थ को श्रीरंगनाथ के चरणों में समर्पित किया। मांधात चरित्र संस्कृत कृति है।

३ कवि कर्ण रसायनमु–

'इदलु गरुड़ वाहनारूढु
पुंडरी काक्षुडु प्रत्यक्षं बगटयु॥

४ पिंगळि सूर्यनार्यडु—

यह सोलहवीं शताब्धी के हैं। पिता का नाम यल्लम्मा इनका जन्म स्थान कर्नूल जिला में 'याकुबीडु' है। संध्याल परिवार को कृष्णदेव राजा के आस्थान में स्थान प्राप्त था। गरुड़ पुराण, गिरिजा कल्याणमु, राघव पांडवीयमु, प्रभावती प्रद्युम्नमु, कळापूर्णोदयमु इनकी कृतियां हैं। 'कळापूर्णोदय वेंकटेश्वर के भक्ति गीत है।

उसमें अलंकार —' मकरकुंडलमुडुनु दामरलंदे गड्डु—

श्री वेंकटेसु जूचे

५. सिद्धिराजु तिम्मराजु :

यह सोळवीं शताब्धी के हैं। यह आळवार और आचार्यों का वर्णन हैं। यति–वृत्त से युक्त प्रौढ कविता है। इनकी कृतियाँ मंगल-

गिरि के नृसिंह स्वामि को अंकित है।' परमयोगि विलास विष्णु भक्ति भरित गीत है ।

६. तरिगोप्पन मल्लन :

' चन्द्रभानु चरित्रमु '

यह भी सोलहवीं शताब्दी के हैं। इसका स्थान चन्द्रगिरि हैं। यह मध्वमतानुयायी है। माता का नाम तिप्पांबा और पिता का नाम नृसिंह है। इन की कृति दत्तात्रेय भगवान् को अंकित है। श्रीकृष्ण-सत्यभामा के पुत्र चन्द्रभानु, रुकमबाहु की पुत्री के विवाह विचार वर्णित है। कवित्व सरस और सुंदर है।

७. चेळ्ळ पिळ्ळल नरसकवि :

रचना ' वेंकटेश्वर विलासमु '

इस कविका काल अठारहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक है। इसका जन्म स्थान गोदावरी है। ' यामिनी पूर्ण तिलक विलासमु ' एकांत सेवा कलापमु इनकी कृतियां हैं।

८. काकमानी :

ये सोलहवीं शताब्दी के हैं। स्वग्राम काकमानु है। 'राज-मानविजयमु ' ' पांचालीपरिणयमु ' और ' बहुळाश्वचरितमु ' इनकी कृतिय हैं। ये ग्रन्थ श्री वेंकटेश्वर को अर्पित हैं।

अन्नमाचारी के पद-साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। १) लीलावर्णन २) दास्य भक्ति और ३) नाम संकीर्तन। इन्होंने अपने गुरु के साथ अहोबल मठ में रहते समय

नृसिंह भगवान् के लोक रक्षण के बारे में पद रचना किया है। तेलुगु भाषा में इसके नाम–संकीर्तन लोक प्रिय बन गया था।

इनके कीर्तन में अनेक गीत लोकोपकार्य के है —

‘ श्रुतुलै शास्त्रमुलै पुराण कथलै सुज्ञान सारंबुलै
यति लोकागम वीधुलै विविध मंत्रार्थंबुलै नीतुलै
कृतुलै वेंकटशैल वल्लभ रतिक्रीड़ा रहस्यंबुलै
नुतुलै ताळ्ळपाक वन्नय वचो नुल क्रियल चेन्नगुन ॥

रेवणूरी वेंकटाचार्यलु :

‘ ‘ श्री पादरेणु महात्म्यमु ’

इसका समय सत्रहवी शताब्दी है। पिता का नाम तिरुमल-कोंडय्यायुडु माता पेररुंगरादु’ जन्मस्थान बरुंगरादु है।

९. रामचंद्रोपाख्यान :

प्राप्त नहीं है किंतु इस स्तुति पद्य में श्री पादरेणु महात्म्य है। श्री वेंकटेश्वर के श्रीं पादरेणु महात्म्य का वर्णन यतिवृत्त में वर्णित है।

१०. वेंकटाचल विलासमु :

यह ग्रन्थ तंजाऊर सरस्वती भंडार में है। रचना प्रशस्त है। किंतु रचयिता के बारे में ज्ञात नही है।

११. गणपवरपु वेंकटकवि :

‘ प्रबंधराज वेंकटेश्वर विलासमु :

यह सत्रहवीं शताब्दी की रचना है। पिता का नाम अप्पय्ययोंड्डु माँ मंगमांबा स्वग्राम गणपवरमु कृति 'आंध्रकौमुदि' हैं। यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर को समर्पित है।

१९. २० वीं शताब्दी के हैं दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्रिगारु और चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्रीगारु दो कवि है। उसके पिता वेंकटावधानी माँ शेषम्मा हैं। पोलवरं जमींदार के यहाँ आस्थान विद्वान् थे। वेंकट शास्त्री स्वग्राम गोदावरी जिला 'कडियं' है। इसके पिता कामय्या, माता चन्द्रम्मा हैं। ये स्तुतिपद्य राजदर्शन के वक्त रचे गये है। कुछ पद्य १८३६ में वेंकटेश्वरस्वामी के दर्शन के समय रचे है।

क्षेत्रय्य पदमुलु

'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' 'विश्वनाथ' का विचार है।

'इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावलिः काव्यं' 'दण्डि' लक्षण के बारे में कहते है।

'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्यं' जगन्नाथ का मत है।

क्षेत्रय्या के गीत इसी तरह के सुंदर और रमणीय अर्थ प्रतिपादक और श्रृंगार रस भरित है। श्रृंगार पद वाङ्मय में क्षेत्रय्या का अग्रस्थान है। रस पोषण, अर्थ पुष्टि, भाषा सौंदर्य में क्षेत्रय्या के गीत सर्व श्रेष्ठ है।

अलंकार-शास्त्रवेत्ताओं का प्रश्न है कि भक्ति एक प्रत्येक रस है या अलग? गोपी-कृष्ण प्रेम में लोग भक्ति भाव को ही देखते हैं। भक्त भगवान् के अनुभव में सर्व रसानुभव करता है। त्यागराज के कीर्तनों में भक्ति और श्रृंगार मिश्रित गीत हिंदोळ वसंत राग में गाया जाता है।

'रारा' सीता रमणी मनोहर! नीरज नयन। शोक मुद्रिर इस तरह की अलौकिक भक्ति महात्मा त्यागराज की कृतियों में ओतप्रोत है। क्षेत्रय्या एक महा कवि है। इसके पद खण्ड काव्य की रीति से रचे गये है इन्होंने गीतिकाव्य में अत्यंत प्रभावशाली कविता रची है यह पण्डित, शास्त्रवेत्ता, उभय भाषा कोविद, आत्मतत्त्व वेत्ता संगीत मर्मज्ञ और उत्तम वाग्गेयकार है। इसके गीत के मार्ग दर्शन से कर्नाटक संगीत को मार्ग दर्शन मिला ऐसा कहा जाता है।

यह त्रैलिंग ब्राह्मण और मुव्वपुरी के निवासी गोपालकृष्ण पर गीत गाया है —

पुंडरी काक्षुडु—पुरुषोत्तमुडु।
मुरवैरि वंदित —मुव्व गोपाल।

क्षेत्रय्या ने पहले तंजाऊर, मथुरा के राजास्थान में गौरव प्राप्त कर राजा के ऊपर पद रचना की।

उसके बाद स्वग्राम में मुव्व गोपाल स्वामि के दर्शन उन्होंने किया वहाँ एक सुंदरी लावण्यवती देवदासी पर मोहित हुए।

उस देवदासी ने शर्त लगाई कि गोपालकृष्ण पर गीत गाये जावें। उस देव दासी के लिए सर्वस्व वही मुव्व गोपाल था। इसलिए क्षेत्रय्या ने भगवान् पर गीत रच कर उस रमणी को मुग्ध किया। क्षेत्रय्या को अनेक दिन व्रत उपवास करने पर उन्हें गोपाल मूर्ति का अनुग्रह प्राप्त हुआ।

इसका नाम पहले वरदय्या था। जब गोपाल स्वामी के दर्शन हुए तब से अलौकिक आनंद—रसानुभूति के कारण अनेक तीर्थ क्षेत्रों में भगवान के दर्शन कर गीत रचकर गाना शुरु किया। भगवान् के जिस रूप को देखा और जैसा अनुभव किया वैसे गेय रचे और तंबूरा के झंकार के साथ कीर्तन गाते थे। गोपाल स्वामी उनका आराध्य था। इसके वंश की परंपरा आज भी हैं।

इसका गाँव बहुत पुराना है। गोपाल स्वामी के मंदिर की दुरस्ती का विवरण २९७ गीतों में किया हैं।

क्षेत्रय्या ने छोटी उम्र में संस्कृत और आंध्र भाषा का अध्ययन किया था। उसके गाँव से दो मील दूर पर कूचिपुडि नाम का अग्रहार

है। वहाँ के लोग संगीत, साहित्य, नाट्य और अलंकार विद्या में प्रसिद्ध हैं। मुव्व वरदय्या (क्षेत्रय्या) के पदों को अध्ययन करनेवालों को ज्ञात होता है कि वह प्राज्ञ प्रतिभावान् लोकानुभवी, संगीत और साहित्य में निष्णात है। वह देवदासी भी संगीत और नाट्य साहित्य में अत्यंत प्रतिभावान् थी।

उसने पार्वती देवी से प्रार्थना की कि क्षेत्रय्या ही उसके पति हो। आगे दोनों ने मिलकर नृत्य — गीत का अभ्यास किया। उस गणिक ने गाया कि—

' इंत मोह मेमिरा ! यिदरिकंटे — निति चकिकनि देमिरा।
..........अंतरंगमु देलुप-पदियेल-मुव्व गोपाला।।

वह जो पद गायेगा उसके अर्थ समझ कर अभिनय करनेवाली ही ठीक हैं। २५०वां गीत में इन दोनों के प्रेम जीवन का विवरण हैं। उसकी प्रेयसी विद्या में मात्र नहीं किंतु, रूप-- गुण में भी श्रेष्ठ, थी।

क्षेत्रय्या ही वह सरस साहित्य कविता चतुर समझ कर अपने पुत्र को अच्युत विजय, राघव को पद सिखाने का इंतजाम किया।

क्षेत्रय्या को मधुरै तंजाऊर, गोलकोंड संस्थानों में आदर मिला, इस तरह राजा, नवाबों से सम्मानित रहे। क्षेत्रय्या का समय —

१. मधुरे के तिरुमल नायकडु - कि. श. १६२३ — ५१ तक
२. अच्युत विजय राघवुडु — १६३३--७३ तय
३. अनाटि गोलमोंड नवाबलु —
४. अब्दुल्ला कुतुबशा — १६१२-७२ तक

अनेक पुण्यक्षेत्र के यात्रा कर उन-उन क्षेत्रों में सुपूजित भगवान् पर गीत गाए और मुव्व गोपाल को अंकित किया करते। आदि वराह, कड़पा वेंकटेशुडु करिगिरिवरद, वेन्नारायण, यादुगिरि-चलुवरायुडु श्री वेंकटेशडु वेंकटरमण तिरुमले सप्तगिरि, वासुदेवुडु, इत्यादि भगवान् के कई रूपों के ऊपर अपने गीत रचे हैं।

'वरदुनिकि वरदुडु अनिमात्र में युन्नदि '
मुव्व गोपालुडेन वरदुडु ।

' इंतिरोवरदुतिकि नीवै — नैंत मोहमें'

क्षेत्रय्या के ३३९ गीत प्राप्त हैं। उनमें प्रथम पद, परत्वपद, आनंद पद, शंकरपद, निवालीपद ; गोडिचपद तानंद पद इत्यादि हैं। ये सब तालपत्र और ताम्र पत्र पर अंकित हैं। क्षेत्रय्या की पद रचना और उनकी भाषा में रस पुष्टि कल्पना विशेष, शास्त्र ज्ञान संगीत की विशेषताएँ परिपुष्ट हैं। क्षेत्रय्या के गीतों में राजांतःपुर में होनेवाली विस्मय कारी दृश्य, स्त्रियों के दुख दायक परिस्थिति दुरवस्था आदि की सहृदयता से वर्णन किया है। विषय ग्रहण शकती में क्षेत्रय्या ने अपने सूक्ष्म अनुशीलन दृष्टि से परखा और समझा। 'रवि ने जिसे न देखा उसे कवि ने देखा।' सच तो है। 'रवि गानागि चो कवि गांचुनेकदा।' क्षेत्रय्या अपने गीतों में सहृदयता का हृदयंगम अभिव्यक्ति की है। उसका अभिप्राय है कि स्त्री एक मात्र क्रीड़ावस्तु या भोग्य वस्तु नहीं है। वह भी गौरव के पात्र है।

बाल लीला

' अनि ब्रह्मादु लेंचेरु हरिबाल लीललु
नेनकु शुकादुलचे विंटिमि नेमिन्दवो
पोत्तुललो बल्वलिचे पुरुषोत्तमुड्डु दालि
इत्ति मरराकुपै बडिनदुवलेने
बोत्तगिलि बोरगिलि बुंडजोच्चे गृष्णुड्डु
तत्तगान गूर्मावतार मैन गतिनि।
तप्पटडगुलु वेटवे तग द्रिविक्रमुडै
गोप्प पादालनु भूमि गोलिचिनटलु
अप्पुडे कोदलु माटलाड जोच्चे गृष्णुड्डु
तप्पनयुर सतुल दग बोधिंचिनटलु
अच्चपु रेपल्लेलोन नाडजोच्चे गृष्णुड्डु
मेच्चुल वैकुठान मेरसिनटलु
निच्चलु श्रीवेंकटाद्रि निलयुडैयुन्नवाडु
अच्चुग जावुललान नाडु मैनटलु ॥

[अ. सं. X—२८२]

भगवानचारपाई पर सोया, बटपत्र पर शयन किया। इसके बाद कूर्मावतार, त्रिविक्रमावतार किया नंदकुल में जन्म लेकर बाल लीला दिखाया। किंतु वेंकटाद्री में शाश्वत रूप से स्थिर है। भगवान् जीव के आत्म स्वरूप हैं।

ेत्तरे आरतुलु यिन्गे कानुकलु
यित्तल नेगि वच्चीनि यिंदरानाथुडु ॥प।

गरुड़ ध्वज पुतेरु कनकमयं पुतेरु
सिरुलतो वेदमुलु चेरुलतेरु
सुरलु मुनुलु बाट्ट सोंपुलतोड दिव्यंगानु
यिरवुग नेगिवच्चीनिंदिरानाथुडु [एत्त]

जीवकोटलुन्नतेरु शेषुडे रूपैन तेरु
वे वेलु सिंगारमुल वेलयु तेरु
मूवरुस निरयुलुनु मुक्तुलनु गोलुवगा
यांवल नेगि बच्ची निंदिरानाथु ॥ [एत्त]

पंच भूत मुल तेरु ब्रह्मांड मैन तेरु
मिंचिन श्री वेंकटाद्रि मीदटि तेरु
कोंचक यलमेलमंग गूडि वच्चीनदे तेरु
येंचरानि महिमनु निंदिराधुडु ॥ [एत्त]

[अ. सं.-X-३१]

रथोत्सव के रथ साधारण नहीं हैं। गरुडध्वज से सुशोभित है। इसमे वेद ही रस्सी हैं। सुरमुनियों के साथ ईंदिरानाथ रथ पर आरुढ आ रहा है।

जीवकोटियों के साथ आदिशेष के रूप में ही रथ है। पंच भूतों के साथ ब्रह्मांड की तरह बहुत बडा रथ हैं। श्रीवेंकटाद्री के ऊपर अलमेलमंगा के साथ बालाजी श्रीनिवास रथ में आरहा है।

आध्यात्म संकीर्तन—१४७

,रामचंद्रुडितंडु रघुवीरुडु
कामित फलमुलीयं गलिगे निंदरिकि ॥राम॥

गौतम भार्य पालिटि काम धेनुवितंडु
घातल गौशिक पालिटि कल्प वृक्षमु
सीतादेवि पालिटि चिंतामणीतंडु
ईतंडु दासल पालि इह पर दैवमु ॥राम॥

परग सुग्रावु पालि परम बंधुडितंडु
सारि हनुमंतु पालि साम्राज्यमु
निरति विभीषणुनि पालि निधानमु
गरिम जनकु पालि घन पारिजातमु ॥राम॥

तलंप शबरि पालि तत्वपुरहस्यमु
अलरि गुहुनि पालि आदि मूलमु
कलडन्नवारि पालि कन्नुलिटुटि मूरुति
वेलय श्रीवेंकटाद्रि विभुंडितंडु ॥राम॥

आध्यात्म संकीर्तन

दाचुको नीपादालकु दग नेजेसिन पूजलिवी
रुचि नी कीरिति रूप पुष्प मुलिवियय्या ॥पल्लवि॥

ओक्क संकीर्तने चालु वोद्धिकै मम्मु रक्षिचग
तक्किनवि भंडारान दाचि वुंडनी
वेक्क समगु नी नाममुवेल सुलभमु फलमधिकमु
दिक्कै नन्नेलितिवि विक नवि तीरनि न धनमय्या ॥दाचु॥

ना नालिक नुंडि नाना संकीर्तनलु
पूनि नाचे निन्नु बोगडिचितिवि
वे नामाल वेन्नुडा विनुतिच नेंतवाड
कानिम्मनि नाकी पुण्यमु गट्टितिविंतेनय्या ॥दाचु॥

ई माट गर्वमुगादु नी महिमे कोनियाडितिगानि
चेमुंचि ना स्वातंत्रमु चेप्पिन वाडगानु
नी मान बाडे बाडनु नेरमु लेंचकुमी
श्री माधव ने नी दासुडं, श्री वेंकटेशुडवय्या ॥दाचु॥

अन्नमाचार्य-संकीर्तन २२ ३२५

कोंडवेल नेत्तिनट्टि गोविंद निन्नु
गोंडिचेरु यशोदकु गोविंदा ॥कोंड॥

गोल्लतलु मो क्केरु गोविंदा नी
कोल्लल चीरलिम्मनि गोविंदा
गोल्लुवेन्न दोंगिलंग गोविंदा निन्नु
कोल्लुन नव्वेरु वीरे गोविंदा ॥कोंड॥

गोंत्तुल गा चेवेळ गोविंदा पिल्लं
गोविनि वलचिरि गोविंदा
गोबालुकै यमुनलो गोविंदा नीकु
कोवर मुन्ना रुरा गोविंदा ॥कोंड॥

कोट्टि टेबुटलकिंद गोविंदा नींतो
गोट्टी वाट्टि पेनगेरु गोविंदा
गुट्टुतो श्री वेंकटाद्रि गोविंदा कूडि
गोट्टान बेट्टेरु बत्ति गोविंदा ॥कोंड॥

श्रृंगार कीर्तन—१२—२४

'अलरुलु गुरियग नाडेनदे
अलकलगुल्लकुल नलमेलुमंग
अर विरि सोबगुल नतिवलु मेच्चग
अरतेर मरुगुन नाडेनदे

वरुसग पूर्वदुवाळपु तिरुपुल
हरि गरगिपुचु नलमेलु मंग
मट्टपु मलपुल मट्टेल केलपुल
तट्टिडि नडपुल दाटिनदे

पेट्टिन बज्रपु पेंडेपुदुल्लकुल्ल
अट्टिटु चिम्मु नलमेलुमंग
चिंदुल पाटल शिरिघोलयाटल
अंदेल म्रोतल नाडेनदे

कंदुव तिरुवेंकटपति मेच्चग
अंदपु तिरुपुल नलमेलुमंग

आधार—सप्तगिरि १९७९

'अदिवो अल्लदिवो हरिवासमु
पदिवेल शेषुल पडगल मयमु ।
अदे वेंकटाचल मखिलोन्नतमु
अदिवो ब्रह्मादुल कपुरूपमु ।
अदिवो नित्य निवासमखिल मुनुलुकु
अदे चूडुडदे भ्रोक्कुडानंद मयमु ।
चेंगट नल्लदिवो शेषाचलमु
निंगिनुन्न देवतल निजवासमु
मु गट नल्लदिवो मूल नुन्न धनमु
बंगारु शिखराल बहु ब्रह्ममयमु ।
कैवल्य पदमु वेंकटनगमदिवो
श्री वेंकटपतिकि सिरुलैनदि
भाविंप सकल संपद रूपमदिवो
पावमुनलकेल्ल पावनमयमु ॥'

अन्नमाचार्य की भावना हैं कि तिरुमला में रहने वाले सारे चराचर सब बालाजी की सेवा के लिए देवता स्वरूप हैं ।

संकीर्तन—५

'मलसी जूडरो मगसिंहमु
अलवि मीरिन मायल सिंहमु
अदिवो चूडरो आदिम पुरुषुनि
पेद्द यौभळ्नु मीदि पेनुसिंहमु
वेदिकि ब्रह्मादुलु वेदांततत्वुलु
कदिसि कानगलेनि घनसिंहमु
मेच्चिच मेच्चिच चूडरो मिति मीरिनयटि
चिच्चरं कंटि तोडि जिगिसिंहमु
तच्चिन वारिधि लोनि तरुणि कौगिट जेर्चि
गिच्चिन गोळ श्री नरसिंहमु
बिंकमुन जूडरो पिरितीयक नेडु
अंकपु दनुज संहार सिंहमु
वेंकट नगमु पै वेदाचलमुवै
किंकलेक वडिवेरिगिन सिंहमु ।'

आद्यात्म सं—१० –५

एमंदु मिंदुकु नेरगिनदे तोलि
श्री माधवुड नीवु सेसिनदे तोलि
वोक मान जेदू वोक मान दीपू
ककिपिकलै रेंडू गलवे तोलि
वोकनिक ज्ञानमु पोकनिकि ज्ञानमु
सकलान गलुगुट सहजमे तोलि ।
पगलु वेलुगु पै पै रात्रि चीकटि
निगडि लोकमुलनु निजमे तोलि
मोगि सुरलकु मेलु मुचि दैत्युलकु गीडु
तगिलि नोसलि व्रात तप्पादिदि तोलि ।
वेन्नेललु चंद्रुनंदु वेडयेंड सूर्युनंदु
कन्नुक लोकमुवारु गन्नदे तोलि
येन्नग श्री वेंकटेश येलिनवाडवु नीवु
वुन्नवारु नीकिंद नुन्नवारु तोलि ॥'

येसब माधव की कृपा है। एक वृक्षा में खट्टा और एक में माधुर्य यही संसार की स्वाभाविकता। एक ज्ञानि और एक अज्ञानी। सुबह प्रकाश, रात को अंधेरा है। देवताओं को सुख राक्षसों को कष्ट। हे !वेंकटेश तुम स्वामी और हम दास है।

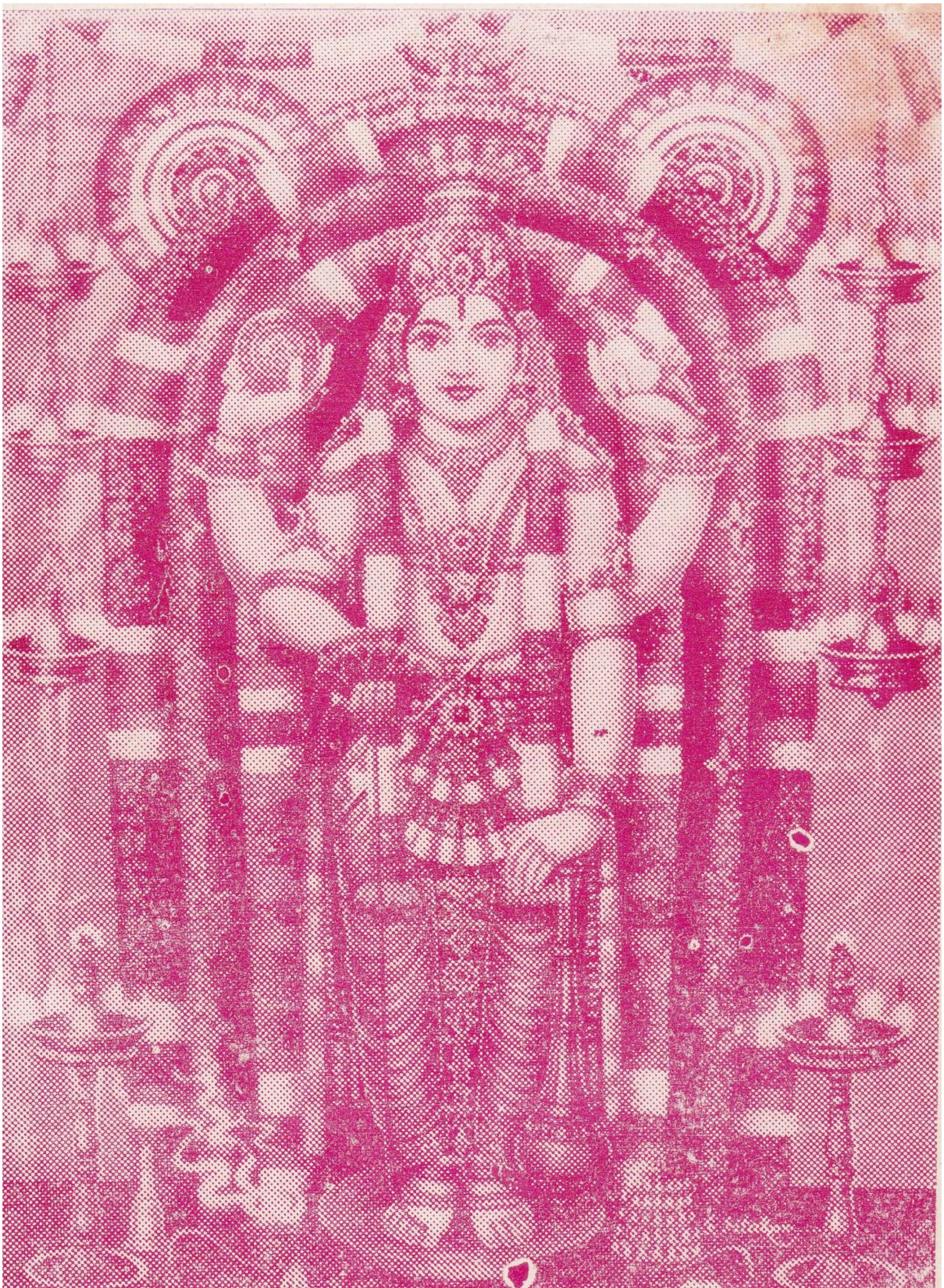

श्रीकृष्ण—गुरुवायूर

आध्यात्म संकीर्तन-१६-१३ ताळ्पाक्कं चिन्नतिरुमलचार्य

चिचगा देलियकुंटे बहुमुख मै तोचु
अच्चगा मै यिन्नियुनु श्रीहरी कल्पितमुले
कोंदरु दिट्टुदुरु कोंदरु दिविंतुरु
चंदपु संसारमु जाडलिवि
कंदुव रेयी बगलु गालमु नडचिनट्टि
अंदरिलों गलुगु श्री हरि कल्पितमुले
कोन्निटिपै कोपमु कोन्निटि पै वेड्डुक
बुन्नति देव धारुल वोज लिवि
पन्निकाय पंडु दोंड पंटियंदे तोचिनट्टु
अन्नियु बुट्टिंचिन श्रीहरिकल्पितमुले
कोंव चोट मनुजुलु कोंव चोट देवतलु
अंता श्री वेंकटनाथु नाज्ञयिदि
चेंत चपानयु दीपु चेरकंदे वुंडिनट्टु
कांतुडैन श्रीहरि कल्पिमुतले

भगवान् की लीलाओं का बिवरण बहुत सुंदर ढंग से चित्रित किया है

चौथाध्याय

मलयाळी साहित्य

कई शताब्दी का पुराना राज्य है केरळ।

रामायण और महाभारत में भी केरळ राज्य के बारे में ईल्लेख हैं। क्रि. पू. चौथा शताब्ध मे अलेग्जांडर जब भारत आया तब केरळ देश के राजाओं के बारे में विवरण दिया है। साम्राट अशोक के शासनों में भी केरळ राज्य के बारे में विवरण हैं। चेर राजाओं के शासनकाल में 'पदिट्टु पत्तु' 'शिळप्पादिकारं' 'मणि मेखल' आदि सर्व श्रेष्ट प्राचीन तमिल कृतियों की रचनाएं हुई।

केरळ राज्य ने विदेशी बाणिज्य में मी प्रमुख स्थान प्राप्त किया था। ईजिप्ट, अरेबिया, चीना बेबिलोन और रोम देशों से व्यापार करना था। वहां के श्रीगंध, मोरपंख और सुगंध द्रव्य विदेशों को भेजे जाते थे। ग्राम संघटना यहां के लोगों की विशेष प्रवृत्ति है। केरळ के नंबूदिरी शासक वर्ग ग्राप संघटन के द्वारा शासन करते थे। वे शासक पांड्यवंश के विशेश को बुलाकर उनसे शासन करवाते थे। उन्हें पेरुमळरु' कहते थे।

क्रि. शक ११ वी शताब्धी में राजेंद्र चोळ ने 'पेरुमाळ' भास्कर रविवर्म को जीता। उस समय से पेरुमाळ राज्य की समाप्ति हो गयी। आगे 'कोलत्तु नाडु' 'कोळिक्कोड' 'बलुवनाड' 'ओडनाड' आ राज्य और इनका इतिहास प्रमुख हैं। ऐसे ही समय में पोर्चुगीसों का आगमन हुआ। क्रि. शक १४९८ में 'वास्कोडिगाम' जब कोळ्किोड आय-

तब पोर्चुगीस उसके बाद डच्च लोग केरळ से व्यापार और पीछे शासन भी करने लगे। ब्रिटीश के समय में तिरुवांकूर और कोच्चिच आदि देशी राज्य आगे बढे —

केरळ की भाषा।'मलयाळी' है। किंतु इस भाषा की उत्पत्ति होकर बहुत दिन नहीं हुए। द्राविड वर्ग की भाषाओं के लक्षण मलयाळी भाषाओं में भी हैं।

मलयाळी औरत मिळ भाषा—

यह समझने में तकलीफ नहीं होगी कि तमिळ और मलयाळम का संबंध अपार है। इतना ही नहीं कन्नड, तेलगु आदि द्राविड़ भाषाओं के भी निकट संबंध है।

मद्रास विश्व विद्यानिलय के प्रोफेसर रामकृष्णय्या जी ने 'द्राविड़ गोत्र शब्द समुच्चय' नाम के ग्रंथ में बताया है। ५००० शब्दो के साथ कन्नड, तमिळु, तेलुगु और मलयाळम शब्दों में साम्य हैं। भाषा शास्त्रज्ञों का विचार है कि मलयाळम् और तमिळ पश्चिमी घाटियों के आस पास की भाषाएं थी आगे 'चोळ' 'पांड्य'आदि राजा केरळ पर शासन करने लगे। उस वक्त तमिळ का प्रभाव मलयाळी भाषा पर पड़ा कई शतमानों से राजा लोग शासनों को चेंदमिळ में खुदवाते थे। चेंदमिळ का प्रभाव केरळ पर फैला। शिक्षित लोग चेंदमिळ में ही व्यवहार करते थे। यहीं भाषा विकास पाकर मलयाळ भाषा की व्युत्पत्ति हुई।

ये दोनों भाषाएं अलग—अलग शाखाओं में फूली-फली । पुराने–जमाने में मलयाळी भाषा को तमिळ भाषा ही कहते थे । ब्राह्मण क्षत्रिय और नायर लोग उच्च शिक्षण पाने के कारण उनकी भाषा शुद्ध थी किंतु साधारण लोगों की भाषा सामान्य थी ।

मलयाळी भाषा के लिए अपनी एक लिपि है, पहले पहल माने चेर ' पांड्यों के शासन काल में ' वट्टेळुत्तु 'लिपि में मलयाळी भाषा लिखते थे यह लिपि अब शासनों में मात्र है । इसे लिखना कठिन है । धीरे धीरे थोडा सा परिवर्तित ' कोलेळुत्तु' में लिखने लगे । कोच्चि और मलबारमें इसका अधिक प्रचार था । इसमें अधिक फ़रक नही था । आगे यही ' मलयाळम ' लिपि नाम से तिरुवनंतपुरं आदि दक्षिण के प्रदेशों में अधिक प्रचार में थी ।

उपर्युक्त तीनों लिपि पढ़ने--लिखने में आसान नहीं थी । ग्रंथाक्षर लिपि करीब सातवीं शताब्दी से पहले दक्षिण भारत में प्रचार में थी । जब मलयाळी भाषा में ' मणिप्रवाळ ' साहित्य का आविर्भाव हुआ तब से यानी क्रि.श नौवीं शताब्दी तक एक लिपि निश्चित हुई । इस लिपि को ' आर्या-लिपि ' कहते हैं । भाषा शास्त्रज्ञ कहते हैं कि अशोक,चेर-पांड्य राजा-ओं के बाद कई तरह परिवर्तित होकर आज का रूप धारण किया है ।

मलयाळी साहित्य का तीन भागों में बिभाजन किया हैं । पहले चेंदमिळ , आगे संस्कृत के प्रभाव से यह साहित्यिक भाषा के स्तर पर आयी । इसकी प्रथमावस्था , पाट्टु ' (गीत) मणि प्रवाळं में कई कृतियों की रचनाएं हुई हैं । सामान्ययत: यह समय १०वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक माना जाता है ।

१२ विं शताब्दी में चेरुश्शेरी कवि की शैली में नवीन लक्षण दिखाई पडते हैं। १७ वीं शताब्दी में 'एलुत्तच्चन' नाम के कवि बहुत प्रसिद्ध थे। इनकी कृति में भाषा के स्वरूप और शैली में आधुनिक लक्षण दिखाई पडते हैं। अनेक कवि इनकी शैली का ही अनुकरण करने लगे। इनका साहित्य प्राचीन, मध्यकालीन और नवीन हैं तीन भागों में विभजित किया गया है। केरळ में चेंदमिळ साहित्य प्रचार में था। उसमें 'पदिट्टु पत्तु, क्रिस्त शक के प्रारंभ से चेर राजाओं के वंशों की स्तुति की जाती थी। इन कवियों में श्रेष्ठ है। 'इळंगो आडिगळ' नाम के कवि उनकी प्रसिद्ध कृति 'शिलप्पादिकारं' है।

दूसरी शताब्दी में कन्नगि और 'कोवलन' की कहानी के आधार पर रचित चरित्र हैं। यह केरळ राज्य में अत्यंत प्रसिद्ध कृति है। महा पतिव्रता 'कन्नगि' पति वियोग से राजा को शाप देती है, निरपराधि पति की मृत्यु से दुःखि 'कन्नगी' आत्महत्या कर लेती है। पाप भीरु राजा ने 'कन्नगी' के शाप से डर कर 'कन्नगी' के लिए एक देवमंदिर बनवाकर उसकी मूर्ति की स्थापना करता है।

कई कृतियों में 'अगनानूर' और 'पुरानानूर' नाम के तमिळ ग्रंथों की रचना की हैं। नंबूदिरियों के आगमन से केरळ प्रांत में संस्कृत भाषा का प्रचार हुआ। आर्य संस्कृति के साथ केरळ प्रांत के आचार व्यवहार और पहनावे मिल-जुल कर आगे बढे। आगे बढकर वेदांत, ज्योतिष वैद्य इत्यादि साहित्य की रचनाएं हुई। इन प्रज्ञा परंपरा की श्रेष्ठता आचार्य शंकर से बहुतबढी।

कवियों में कुलशेखर आळ्वार की 'मुकुंदमाला' 'युदिष्टर विजयं' 'नळोदयं' आदि काव्य सुंदर और श्रेष्ठ हैं। 'पाट्टु'

मलयाळ के दोहे के जैसे गीत हैं। इसमे प्रास और वृत्त तमिळ भाषा के जैसे ही हैं। लीळा तिलकाकारने इसका सुंदर विवरण दिया है।

रामचरित पाट्टुः—

उळ्ळूर जी का अभिप्राय है कि 'रामचरित पाट्टु' बहुत प्राचीन कृति हैं। करीब १२ वीं शताब्धी की होगी इस कृति को तिरुवांकूर के शासक श्री वीररामवर्मा रचा होगा। लेकिन इस विचार में मत भेद भी है। मलयाळी लोगों के लिए यह कृति अत्यंत प्रिय है। आगे के साहित्य पर इसका प्रभाव पड़ा हैं। संस्कृत और तमिळ के संयोग से रचित कृति को 'मणि प्रवाळ' कहते हैं।

'लीला तिलक' एक श्रेष्ट कृति हैं। इस कृति में देवता स्तुति राजाओं की प्रशांसा, पुण्य क्षेत्रों के महात्म्य, नायिका वर्णन प्रेम संदेश आदि का वर्णन हैं। इससे प्राचीन मणि प्रवाळ की कई वीशेषताएं दिखाई पड़ती है।

'कूडियाट्टं' का प्रचार दिन ब दिन बढ़ता गया। उसके साथ साथ अभिनय की संकेतिक कृति का भी निर्माण होने लगा। इन कृतियों को 'कुलशेखर वर्मा' और 'भास्कर वर्मा' दोनो ने एक नया रूप दिया। १३ १४ वीं शताब्धी में रचित 'अनंतपुरवर्णनं' नामक कृति श्रेष्ट हैं। इसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन हैं। केरळ में संदेश काव्य के लिए अधिक महत्व है। १० वीं शताब्धी की उस रचना शुक संदेश है। कालिदास के मेघ सदेश के बाद यही कृति प्रशंसा योग्य है। यह कृति भावात्मक, आत्म निष्ठापूर्ण गीत हैं। वस्तुस्थिति का सहज भाव तथा कल्पना काव्य धर्म पालन करने में कवि समर्थ हुआ है। शब्द सौंदर्य, अर्थ चमत्कार आदि मनोहर हैं।

गायों के खुरपुट से उठनेवाली धूल , कालमेघ सदृश गोल बाल मनोहर मोरपंख धारण कर, पितांबर वस्त्र पहनकर वेणुनाद करते हुए आ रहा है। वह सुंदर नीलमेघ हम सब के हृदय का अपहरण कर रहा है। हमारे मन में वह दिव्य मूर्ति स्थिर हैं।

' कण्णश्श ' कवि शायद तीन होंगे । ये विद्वान तथा तत्वचिंतक भी थे । वे केवल श्रृंगार प्रधान कविताएं रचकर तृप्त नहीं हुए । उनकी जीवन दृष्टि स्पष्ट थी । उन्होंने भारतीय पुराणेतिहासों को अपनाया । उन महान् भंडार का आस्वादन कर कई कृतियों की रचनाएं करने लगे। रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थो के आधार पर रचनाएं हुई ।

' माधवफणिक्कर ' ने भगवद् गीता , शंकर पणिक्कर 'भारतमाला ' और ' रामफणिक्कर ' रामायण , भारत , भागवत , शिवरात्रो महात्म्यं आदि ग्रंथोंकी रचना की हैं । किंतु एळुत्तच्चन के साथ स्पर्धा नहीं कर सकते हैं ।

कण्णश्शा रामायण में वचन विन्यास , प्रौढ़ निरूपण , विशेष औचित्य , सुंदर मन मोहक पद विन्यास आदि हैं । तमिळ वृत्त और पद प्रयोग होने पर भी आजकल के लोगों को अच्छा हैं। कहीं–कहीं आकर्षक विवरण जन मन को मुग्ध करता है। रावण के अंतःपुर की स्त्रीयोंका श्रृंगार वर्णन तथा अशोक वाटिका में दुःखी म्लान वदना सीता जी के वर्णन में कवि अपना संपूर्ण नैपुण्य दिखाया है । यह एक अमर काव्य है ।

नाडन पाट्टुहळः—

कुछ अज्ञात प्रतिभावानों से रचित गीत ही नाडन पाट्टु है । ग्रामीण लोगों के 'पाणन पाट्टु' 'कुरुवर पाट्टु' 'ओणपाट्टु' इत्यादि केरळ के ग्रामीण जीवन के चित्र दिखाते हैं । खेत जोतते केरळ की स्त्रियां जिन गीतों को गाती थीं इनमें चैतन्य पूर्ण चित्रों का विवरण है । 'पुट्टु वन् पाट्टु' सर्पाराधन के गीत हैं । साँपों के चित्र लिख कर वहां सर्प पूजा के समय इन गीतों को गाते हैं 'पाणर पाट्टु' में शिव—पार्वति के वृत्तांत हैं ।

संधक्कळि पाट्टुः—

काली के आराधन के लिए गीत गाते है । उनमे कृषि पाट्टु, पुट्टुवउ पाट्टु, तेल्लन पाट्टु, पाणन पाट्टु आदि प्रमुख है । ये सब गीत नंबूद्रियों के आगमन से होनेवाली संमिश्रण संस्कृति का फल है । कई तरह के गीतों ने आज कल के साहित्य के लिए एक बडा भंडार का निर्माण किया है ।

वडक्कन पाट्टुः—

प्राचीन गीतों में केरळ के शौर्य प्रधान, गीत मुख्य है । इसे वे 'वडक्कन' पाट्टुहळ कहते है । उस समय जीवन के हर एक प्रश्न को युद्ध कौशल और शौर्य साहस से निश्चय करते थे ।

इनमे कुछ गीत तीसरी व चौथी शताब्दी की रचनाएं हैं । कुछ गीतों में आरोमल चेकवर' 'तच्चोळि ओतेनन' 'पालट्टु कोमनन्' आदि वीरों के तथा उण्णियार्च' 'माधवि' वीर तरुणियों की कहानियां हैं ।

इन गीतों में उस समय के सामाजिक जीवन चित्र भी प्रतिबिंबित हैं। उनमें उस समय के विवाह क्रम, सामाजिक आचार विचार, शिक्षण आदि के बारे में वर्णन हैं। इन वीर गीतों में ललित, गंभीर रस प्रति पादन आदि विशेषताएं दिखाई पड़ती है।

कुछ लोगों का विचार है कि ये गीत सोलवीं शताब्धी से पहले की नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उनकी शैली और छंद प्राचीन हैं। लेकिन तमिळ और संस्कृत से मिलकर कुछ फरक हुआ है।

तेक्कन पाट्टुकळ

तेंकण प्रदेश में भी एक तरह का गीत साहित्य प्रसिद्ध था। उनमें—'विल्लडिच्चानपाट्टु' हैं इस वीर रस प्रधान गीतों में 'कन्नडिवन पोर' 'अंजुत्तंबुरान पाट्टु' आदि प्रसिद्ध हैं। इन गीतों में मलयाळी भाषा का अस्तित्व होने पर भी केरळ में तमिळ का जो प्रभाव है वह अधिक दिखाई पड़ता है।

कृष्णगाथा—जानपद गीत

पंद्रहवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य से प्राप्त जनपद गीत प्रचार में था। यह गीत पहले मान्य लोगों से रचा गया था। आगे सुसंस्कृत विद्वान् लोग भी कृष्ण गाथा या कृष्ण पाट्टु की रचना करने लगे।

'चेरुश्शेरि' कृष्णगाथा कवियों में प्रसिद्ध था। वह केरळ का निवासी था। कृष्णगाथा की रचना में संस्कृत भाषा आवश्यक होने पर भी उसे पसंद नहीं था। श्रेष्ठ संस्कृत पंडित पुराणेतिहासों के ज्ञाता और आर्य संस्कृति के संबंध के लिए रचना करनेवाले कवि चेरुश्शेरी नंबूदिरी हैं।

इस कवि की कृतियों में आधुनिक काव्य लक्षण प्रप्रथम दिखाई पडते हैं। इनकी कृति सरल और ललित रचनायुत कृष्णगाथा है। कवि की सरल भावानुभूति वाचकों के हृदय को आकर्षित करता है। श्रीकृष्ण के बाल्य वर्णन बहुत ही रम्य है। मानों कवि छोटे बालकों के साथ नंद गोकुल में घूमता फिरता रहा हो यों उसका वर्णन मन को मुग्ध कर देता है।

वैसे ही जब अक्रूर नंद गोकुल में प्रवेश करता है तब श्रीकृष्ण की रासक्रीडा के वर्णन में कवि ने तादात्म्य पाया है। चाहे जैसा भी चित्र, कवि चेरुश्शेरी मानवीय भावनाओं के मधुर वर्णन करता है। कंस वध के बाद श्रीकृष्ण के कारागृह जाकर नंद गोप, यशोदा से आत्मीयता से मिलने का दृश्य अपूर्व है। वृद्ध यशोदा नंदगोप भार्गव तीर्थ में श्रीकृष्ण को देखकर पुत्र वात्सल्य से गद्गदित होते हैं। चेरुश्शेरी के वर्णन में काव्य नित्य नूतन दिखाई पड़ता है। कृष्ण गाथा के ऋतु वर्णन मनोहर व सुंदर हैं। हास्य सन्निवेशों को चेरुश्शेरी ने अच्छी तरह चित्रित किया है। चेरुश्शेरी की कविताएं उस समय की कृतियों से सुंदर तथा श्रेष्ठ हैं।

चंपु और मुकतक

मणिप्रवाळ संस्कृत तथा मलयालम की सम्मिश्रित भाषा है। केरळ के साहिती रोज-ब-रोज संस्कृत भाषा में रचना करने लगे। 'उण्णियच्चि चरितं और 'उण्णियाडि चरितं' जैसे संस्कृत की कृतियां भी पुराण विषयों की रचनाएं हैं।

मलयाळम् में अत्यधिक चंपू साहित्य हैं इनमे प्रमुख रचनाएं है। रामायण और महाभारत। रामायण चंपू, नैषध चंपू रावण विजयं, रुक्मिणी स्वयंवरं, कामदहनं इत्यादि पौराणिक कथाओं के आधार पर रचे गये हैं। चंपू काव्य कर्ताओं में 'पुनं नंबूदिरी' और मरि- मंगलं नंबूदिरी इन दो नामों का उल्लेख है। पुनं नंबूदिरि १५०० में कलि कोटि के सामूदिरिपाड़न के आस्थान कवि थे, पुनं नंबूदिरियों की कृतियों में रामायण चंपु प्रधान है। रावण के जन्म से होकर श्रीराम के स्वर्गारोहण तक कहानी २० भागों में विभाजित है। पुनं नंबूदिरी की कृति हृदयस्पर्शी विशिष्ट कृति है। सीता स्वयंवर के वर्णन में पद संयो- जनाएं, और सीताजी के चित्र अत्यंत कौशलयुत है।

दमयंती का शोक विचार भी अत्यंत गंभीर भाव से चित्रित हैं। 'रत्नावलीयं' 'कोडिय विरह' आदि कृतियां भी सुंदर है। इनके अलावा कई तरह की कृतियां हैं। इनमे 'चंद्रोत्सव' मात्र मिला है। यह पांच सर्ग और ५७०० श्लोकों की बृहत कृति हैं। इस काव्य की कहानी—मरकतमणि पहाड़ की तराईयों में एक किन्नर सुंदरी अपने प्रिय-

रम के साथ विहारकर रही है। उस वक्त एक तरह की सुगंधी आती है। उस गंध से आकर्षित युवती ने अपने पति को वह फूल लाने के लिए भेजती है वह गंधर्व फूल ढूंढते ढूंढते 'मेदिनी वेण्णालु' नाम की वेश्या के पास पहुंचता है। वहां वह वेश्या चंद्रोत्सव मना रही थी उस वक्त जिस दीप को जलाई थी उससे यह सुगंध फैली थी। गंधर्व वहां कुछ दिन रहा। उत्सव खतम होने पर अपनी प्रियतमा को चंद्रोत्सव के सारा विवरण सुनाया। काव्य में अपने देश के प्राकृतिक रमणीय दृश्य और सुंदरियों का वर्णन अत्यंत महत्व का है।

मुक्तक कविताएं प्रेम पात्र नायिकाओं के बारे में है। काव्य में भक्ति तत्त्व इस काव्य के प्रधान भाग कृष्ण गाथा, भारत गाथा, भागवतं पाट्टु इत्यादि बहुत प्रसिद्ध है।

नवीनयुग में एलुतच्छन—

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एलुतच्छन का प्रादुर्भाव हुआ। एलुतच्छन ने मणिप्रवाळ में उस समय जो संस्कृत मिश्रित था उसे गीतों के साथ मिलाने में कवि ने सफलता पायी है उस समय केरळ राज्य में हमेश परस्पर लडाई झगडा होता था। इससे सामाजिक क्षेत्र में बहुत बाधाएं पडी शिक्षा और सांस्कृतिक क्षेत्र में एक प्रतिभाशाली की आवश्यकता हुई। ऐसे समय में एलुतच्छन का प्रादुर्भाव एळतच्छन विद्वान वेद इतिहास के ज्ञाता थे। सब से ज्यादा वे एक तत्त्व ज्ञानी थे इस परिस्थिति में इनका ' रामचरित ' ने संजीविनि का कार्य किया। कण्णूशर ' चेरुश्शेरी 'आदि प्रभावशाली कवि थे। फिर भी उनमें एक साहित्याचार्य

की प्रतिभा नहीं थी। इसलिए जनता एलुतच्छन की कृतियों पर आकर्षित हुई।

जब मलयाळी साहित्य में शृंगार और रसिकता का बोल बाला था, उस समय 'ब्रह्मांड' जगत देश आदि के बारे में चिंतन ध्यान करने के मार्ग में ले गया।

सोलहवीं और सत्रवीं शताब्दी में भारतीय भाषाएं वैष्णव कवियों के काव्यों से भरी हुई थी। बंगाल में रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में भक्ति साहित्य प्रचार के लिए अधिक अवकाश प्राप्त हुआ।

अनेक जाति मत के कवि गणों ने वैष्णव काव्य की रचनाएं की कबीर, सूर और तुलसीदास आदि ने हिन्दी भाषा में भक्ति साहित्य की रचना की तुलसी दास का 'राम चरित मानस' उस समय के काव्यों में शिखर प्राय है। चैतन्य महाप्रभु के प्रचार से बंगाल में कृष्णाराधन को अधिक शक्ति मिली। कन्नड़ भाषा में पुरंदर दास, कनकदास आदि ने कीर्तनों का रचना की।

मलयाळ में 'रामचरित' के जैसा भक्ति साहित्य का आविर्भाव हुआ। किंतु एलुतच्छन के समय में अधिक प्रचार में आया। सामान्य जनता भी भाव विभोर होकर भक्ति से गीत गाने लगी भक्ति में एलुतच्छन तुलसीदास जयदेव के समान हैं। प्रत्येक कांड के प्रारंभ में श्रीराम और श्रीकृष्ण की कहानी को सुनाने के लिए तोते से प्रार्थना करते हैं।

हे शुक तरुणी, तुम अपने वंश के सर्व श्रेष्ठ हो! तुम श्रीकृष्ण लीलामृत गाओ। मेरे अंतर्निहित दुःख दूर करने के लिए इससे उत्तम

दिव्यौषध दूसरा नही है। इस कृति में एक भक्त का आत्म निवेधन प्रतिबिंबित हैं। जहां-तहां श्रीराम या श्रीकृष्ण का नामोच्चारण आता है। वहां एलुत्तच्छन एक शब्दमणि मोहन माला को ही निर्माण करते हैं। उनकी आकाक्षाए भक्त का प्रेम ही है। भगवान् का वर्णन करते—करते कवि उसी में डूब जाता है। महाभारत के कर्ण पर्व में पार्थसाथी श्रीकृष्ण के विश्व रूप में अपने ह्रद्गत भावनाओं का ही वर्णन किया है।

श्रीकृष्ण का एक मन मोहक वर्णन—

घुंघराले काले-काले घने बालों पर सुंदर चमकोले मोर पुच्छ को पिरो कर ललाट पर मोती को भांति श्रम कण तिलक की शोभा दे रही है। इस संसार के सृष्टि-स्थिति लय के कर्ता, इनकी भौहें। आहा! रथारूढ श्रीकृष्ण के पाद पद्म मेरे हृदय मंदिर में विराज रहा है, उस अर्जुन के साथ-साथ उन्हें और कुछ समय देखूं। कवि भाव विभोर होकर अपने आप वर्णन कर रहा है।

आध्यात्म रामायण और माहाभारत :—

आगे सर्दार के एम. फणिक्कर की चारित्रिक कृतियां हैं।
१. 'पुणरकाट्टु स्वरूपं, २. 'परंगि पडयालि ३. 'धुमकेतु और उदयं हैं। इस तरह चार कृतियां तथा 'कल्याणमल' नाम के भारत के चरित्र एक कृति कुल पांच कृतियां फणिक्कर की कृतियां हैं।

आगे कई लेखक और उपन्यासक हुए। छोटी कहानी और नाटकों की रचना भी हुई। ११ वीं सदी के उत्तरार्ध में दो कवियों ने प्रसिद्धि पायी।' वेणमणि अच्छन' और 'वेणमणि मगन' ये दोनों नंबूदिरी हैं।

वेणमणि जीने बहुत सुंदर कविताएँ रची हैं। उनमें 'काळमेघ बालकृष्ण घूमते फिरते थक कर माँ की गोद में आ पड़ा। हाथ में मुरली है। मां के पास दूध पीने के लिए छट-पटाता है। मां-बच्चे के आनंद से स्वयं अत्यंत खुश होती है। वात्सल्य की सीमा है।

१९१० में 'वळ्ळतोळ' नाम के कवि प्रख्यात हुए। उन्होंने उषा-अनिरुद्ध की कहानी को अत्यंत सुंदर ढंग से वर्णन किया है वळ्ळतोळ जी ने छोटी-छोटी कविताओं की रचना भी की है। 'पुराणंगळ' नाम के काव्य में भारत के ऋषि-मुनियों के विचार लिखे हैं। उस समय के ऋषि-मुनि योग निरत थे। आत्मत्यागी थे। ऋषि गण पर्ण कुटीर में रहते थे। उन ऋषियों ने तपस्या से अमूल्य निधियों को पाया था। काव्य माता को सुखासन से अधिक कुशाशन ही प्रिय था। वळ्ळतोळ जी ने कई रचनाएँ की हैं।

वळ्ळतोळ ने देशभक्ति भरित काव्य, गाँधी जी के स्वराज्य सत्याग्रह आदि का वर्णन सुंदर ढंग से किया है। साथ बालकृष्ण के एक एक चित्र को भक्ति पारम्प्र से चित्रित किया हैं।' भक्तियुं विभक्तियुं' काव्य में गुरुवायूर भगवान् के दीपाराधन के दर्शन के बारे में दिव्यानुभव का चित्रण भक्तों को परमानंद देता है। वळ्ळतोळर जी पाश्चात्य काव्य से भी प्रभावित थे। उनकी कृतियों में पाश्चात्य काव्य संप्रदाय का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।

मलयाळी भाषा में जानपद गीत का भी प्रचार था।

'लाली गीत' 'कल्याण कळिगळ' 'वाशिल तिरुप्पार पाट्टु' आदि गीत प्रचलित थे। महाबलि अहंकार से सब को कष्ट दे रहा था।

उस वक्त त्रिविक्रम ने महाबलि को पाताळ लोक तक दबाया। तिरुवादिरै गीतों को सातदिन तक गाते हैं। अलावा इसके रामायण और महाभारत जैसे पुराण की कहानियों के गीत भी गाते हैं। १. तुयिल उन्नारत्ताल तथा २. तंपिट उल्लाळ आदि गीत भी पुराणो की कहानियाँ ही हैं।

कुरुवपाट्टु—मंत्र माया से संबंधित है।

निळल कुत्तुप्पाट्टु—यह गीत महाभारत की कथा से लिया है। दुर्योधन पांडवों की बुराई करने के लिए कुरुवों से बुराई करने के लिए कहता है। किंतु कुरुव लोग पांडवों से प्यार करते हैं। अतः वे उन्हें कोई बुराई नहीं करते हैं।

मलयाळी लोग बिजली, बादल, प्रवाह, ज्वालामुखि को भी भगवान् ही समझ कर उन पर गीत गाते हैं।

सर्पपाट्टु—जंगलों में रहनेवाले सांप पर गीत गाते हैं। मलयाळी लोग अग्नि पूजा करते हैं अतः 'तीपाट्टु' गाते हैं। 'कुड्डियाट्ट पाट्टु' मततत्त्व के गीत।

'पुलवन पाट्टु' बच्चों के दीठ लगाने पर यह गीत गाकर दीठ उतारते है।

'संघकळि पाट्टु' खुशी के समय पर यह गीत गाते हैं।

'शादी–विवाह' आदि मंगळ, में गाते है।

'कृषिगीत' बीज बोते वक्त गाते हैं।

बल्लाड—नायक के बारे में चरित्राई और धार्मिक गीत गाते हैं।

ये वीर रणरंग में कभी नहीं हारते। जैसे पुरुष वर्ग वीर थे, स्त्रियां भी अपने शौर्य साहस के लिए प्रसिद्ध हैं।

रामचरितं-गीत के रूप में है। मलयाळ की प्रथम कृति लीला तिलक' है। शायद १९१० की कृति होगी।

कुछ नालत्र में भी रचना की गयी है। सांबशिव शास्त्री ने कंबन की रामायण से प्रेरणा पायी है। परमेश्वर अय्यर ने भी एक रामायण की रचना की है। कन्नशन ने तमिल से मलयाळम में गीत रचा। कन्नशन रामायण मुख्य है। इसका लेखक-राम फणिकर है।

भगवद्गीता—माधवन फणिकर ने भगवद्गीता को छे सौ वर्ष पहले लिखा था। इन्होंने ही प्रथम मलयाळी भाषा में भगवद्गीता की रचना की। वह इस एक कृति से ही प्रसिद्ध हो गया। वह ७०० गीतों के बदले ३५० गीत ही रचा। शंकर फणिकर ने 'भारतमाला' और 'भागवत' के दशमस्कंद रचा। महाभारत के चरित्र को २८०० पंक्तियों में लिखा हैं। रामफणिक्कर रामायण लिखकर प्रसिद्ध कवि हुए। इन्होंने भागवतम् और महाभारत भी रचा है। नारायण फणिकर भी 'सावित्री महात्म्य' के अलावा उनकी सारी रचना विष्णु पर ही है। किंतु एक मात्र 'शिवरात्री महात्म्य' भी रचा है।

कृष्णगाथा

'चरुमेरी नंबूदिरी 'और 'पूनम नंबूदिरी ' दोनों कृष्णगाथा रचते थे। रचयिता के बारे में विवाद है। यह ग्रंथ कृष्ण जन्म से लेकर परंधाम जाने तक भागवत का किया है। अनुवाद करते हुए मूल कृति की कोई न्यूनता नहीं हुई है किंतु और भी प्रकाश प्राप्त हुआ है। यह चरुसेरा नंबूदिरो एक भक्त और वेदांती है। इन पांच सौ साल से मलयाळी भाषा में कृष्णगाथा पर अधिक नहीं लिखा गया है।

भारतगाथा — में गोपी सोचती है कि जाब में मुर्गा बांगता है। तब श्रीकृष्ण चला जायगा।

और एक जगह में अर्जुन और सुभद्रा प्यार करते हैं। जब सुभद्रा अर्जुन को भोजन देती है तब अर्जुन उस भोजन को सुभद्रा को ही खिलाता है। वह अपने प्रेमी को केले देते वक्त फलको फेंककर छिलके को देती है लेकिन अर्जुन उस छिलके को ही रखा लेता है।

कवि वर्णन करता है कि श्रीकृष्ण का बंशी –निनाद सुनकर गोपियों के वस्त्र ढ़ीले पड गये।

भारत रचनाकार कौन है? 'बालकृष्ण नायर ' था पी. के नारायण पिळ्ळे।

अभिप्राय है कि कृष्णगाथा की भाषा, शैली अच्छे है किंतु 'भारतगाथा ' की भाषा ; शैली अच्छे नहीं है।

इन सब में ' एळुतच्छन की कृति हीं सर्व श्रेष्ठ है। वह पढ़ा—लिखा था। साहित्य का अध्ययन किया था। इनकी कृति परंपरा के लिए मार्ग दर्शन है।

वीर केरळवर्मा—ने ' रामायण किळी पाट्टु ' लिखा है। इनकी कृतिसत्रहवीं सदी की हैं।

श्रीमन्नारायणीयम्

' भगवान की महिमा का वर्णन '

लोग अज्ञान वश कुछ क्षुद्र देवताओं की पूजा करते हैं। किंतु हमने इस अज्ञान से निवृत्त होकर गुरुवायूर के स्वामी श्री कृष्ण का आश्रय किया हैं। अत्यंत परिशुद्ध सत्वगुण रूपी भगवान की कृपा हम पर है। हे ! पूर्ण स्वरूपी ! हे विष्णु ! हे वैकुंठवासी !

आप जल भरित बादल के समान सुंदर , कायां पुष्प के समान है। ध्यान करनेवालों के हृदय में ब्रह्मानंद की लहरें उठती हैं। हे कृष्ण ! आपकी लीला को मैं नहीं समझ सका।

हे श्रीकृष्ण ! समस्त लोग प्राप्त करनेवाला मोक्ष साम्राज्य स्वयं आप हीं है। जो आपके ध्यान कर प्रणाम करते हैं उनके सामने स्वयं आप प्रत्यक्ष हैं। करुणा से द्रवित आप अपने शौर्य , धैर्य आदि गुणों से सब की रक्षा करते हैं। महालक्ष्मी देवी सर्वदा आपके हृदय में स्थित हैं। आप षाड्गुण्य परिपूर्ण हैं।

भगवद्रूप वर्णन

' केयूराङ्गदकङ्कणोत्तम महा रत्नांगुलीयाङ्कित
श्रीमद्बाहु चतुष्कसङ्गत गदाङ्खरिरङ्केरुहाम् ।
किंचित् कानेन कानेन लस पीनांबरालम्बिनी—
मालम्बे विपलाम्बुज द्युतिपदां मूर्तिं तवार्तिंच्छिदम् ॥

विराट स्वरूप ही जगत् है ।

आप चौदह लोकों में व्याप्त है । हे प्रभु ! ईशा ! जगत के आप मूल कारण हैं । आप के सृष्ट्यादि कार्य स्तुत्य है । हे स्वयं प्रकाश ! कमल नयन ! इस संसार आपका लीला स्थल है ।

ब्रह्मदेव ने हजारों साल तपस्या की । आपकी आराधना भी की है । उसके फल स्वरूप आपने ब्रह्मदेव को जो लोक दिया वह माया रहित रहता है , जहां दुःख , शोक ,क्रोध तथा अज्ञान नहीं रहता है । उस लोक को दिखाया । उसके बाद श्रीवैंकुंठ मे सहस्रज्योति स्वरूपिणी महा लक्ष्मी को दिखाया । हे श्रीकृष्ण ! मुझे भी ऐसे स्थान में ले जाइएगा । ब्रह्मदेव ने इन विराट रूप को देखकर जिस आनंद को पाया वही आनंद मुझे भी प्राप्त हो । चतुर्मुख ब्रह्मा को आपने सृष्टि कार्य सौंपा चतु-र्मुख ब्रह्मा ने सहस्र चतुर्युग दिन और सहस्र चतुर्युग रात बितायी । उसके बाद सारी सृष्टि के साथ आप में विलीन हो गया ।

उसी वक्त प्रलय हो गया । हे भगवान् ! उस वक्त आपकी नाभी से एक दिव्य कमल बाहर निकला । उस कमल पुष्प की कांति

चारों ओर फैला। उस प्रकाश से सारे जगत का अंधकार दूर हो गया। उस कमल में आपकी योग शक्ति से समस्त वेद राशि के साथ ' पद्मजन ' नाम के चतुर्मुख का पुनः प्रादुर्भाव हुआ। उन्होने अपने चार मुखों के अष्ट नेत्रों से चारों तरफ देखा। किंतु उन्हें कुछ नहीं दिखाई पडा आपके दर्शन भी नहिं हुए। केवल वह अकेला था।

आगे एक सौ साल तपस्या करने के बाद उनके
अंतः चक्षु को भगवान् श्रीमन्नारायण दिखाई पडा।

ब्रह्मा ने देखा कि उपनिषदों में वर्णित अपार वैभव के साथ आपका साक्षात्कार पाया। उस वक्त चतुर्मुख ने ब्रह्मानंद प्राप्त किया तथा आपको कई तरह से स्तोत्र किया। आप ने उस वक्त चतुर्मुख को अनेक तरह की शक्ति देकर पुनः तपस्या करने के लिए भेजा। हे प्रभु ! आपकी कृपा से ही ब्रह्मा जी तीनों लोकों की सृष्टि करने में समर्थ हुए।

चतुर्मुख ब्रह्मा ने पाँचविध मनो विकारों की सृष्टि की उसके बाद मानसिक शक्ति से सनक,सनंद , सनत्कुमार और सनत्सुजाता नाम के मुनियों की सृष्टि की। आगे ब्रह्मा के भौंहों के सिकुडन से रुद्र उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा के चारों मुखों से चार वेद उत्पन्न हुए। सनक, सनंदादि मुनिगण श्री वैकुंठ में भगवान् के दर्शन के लिए गए। उस समय द्वार-पालक जय-विजय ने उन्हें रोका। उन ऋषियों से शापग्रस्थ होकर वे दोनों भूलोक में पैदा हुए , हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु नाम से। हिरण्याक्ष भूमाता को समुद्र के अंदर ले गया। उस वक्त भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर भूमि की रक्षा की।

ब्रह्मपुत्र दक्षप्रजापति ने स्वायंभुव मनु की पुत्री से १६ पुत्रियों को पाया। उनमें धर्मदेव की पत्नि मूर्ति ने नर के मित्र नारायण को जन्म दिया। नारायण ने अनेक राक्षसों को दण्ड दिया। उनमें सहस्र कवच नाम के राक्षस के सारे कवच नाश कर एक मात्र कवच में छोड़ा। उसके बाद नारायण बदरिकाश्रम में ठहरा।

श्रीमन्नारायणीय में ध्रुव चरित्र का विवरण भी है। अजामिलोपाख्यान में — अजमिल ने पूर्व पुण्य बल से अपने पुत्र का नाम नारायण रखा। जब मृत्यु का समय हुआ तब उसने अपने पुत्र का नाम पुकारा। भगवान् ने समझा कि भक्त पुकार रहा है। तुरंत भगवान् अपने दूतों के द्वारा उसे बुलाया।

प्रह्लाद चरित्र — जब हिरण्याक्ष मर गया तब उसका भाई हिरण्यकशिपु आपसे द्वेष करने लगा। आपको मार डालने के लिए चौदह लोकों में ढूंढा। उसका पुत्र जन्मतः आपका भक्त है। भगवान् नारायण के भक्त होने के कारण बालक प्रह्लाद ने बहुत कष्ट झेला। आखिर भक्त की रक्षा करने केलिए आप खंबे से निकलकर हिरण्कशिपु का वध किया।

'दैत्ये दिक्षु विसृष्ट चक्षुषि महासंरंभिणि स्तंभतः
संभूतं नमृगात्मकं नमनुजाकारं वपुस्ते विभो।

हिरण्यकशिपु के वध के बाद भक्त प्रह्लाद आपका स्तोत्र कर आपको शांत किया।

गजेंद्र चरित्र

शापग्रस्थ मगर को मार कर गजेंद्र की रक्षा की। सब लोग इस गजेंद्र चरित्र को श्रद्धा से स्मरण करते हैं। संसार मगर है। उससे विमुक्त होने के लिए भगवान् का आश्रय पाना अत्यावश्यक है। गजेंद्र ने कई साल भगवान् की प्रार्थना कर शाप विमुक्त हुआ।

श्रीमन्नारायणीय में अमृत मथन का वर्णन

वासुकी को रस्सी बना कर देव-दानव दोनों ने अमृत मंथन किया। उस वक्त कामधेनु, कल्प वृक्ष इत्यादि वस्तुओं के साथ महा लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ। आप ने उस सुंदर सुकोमल लक्ष्मी को स्वीकार किया है। उसके बाद समुद्र से निकले हुए असुन को धन्वंतरी रूपी आप ऊपर लाये। असुर उस अमृत कलश को ले गया। तब आप ने मोहिनि का अवतार लिए। महादेव रुद्र भी मोहिनी के सौंदर्य से भ्रमित हुआ था। कुछ समय के बाद उसे मालूम हुआ कि आप भगवान् विष्णु हैं।

वामनावतार

कश्यप और अदिति के पुत्र महाविष्णु हैं। अदिति ने बहुत भक्ति से आपकी प्रार्थना की। उस वक्त आप ने वर दे दिया कि आपका पुत्र होकर जन्म लूगा। श्रवण नक्षत्र में आप ने जन्म लिया।

महाबलि के गर्व भंग करने के लिए वामन रूप धारण किया। महाबलि अश्व मेध याग कर रहा था। उस यागशाला में ब्रह्मचारी के रूप में जाकर तीन पग भूमि की याचना की। आपका तेज और सौंदर्य देखकर वह मुग्ध हो गया। गुरु शुक्राचार्य के रोकने पर भी बलि भूमि दान देनेके लिए सिद्ध हो गया। वामन ब्रह्मचारी ने त्रिवि-

क्रमावतार रूप धारण किया। दो पग से भूलोक और देवलोक नापा। तीसरे पग के लिए जगह नहीं थी तब वलि अपने याग को समाप्त कर पाताल लोक चला गया।

मत्स्यावतार

मत्स्य रूप धारण कर आपने वेदों की रक्षा की।

अंबरीषोपाख्यान

अंबरीष महाराज परम भक्त था। वह दान धर्म में निरत होकर द्वादशी व्रत करता था। एक द्वादशी के दिन दूर्वास ऋषि उनके यहाँ आया। अंबरीश महाराजा ने उसको भोजन के लिए निमंत्रण दिया। दूर्वासमुनि नित्य नैमत्तिक कार्य करने नदी किनारे गया द्वादशी व्रत खतम हो गया, किंतु ऋषि नहीं लौटा। जब समय हो गया तो व्रत पालन के लिए राजा ने आपोशन लिया। ज्ञानी दुर्वास ने समझ लिया कि राजा ने अतिथि सत्कार के पहले भोजन पूरा कर दिया। क्रुद्ध दूर्वास ने एक दुर्देवता की सृष्टि कर अंबरीश के पास भेजा। भगवान् के भक्त अंबरीश को सुदर्शन चक्र मिली। आखिर दूर्वास ऋषि अंबरीश की भक्ति पर प्रसन्न हुए।

रामायण की पूरी कथा का वर्णन है। उसके बाद परशुराम वृत्तांत है। परशुराम के शौर्य-धैर्य-साहस और तपस्या का विवरण है।

श्री कृष्णावतार के कारण

'सान्द्रानन्दतनो हरे ननु पुरा दैवासुरे सङ्गरे
त्वत्कृत्ता अपि कर्म शेष वशतो ये ते न यता गतिम्।
तेषां भूतलजन्मनां दितिभुवां भारेण दूरार्दिता
भूमिः प्राप विरिञ्चमाश्रितपदं देवैः पुरैयागते ॥'

हे पूर्णानंद स्वरूपी कृष्ण! पुराने जमाने में देवासुर युद्ध में मारे गए लोगों ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया था। जब उन असुर गणों ने भूलोक में जन्म लिया उनके अधर्म से भूमाता बहुत दुःखी हुई थी। अतः चतुर्मुख ब्रह्मा से और आप से दुःख निवृति के लिए प्रार्थना की।

भगवान् ने उनका कष्ट दूर करने के लिए षोड़शकला पूर्ण यदुकुल में अवतार किया। देव और देवियाँ भी कृष्ण कुल में पैदा हुए।

वासुदेव और देवकी के विवाह के समय जो अशरीरवाणी कंस को सुनाई पड़ी थी उससे भयग्रस्त कंस ने देवकी को कारागृह में रखा। जब उसे शिशु पैदा होता था उसकी हत्या कर लेता था। जब सातवां शिशु आदिशेष का अंश था तब योगमाया ने उस गर्भस्थ शिशु को रोहिणी के पास छोड़ दी। उसके बाद आठवां शिशु श्रीकृष्ण परमात्मा है।

'बालम्भ्पृशाऽपि वपुषा दधुषा विभूतिरुद्यत्किरीटकटकाङ्ग
शङ्खारिवारिज गदा परि भासितेन मेघासितेन [दहारभासा]
परि लेसिथ सूतिगेहे ॥

जब अपने अवतार शिशु रूप में करने पर भी किरीट कुण्डल अनेक दिव्याभरणों के साथ शंख-चक्र का भी धारण किया था। नील मेघ श्याम, अत्यंत सुंदर रूप से मात-पिता को हर्ष दिया। हे श्रीकृष्ण, आप स्वयं प्रकाश हैं। आपको देखकर देवकी और वासुदेव के आनंद की सीमा नहीं थी। आपकी आज्ञा से वासुदेव जी आपको नंदगोप के गृह में छोड़ने के लिए निकले। आदिशेष जी उस वर्षा के समय आपके ऊपर छतरी कि जैसे ठहरे थे। बिना रुकावट के आपको वासुदेव नंदगोप के गृह ले गए।

पूतनावध

जब श्रीकृष्ण-जन्म का वृत्तांत सारी जगह फैला तब वासुदेव नंदगोप के यहाँ गए। उससे कंस का विचार बताया नंदगोप को गोकुल में जाकर रहने की सलाह दी। नंदगोप भी सपरिवार गोकुल में बसा।

एक दिन पूतना नाम की राक्षसी सुंदर रूप धर कर शिशु श्रीकृष्ण को स्तन्य पान कराने लगी। कृष्ण सर्वांतर्यामि हैं। उस असुर स्त्री का विचार समझकर दूध पीने के बहाने उसके प्राण हरण कर लिये। भगवान् दुष्टों को दण्ड देने में आगे पीछे नहीं देखेंगे। प्राण निकल जाने पर पूतना अपने निजी रूप में नीचे गिर पड़ी। उस शब्द को सुनकर घर भर के लोग दौड़े आये। किंतु कृष्ण परमात्मा उस मृत देह पर खेल रहा था नंदगोप—यशोदा बच्चे को तुरंत उठा ले गए। हे परमात्मा गुरुवायूर के नित्य निवासी, हे श्री कृष्ण आपकी लीला अद्भुत है

' शकटासुर वध '

श्रीकृष्ण का जन्म दिन था उस दिन यशोदा माता ने बच्चे को एक गाड़ी के पास झूले में सुलाकर काम काज में लग गयी। कृष्ण जयंती के होने से सारे गोकुलवासी भोजन के लिए नंदगोप के घर में आनेवाले थे। किंतु इतने में कंस से प्रेरित एक असुर कृष्ण शिशु को मार डालने के लिए आ गया। जब राक्षस आपके पास आया तब आपने रोने के बहाने, पांव से लात मार-मार;कर उसे मार डाला। वहां एक जोर का शब्द हुआ। सब के सब स्त्री--पुरुष भय से भाग आये। सब के दिल धड़कने लगे कि बच्चे की हालत कैसी है! सब गोप और गोपीजन ने आप के कमल सदृश हाथ-पांव को सहलाकर देखा कि कहीं चोट तो नहीं लगी है। जन्म दिन का आया कष्ट-परिहार हो गया सब लोग खा-पीकर बच्चे को मंगळाशीर्वाद देकर चले गए।

' तृणावृत्त का वध '

एक दिन तृणावृत्त श्रीकृष्ण को उठाकर चला गया। माता यशोदा बच्चे को ढूंढने लगी। लेकिन कहीं दिखाई नहीं पड़ा यशोदा और अन्य गोकुलवासी रो-रोकर थक गये।

आखिर ज़ोर की आंधी और तूफान के कारण कुछ नहीं दिखाई पड़ता था।

वह असुर तृणावृत्त श्रीकृष्ण के बोझ नहीं उठा सका। श्रीकृष्ण उसे बहुत ऊपर आसमान में उठा ले गया। वहाँ से नीचे धकेल कर मार डाला।

'रोदाकुलास्तदनु गोप गणा वहिष्ठ पावाण पृष्ठभुवि
देह मति रुथाविष्टम ।
प्रैक्षन्त हन्त निपतन्त ममुष्य वक्षष्य क्षीणमेव च
भवन्तमल हसन्तम् ॥

दुःखी गोकुलवासी चट्टान पर पड़े असुर को और उसके ऊपर हंसते-खेलते श्रीकृष्ण को देखकर आश्चर्य चकित हुए। पहाड़ के ऊपर रहनेवाले नीलरत्न के समान श्रीकृष्ण को गोप लोग खुशी से उठा ले गये।

'आधानमंबुज करेण भवन्तमेत्य गोपा दधुगिरि—
बरादिव नील रत्नम् ॥'

इस तरह कंस प्रेरित तृणावृत्त का वध हुआ।

श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार

गार्ग्यऋषि ने नंदगोप के घर आकर वसुदेव के संदेश सुनाया। यदुवंश के गुरु गार्ग्यऋषि ने रहस्य रीति से श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार कराया। सहस्र नामयुत श्री कृष्णको कौन सा नया नाम रखेंगे ?

फिर भी ऋषि ने कहा कि 'कृषि' धातु, 'ण' कार युत 'सत्' 'आनंदम' जैसे रहनेवाले शिशु को जीव राशियो के पाप को दूर करने वाला नाम 'श्रीकृष्ण' रखा साथ-साथ वासुदेव इत्यादि नामों की महिमा को भी बताया। श्रीकृष्ण के अग्रज को बलराम नाम रखा। गार्ग्यमुनि ने शिशु की श्रेष्ठता और महिमा का वर्णन निम्न प्रकार किया कि—

'जेष्यति बहुतर दैत्यान्नेष्यति निजबन्धु लोकममल पदम्।
श्रोष्यति सुविमल कीर्तिरस्येति भवद्विभूतिमृषिरुचे ॥

कई असुरों को तीरता है। अपने बंधु-बांधवों को मुक्ति प्रदान करेगा। इस शिशु की कीर्ति को लोग हज़ारों सालों तक सुनेंगे।

बालक्रीड़ा वर्णन

श्रीकृष्ण और बलराम दोनों घर-भर में घुटने के बल चलने-फिरने लगे। बच्चों का सौंदर्य सब को आकर्षित करता था। पादों में शंख चक्र, कमल हाथों में कई तरह के गहने पहनकर श्रीकृष्ण सब का मन-मोहक था। बार-बार माता यशोदा आपको दूध पिलाकर खुश होती थी। जब आपको भूख नहीं तब हंसते-खेलते माता को खुश करते थे। गोकुल के सारे गोप जन श्रीकृष्ण को प्यार करते थे। ग्वालबाल सभी श्रीकृष्ण के साथ मिलजुलकर खेलते थे।

गोपिकाएं श्रीकृष्ण को मक्खन और दूध देकर खुश होती थीं। श्रीकृष्ण भी आपको मधुर मंद हास से उन्हें संतुष्ट करते थे।

एक बार महाविष्णु वामनबटु के वेश में महाबलि की यागशाला गये। राजाबलि तेजस्वी ब्रह्मचारी को देखकर खुशी से दान देने के लिए आगे बढ़ा। गुरु शुक्राचार्य के रोकने पर भी न रुका। श्रीकृष्ण ने कहा कि पिछली बार दान मांगना मुझे अच्छा न लगा। किंतु आज कल मैं बिना पूछे दूध—मक्खन ले लेता हूँ।

श्रीकृष्ण बालकों के साथ खेलते-खेलते मिट्टी खाने की शिकायत में पकड़ा गया। माता यशोदा ने उसके मुँह में देखा तो सातों लोक दिखाई पड़े। यशोदा इस अद्भुत दृश्य को देख कर घबरा गयी। मिट्टी

खान के बारे में दण्ड देना चाहती थी, किंतु वात्सल्यातिशय के कारण कुछ नहीं कर पायी; बच्चे के मुँह में समुद्रा, बादल, जंगल इत्यादि विविध दृश्यों को देखकर वह चुप हो गयी उस वक्त श्रीकृष्ण माता से दूध मांगने लगा। यशोदा बच्चे के दूध मांगने पर वास्तविक दुनियां में लौटी।

'ओखली में बांधना'

एक दिन दही मथन करती हुई माता से श्रीकृष्ण दूध पीने के लिए तंग करने लगा। कुछ समय दूध पीते हँसते-खेलने रहनेवाले बच्चे को यशोदा देखती आनंदित हुई। इतने में यशोदा उबलते हुए दूध को उठाने चली गयी। उस वक्त श्रीकृष्ण को बहुत क्रोध आ गया तुरंत उस दधी के भाड़े को तोड़ दिया। सारा दही ज़मीन पर गिर पड़ा। हे भगवान्! आपका खेल कितना अद्भुत है? दधी को गिरा कर श्रीकृष्ण खेलने के लिए चला गया। यशोदा अत्यंत क्रोधित हुई। बच्चे को ढूढते-ढूंढते थक गयी।

आखिर श्रीकृष्ण अपने साथियों को मक्खन देने के लिए ओखली के ऊपर चढ़ा। छींकों पर रहनेवाले मक्खन को निकाल कर सब खाने लगे। यह देख कर माता का क्रोध और भड़क उठा।

यशोदा ने एक रस्सी लाकर श्रीकृष्ण को बांधना चाहा। जो ऋषि-मुनि, वेद-इतिहास पुराणादि में आप सर्वेश्वर को ढूंढते है. ऐसे महा प्रभु माता के हाथ से ओखली में बांधा गया। माता ने कहा कि हे दुष्ट! तुम इस ओखली में कुछ देर बंधित रहो। नारायण भट्ट तिरी जी कहते हैं कि हे जगदीश! आप क्यों माता की रस्सी से बांधे गए? देवता इस

दृश्य से अत्यंत संतुष्ट हुए। आपको 'दामोदर' कह स्तोत्र करने लगे। उस वक्त श्रीकृष्ण ने सामने दो वृक्षों को देखा। आप उन वृक्षों के बीच में ओखली को घसीटते लाया। दोनों पेड़ एक साथ गिर पड़े। दोनों वृक्षों से दो यक्ष आकर श्रीकृष्ण को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। हे गोविंद! आप सर्व रक्षक है आपने हमारे शाप विमोचन किया। यह सब दृश्य देखकर गोप बालक आश्चर्य चकित हुए। इतने में पेड़ गिरने का शब्द सुनकर यशोदा और नंदगोप भाग आये। यह दृश्य देखकर वे बच्चे को डीठ उतारी। सारे गोकुलवासी नंदगोप के घर में जमा हो गए। अपने प्रिय श्रीकृष्ण को क्या हो गया! यशोदा बच्चे को ओखली में बांधने के लिए पछताने लगी। घर का काम-काज छोड़कर बच्चे को गोद में उठाया।

वृन्दावन निर्गमन

गोकुल में रहते कई तरह के कष्ट प्राप्त हुए। गोपवृद्धों नें सोचा कि दुष्ट ग्रहों से ही ऐसा कष्ट प्राप्त हो रहा है, अतः यहाँ से दूसरी जगह चला जानकना ही ठीक है। इस तरह सोच-विचार कर सब के सब वृन्दावन चले गए।

श्रीकृष्ण के साथ उसकी मधुर बातें सुनते वृन्दावन पहुँचे। उस वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा बहुत सुंदर थी। यमुना नदी की सुंदरता से गोप लोगों को बड़ी खुशी हुई। छोटे-छोटे गाय के बछड़ों को जंगल में ले जानें के लिए ग्वाल बालकों के साथ श्रीकृष्ण भी तैयार हो गए। इस समय आप हाथ में छड़ी, मुरली इत्यादि वस्तुओं से सज-धज कर निकले।

'विहिन जगतीरक्षं लक्ष्मीकरांबुज ललितं
ददति चरण द्वन्द्वं बृन्दावने त्वयि पावने।
किमिव न बभौ शम्पत्यम्पूरितं तरुवल्लरी
सलिलध रणी गोत्र क्षेत्रादिकं कमलापते ॥'

हे लक्ष्मीकांत ! इस पवित्र बृन्दावन में विराजकर जगत की रक्षा की। आपके रहते यहाँ के पेड़-पौधे नदी सरोवर आदि अत्यंत मन मोहक हैं।

यमुना नदी के किनारे, गोवर्धन पर्वत की तराइयों में बछड़ो को चराते-चराते मुरली बजा रहे थे। उस समय एक राक्षस बछड़े का रूप धर कर उसकी भीड़ में घुसा। उसे देखकर श्रीकृष्ण ने तुरंत उस असुर को पकड़ कर ऊपर फेंक दिया। इतने ऊपर से गिरने के कारण राक्षस मर गया। देवताओं की खुशी की सीमा नहीं थी। उन सब ने आप पर वृष्टि की।

कुछ दिन बाद गोप बालकों के साथ श्रीकृष्ण भी पानी पीने के लिए नदी के पास गया। वहाँ एक असुर बक रूप धारण कर आया था। उसने श्रीकृष्ण को निगल दिया किंतु उसके पेट में आप ठहर नहीं सके उस असुर ने वमन किया। आपने तुरंत उस बकासुर की चोंच को पकड़ कर दो भाग कर दिया। वह तुरंत मर गया।

'ललित मुरली नादं दूरान्निशम्य वधू जनै
स्त्वरित मुप गम्यारादारूढ मोद मुदीक्षितः।
जनित जननी नन्दानन्दः समीरण मन्दिर
प्रथित बसते शौरे दूरी कुरुष्व ममामयान् ॥'

श्रीकृष्ण ने कुछ ही दिन में अघासुर नाम के राक्षस का वध किया। अपने साथियों की रक्षा की।

'ब्रह्मदेव ने बछड़ों को चोरी की।'

जब एक भी बछड़ा दिखाई नहीं पड़ा तब गोप बालक रोने लगे। तब श्रीकृष्ण बछड़ों को ढूढ़ने निकले। इसी समय चतुर्मुख ने गोप बालकों को भी चुराया। श्रीकृष्ण ने देखा कि गो गण और गोप बालक दोनों नहीं हैं। उसे मालूम हो गया कि यह सब ब्रह्मदेव की ही करतूत है। श्री कृष्ण ने एक समय में उन सब का रूप धारण कर लिया, कुछ समय जगल में घुम कर शाम को श्रीकृष्ण रूपि गो-गोप बालक घर लौटे। गोप और गोपिकाएँ आपको ही अपने बच्चे जैसा प्यार किया। भगवान् की लीला अत्याश्चर्यकर है!

एक साल के बाद ब्रह्मा ने देखा कि सारे गोप बालकों को चार भुज किरीट, कुंडल, मुरली इत्यादि वाद्यों से सजा हुआ। भगवान् के इस विराट विश्व रूप को देख कर खुश हुए। जब ब्रह्मा को अपने काम से लज्जा हुई तब श्रीकृष्ण से क्षमा मांगी। इस तरह ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण से रक्षित गोपालों के पुण्य की प्रशंसा की।

श्रीकृष्ण ने बकासुर नाम के । स का वध किया। इसके बाद कालीय मर्दन वृत्तांत

सौभरी नाम के ऋषि ने भगवान् के दर्शन के लिए यमुना नदी में बारह वर्ष तप किया। ऋषि ने देखा कि मछलियां रतिकीड़ा में निरत थी। उनके आनंद को देखकर सौंभरी ऋषि को भी घर-गृहस्थी की इच्छा हुई।

ऋषि को एक शक्ति थी कि कई रूप धारण करने की। वे पचास रूप में परिवर्तित होकर, पचास कन्याओं से विवाह कर घर गृहस्थी का आनंद लेने लगे।

यमुना नदी में कालिंग नाम का सर्पराज वास करता था। उससे नदी का पानी विष भरित हुआ था। एक दिन बालराम के बिना सब गोप बालक गये थे। गरमी से प्यासे बालक यमुना नदी का पानी पीकर मूर्छित हो गिर पड़े। सर्व राक्षस स्वामी श्रीकृष्ण ने तुरंत यमुना नदी में कूद कर कालिंग सर्प को। उस की प्रार्थना से उसे यमुना नदी से भेज दिया। श्रीकृष्ण की रक्षा में रहनेवाला सब सुरक्षित अपने अपने घर चले गए।

'फणिवधूजन भक्तिविलोकन प्रविकसत्करुणा कुल चेतसा।
फणिपतिर्भवताऽच्युत जीवितस्त्वयि समर्पित मूर्ति —
स्वानमत्॥'

उस सर्प को समुद्र में भेजकर रात होने के कारण श्रीकृष्ण के साथ जंगल में ही ठहरे थे। उस वक्त भयंकर आग चारों ओर दिखाई पड़ा। सबलोग भय भीत हो गए। उस वक्त श्रीकृष्ण ने उस भयंकर अग्नि को पी लिया।

कभी-कभी कई तरह के कष्ट प्राप्त होता था। एक बार श्रीकृष्ण और बलराम विविध आभरणों से सजकर जंगल में खेलते रहे, उस वक्त कंस से प्रेरित प्रलंबासुर गोपबाल की तरह आपके समूह में मिल गया। जब वह गोपों को कष्ट देने लगा तब श्री कृष्ण ने उसे मार डाला।

गोपी वस्त्रापहरण

प्रत्येक दिन गोपबालिकाएँ श्रीकृष्ण प्रेम के कारण यमुना नदी के किनारे बालू से पार्वती की मूर्ति बना कर पूजा करती थीं। आगे वे सब सूर्योदय के पहले ही उठकर यमुना नदी में स्नान कर ध्यान करती थी कि श्रीकृष्ण ही हमारे पति होना चाहिए। वे सुंदर गोपिकाएँ एक महीने तक नियम से व्रत का अनुष्ठान करने लगी। उनको अनुग्रह करने के लिए श्रीकृष्ण वहाँ गए। सभी बालिकाओं ने स्नान करने के लिए वस्त्रों को नदी के किनारे रखा था। श्री कृष्ण उन वस्त्रों को लेकर एक पेड़ के ऊपर चढ़ा। इसके बाद उन साड़ियों से अलंकृत पेड़ पर बैठ गए। स्नान करने के बाद गोपिकाएं देखती हैं कि वहाँ साड़ियां नहीं है। इधर-उधर देखने के बाद उन्हें मालूम हुआ कि ये सब श्रीकृष्ण की करतूत है। आखिर श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर साड़ियों को पाया।

भक्त विलोचन

श्रीकृष्ण अपने साथियों के साथ वृन्दावन में गाय चराने जंगल में गया। उस वक्त ग्वाल बालकों को बहुत भूख लगी। श्रीकृष्ण ने कहा कि यहीं कुछ दूरी पर ब्राह्मण लोग याग कर रहे हैं। वहाँ जाकर मेरा नाम कहो, वे बहुत सा अन्न देते हैं। गोप बालक याग शाला में जाकर श्रीकृष्ण के आगमन और अपनी भूख का परिचय दिया।

लेकिन ब्राह्मण लोगों ने उन गोपबालकों को कुछ नहीं दिया। वे याग की पूर्णाहुति के बाद ही देना चाहते थे। भूखे बालक श्रीकृष्ण के पास वापस लौटे।

श्रीकृष्ण ने कहा कि उन दीक्षितों की पत्नियां वात्सल्यमयियां हैं और मुझे बहुत प्यार करती है। इस बार गोपबालक उन दीक्षित स्त्रियों से श्रीकृष्ण के बारे में कहा। तुरंत वे स्त्रियां पति के रोकने पर भी नाना तरह के भक्ष्य-भोज्य, लेह्य, चूर्ण इत्यादि सामग्रियों को उठा-उठा कर श्री कृष्ण के पास आयीं। प्यार से श्रीकृष्ण और उनके सहचरों को भरपेट खिलाया।

उन स्त्रियों की भक्ति को देखकर दीक्षितों ने भी श्रीकृष्ण की स्तुति की। भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस जगह में भक्तों को देखा वह पुण्यस्थल आज भी भक्त बिलोचन कहा जाता है।

इंद्रयाग

एक दिन नंदगोप आदि गोपवृंद याग करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। उसे देखकर श्रीकृष्ण उनसे पूछा कि आप सब क्या कर रहे हैं। गोपों ने कहा हर एक साल वर्षा होने के लिए देवेंद्र की पूजा करते हैं। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पहाड़ की महिमा बतायी। सारे गोप गण श्रीकृष्ण के आदेश के अनुसार ब्राह्मणों की पूजा कर उसके बाद पहाड़ को ही भक्ष्य-भोज्यों के निवेदन किया। स्वय परमात्मा श्रीकृष्ण ने ही पूजा स्वीकार की यह देखकर इंद्र आपसे युद्ध करने के लिए आया। गोकुल भर में वर्षा के कारण लोग भय भीत हो गए।

श्रीकृष्ण ने सब को अभय प्रदान कर अपने हाथ से उस गोवर्धन पहाड को उठा लिया। वह छतरी के समान था। उसके नीचे गो. और गोप गण सुरक्षित हो गए।

' भवति विधृत शैले बालिकाभि वृयस्यै—
रपि विहित पिलासं केलि लापादिलोले
सविधमितिन धेनरेक हस्तेन कण्डू—
यति सति पशु पालास्तोष मैषन्त सर्वे ॥ '

इस तरह श्रीकृष्ण ने सात दिन तक उस गोवर्धन पहाड़ को उठाकर सब की रक्षा की।

गोविंद पट्टाभिषेक

आखिर इंद्र देव ने भगवान् की महिमा को समझा। कामधेनु और रत्न किरीट के साथ आकर श्रीकृष्ण के चरणारविंदों में प्रणाम कर क्षमा मांगी। ऐरावत गंगाजल लाया। इंद्र ने उस पवित्र तीर्थ से श्रीकृष्ण का अभिषेक किया। यही गोविंद पट्टाभिषेक है।

रासक्रीडा

गोपिकाओं ने गौरीव्रत समाप्त किया श्रीकृष्ण मुरली नाद करते हुए यमुना नदी के किनारे पहुँचे इस वेणु गान के माधुर्य से मुग्ध गोपिकाएं घर का काम--काज—पति-पुत्रों को छोड़कर श्रीकृष्ण के पास आगयीं। वे सब श्रीकृष्ण के पास आने की त्वरा से अपने गहनों को विचित्र रूप से पहन लिया फिर भी कुछ गोपियां घर से बाहर निकल नहीं सकी। उससे चिंतयंती नाम की गोपी ने आपका ध्यान करते–करते मोक्ष प्राप्त कर लिया जो ऋषि—मुनि भी कई साल तपस्या करने पर भी जिस लोक को नही पा सकते हैं, उस मुक्ति साम्राज्य को आपके ध्यान से पायी।

उन गोपियों को श्रीकृष्ण धर्म का उपदेश दिया। किंतु वे सब एक मात्र ' कृष्णं धर्मं सनातनम् ' पर ही विश्वास रखती थी। इसलिए

वे सब आपको ही प्यार करते थे । श्रीकृष्ण ने भी उन सब को अपने प्रेम से खुश किया ।

रासक्रीड़ा के समय भगवान् श्रीकृष्ण कभी–कभी कुछ समय के लिए गायब हो जाते थे ।

'निलीयतेऽसौ मयि मध्यमायं रमापति र्विश्वमनोऽभिरामः ।
इति स्म सर्वाः कलिताभि माना निरीक्ष्य गोविंद तिरोहितोऽभूः ॥

गोपीवृन्द समझता था कि श्रीकृष्ण मुझे ही प्यार करता है, श्रीकृष्ण मुझे ही प्यार करता है । इस तरह गोविंद कुछ समय कहीं छिप जाता था । इस बीच में श्रीकृष्ण राधा को बहुत प्यार करता था ।

लेकिन गोपिकाएं श्रीकृष्ण के साथ नाना विध शृंगार चेष्टाएं करती थी । उसका आदिशेष से भी वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

श्रीकृष्ण ने उन गोपिकाओं से कहा कि—

'अयि निशम्यतां जीव वल्लभाः प्रियतमो जनो नेदृशो मम ।
तदिह रम्यतां रम्य यामिनीष्वनु परोध मित्याळपी विभो ॥ '

ओ प्राणप्रिय सखियो !

आपके समान आत्मीय बंधु जन कोई नहीं है । इसलिए यमुना नदी के किनारे चांदनी रातों में आपके साथ खुशी से विहार कर रहा हूँ । श्रीकृष्ण के प्रिय वचन सुनकर गोपिकाएं रासक्रीडा में मग्न मना हुईं । उसका वर्णन :—

'केश पाश धृत पिन्छिकाविनति सञ्चलन्मकर कुण्डलं
हार जाल बन मालिका ललिनमङ्गराग घन सौरभम् ।
पीत चेल धृत काञ्चि काञ्चि मुदन्चदंशु मणि नुपुरं
रासकेलि परि भूषितं तव हि रूप मीश कलया महे ॥

श्रीकृष्ण सौंदर्य इस रासक्रीड़ा के समय अद्भुत था। देवता लोग आसमान पर खड़े-खड़े यह सुंदर दृश्य देख रहे थे कि :—

' वेणुनादकृततानदानकल गानरागगति योजना—
लोभनीय मृदुपादपातकृत ताल मेलन मनोहरम् ।
पाणि संक्वणित कङ्कणं च मुहुरंसलंबितकराम्बुजं
श्रोणिबिंब चलदंबर भजत रास केलि रसडंबरम् ॥

संगीत, राग, ताल, नृत्य से आनंदित गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण के साथ रासक्रीड़ा करते ब्रह्मानंद पाया। श्रीकृष्ण परमात्मा ने भक्त जनों के लिए इस तरह मानव रूप धर कर सब को आनंदित किया।

एक गंधर्व ने शापवश सर्प का रूप धरा था। श्रीकृष्ण आदि गोपाल सब एक शिव मंदिर में सोये थे। उस समय उन शापग्रस्थ गंधर्व ने नंदगोप को निगल लिया। श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श से उसका शाप विमोचन हुआ। गंधर्व श्रीकृष्ण का स्तोत्र कर स्वस्थान चला गया।

शङ्खचूडवध

एक दिन कुबेर का सेवक शङ्खचूड गोपस्त्रियों को चुरा ले गया। श्रीकृष्ण बलराम के साथ खेल रहा था। यह खबर सुनकर श्रीकृष्ण

ने शङ्खचूड़ को मार डाला उसके सिर पर जो रत्न था उसे बलराम को दे दिया।

शङ्खचूड़, केशी तथा व्योमासुर का वध '

कंस के एक सेवक भयंकर बैल का रूप धारण कर श्रीकृष्ण से मरा

आगे कंस के और एक दूत सिंधु देश के घोड़े के रूप में आया। उसका नाम केशी था। वह भी कृष्ण के हाथों मर गया।

इन दोनों के मरने के बाद, मायासुर के पुत्र 'व्योमासुर' चोर रूप में आकर गायों और ग्वालों के बीच में घुसा कुछ समय के बाद 'व्योमासुर' गायों और गोपों को एक गुफा में छिपाकर पत्थरों से उस गुफा के द्वार बंद कर दिया। जब श्रीकृष्ण को मालूम हुआ तब उसने उस राक्षस का वध किया। सारे गोकुलवासी खुश हुए।

अक्रूर के गोकुल आना

'कांतिनी' के पुत्र कृष्ण के भक्त थे। बहुत दिनों से श्रीकृष्ण के दर्शन करना चाहता था। किंतु राजा कंस के भय से गोकुल नहीं आया था। अब नारद के ज़रिए कंस को मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण गोकुल में विराजमान है। उसने अक्रूर से कहा कि बलराम और श्रीकृष्ण को याग में भाग लेने के लिए बुला आओ।

अक्रूर ने रथ पर चढ़कर रास्ते में सोचने लगा कि अनेक उपनिषतों में वर्णित वेद पुरुष को क्या मैं देख सकूंगा? उन्हें आलिंगन कर सकूंगा।

क्या वे मुझसे बातें करेंगे? हे कृष्ण ! जगद्रक्षक ! आपके चरणारविंदों में प्रणाम ! जिस-जिस जगह में श्रीकृष्ण घूमा-फिरता, खेला था। वहाँ की धूली को सिर-आँखों में लगाया। 'अक्रूर' शाम तक श्रीकृष्ण के घर तक पहुँचा। उस समय श्रीकृष्ण अपने भाई बलराम के साथ दूध दुह रहा था। मानों श्रीकृष्ण अक्रूर के आगमन की प्रतिक्षा कर रहा हो? अक्रूर ने देखा कि श्रीकृष्ण-बलराम दोनों सुंदर वस्त्र और आभरणों से अलंकृत मंदहास मुख मंडलसे शोभायमान होकर अक्रूर का स्वागत कर रहे हो।

अक्रूर ने भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया। नंदगोप और अन्य गोकुलवासियों ने अक्रूर का आदर किया। कंस का संदेह सुन कर श्रीकृष्ण खुश हुए। गोपियाँ बिना श्रीकृष्ण के उस रात को विरह से तड़पने लगीं।

श्रीकृष्ण और बलराम ने अक्रूर के साथ मथुरा नगर जाने का निश्चय किया। गोपबालाएँ यह खबर सुनकर अत्यधिक दुःखी हुईं। विधि की क्रूरता के बारे में प्रलाप करने लगी श्रीकृष्ण इन सारी गोपिकाओं को सांत्वना देकर पुनर्मिलन का भरोसा देकर अक्रूर के साथ मथुरा नगरी की तरफ चले।

शाम को अक्रूर ने देखा कि नदी में और रथ के ऊपर सब जगह श्रीकृष्ण ही दिखाई पड़ रहे हैं। भक्ताग्रेसर अक्रूर आपके दर्शन से आनंदित हुआ—

'पुनरेव निमज्य पुण्यशाली पुरुषं त्वां परमं भुजङ्ग भोगे
अभिकंबु गदांबुजैः स्फुरन्तं सुरसिद्धौघ परीतमालुलोके ॥

अक्रूर ने देखा कि श्रीकृष्ण भगवान् आदिशेष के ऊपर बैठा है। हाथ में शंख-चक्र, गदा, पद्म इत्यादि विराजमान हैं। परम पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायण के दर्शन कर अक्रूर ने ब्रह्मानंद पाया। आखिर देखा तो बलराम के साथ श्रीकृष्ण रथ पर बैठा था।

श्रीकृष्ण का मथुरापुरी-प्रवेश

श्रीकृष्ण मथुरा नगरी के राजमार्ग से निकला। वहाँ के कई नर-नारी गण श्रीकृष्ण का सौंदर्य देख कर मुग्ध हो गए। दुपहर के समय श्रीकृष्ण राजवीदि में चलने लगा। वहाँ धोबी से वस्त्र मांगने पर उसने नहीं दिया। किंतु कुब्जा नाम की कुबड़ी श्रीकृष्ण के सौंदर्य पर मुग्ध थी। उसने राजा कंस के लिए जिस सुगंधित चंदन को तैयार किया था। उसे श्रीकृष्ण के भव्य शरीर पर लगा कर खुश हुई श्रीकृष्ण ने उसके कूबड़ शरीर को ठीक कर दिया। भगवान् के स्पर्श से कुब्जा का सौंदर्य सौगुना बढ़ा।

कंस ने धनुर्याग के बहाने श्रीकृष्ण और बलराम को बुलाया था। उस समय साधु लोगों से प्रेम से दुष्ट लोगों से भय से देखा गया। श्रीदामा के साथ श्रीकृष्ण फुलवारी में गया। वहां श्रीकृष्ण को राधा की याद ने बहुत सताया। दूसरे दिन कंस का वध करना था। इसके बारे में सोचते हुए सुख की नींद सोया।

कुवलयापीड़ नामक हाथी का संहार

कंस की आज्ञा से भयभीत राजा-महाराजा दरबार में आये। श्रीकृष्ण-बलराम भी सालंकृत राज-दरबार में पधारे। प्रवेश द्वार पर

कुवलया पीड़ नाम का हाथी श्रीकृष्ण से लड़ा। श्रीकृष्ण के हाथ से मर गया। यह देख कर कंस भयभीत हुआ।

श्रीकृष्ण को पाये हुए नंदगोप, यशोदा तथा गोपियां ही भाग्यशाली हैं। नहीं तो अब सामने श्रीकृष्ण को देखनेवाले ? हम ही भाग्यशालि बताकर सब आनंदित हुए।

भगवान् ब्रह्मानंद रूपी, विज्ञान घन रूपी है। प्रप्रथम जो उसे देखते हैं, उसका पाप आग में रूगे के समान भस्म हो जाता है।

मल्लयुद्ध के लिए तैयार चाणूर श्रीकृष्ण से और मुष्टिक बलराम से संघर्ष करने लगा।

'हा विकष्टं कुमारौ सुललितवपुषौ मल्लवीरौ कठोरौ
न द्रक्ष्यामो व्रजामस्त्वरितमिति जने भाषमाणे तदानीम।
चाणूरं तं करोद्भ्रामण विगलदसुं पोथयामासियोर्व्यां
पिष्टोऽभून्मुष्टिकोऽपि द्रुतमथहलिना नष्टशिष्टैर्दधावे ॥'

लोगों ने देखा कि सुंदर, सुकुमार बालकों से बड़े—बड़े हट्टे—खट्टे लोग मल्ल युद्ध कर रहे थे। हमसे इस अन्याय को देखा नहीं जा सकता है, इसलिए हम सब को बाहर चला जाना है। आश्चर्य की बात है कि ये इस तरह सोचते समय में ही श्रीकृष्ण ने चाणूर को घुमा—घुमा कर मार डाला उसी वक्त बलराम ने भी मुष्टिक का अंत कर दिया।

यह देखकर कंस को बहुत क्रोध आया। उसने बलराम और श्रीकृष्ण को भगा देना चाहा। इतने में श्रीकृष्ण ने कंस को सिंहासन से नीचे खींच कर मार डाला। कंस के आठ भाइयों को भी बलराम

और श्रीकृष्ण ने मार डाला। कंस वध के बाद — देवकि वसुदेव को प्रणाम कर, उग्रसेन महाराज को सिंहासन पर बिठाया। महा-सात्विक, बृहस्पति के शिष्य उद्धव से मित्रता पायी यदुकुल के लोगों को खुश किया। मथुरा नगर में रहने लगे।

सांदीपिनी नाम के गुरु से ६४ विधा को सीखा। गुरु दक्षिणा के लिए गुरु के मृत पुत्रों को लौटा दिया। उस वक्त पांचजन्य नाम का शंख श्रीकृष्ण को प्राप्त हुआ।

उद्धव के दौत्य

गोपिकाओं की भक्ति को उद्धव जी को समझाने के लिए उसे श्रीकृष्ण ने गोकुल भेजा। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर उद्धव जब गोकुल में पहुँचा तब श्रीकृष्ण के जैसे ही वस्त्राभरण पहने हुए उद्धव को देखकर सब गोपस्त्रियाँ खुश हुई उन स्त्रियों ने कहा कि-

'श्रीमान किं त्वं पितृ जन कृते प्रेषितो निर्दयेन
क्वा सौ कान्तो नगर सुदृशां हा हरे नाथ पायाः।
आश्लेषाणाममृतवपुषो हन्त ते चुम्बनाना—
मुन्मादानां कुहक वचसां विस्मरेत्कांत का वा॥'

हे उद्धव जी!

क्या दयाहीन कृष्ण ने माँ—बाप के लिए कौनसा संदेश भेजा है? उस नगर नारियों के जाल में फंसा हुआ वह कृष्ण कहाँ है! हे श्रीकृष्णः नाथ, हमारी रक्षा करो। हे प्रियतम! तुम्हारे अमृतमय

मधुर मुस्कान और आलिंगन को हम कैसे भूल सकते है ? जब तुम यहां हमें अपने कपट वचनों से भ्रमित किया था । कोई भी नारी उस मधुमय संदर्भ को भूल सकती है ! हे कृष्ण ! रासक्रीडा से भवित स्वेद बिंदुओं से लावण्यमय आपके मुखमंडल को एक बार चुम्बए करना चाहतो हैं । हे जगदीश ! श्रीकृष्ण प्रेम से परवश गोपियां उसका स्मरण करती हुई विलाप करने लगी ।

उद्धव जीने उन प्रिय गोपस्त्रियों को श्रीकृष्ण का तत्त्वज्ञान संदेश सुनाकर सांत्वना दी ।

उद्धव जी ने राधा को श्रीकृष्ण का संदेश यों कहा कि—

' राधाया में प्रियतममिदं मत्प्रियैव ब्रवीति
त्वं किं मौनं कलयसि सखे मानिनी मत्प्रियेव ।
इत्याद्येव प्रवदति सखि त्वत्प्रियो निर्जने मा—
मित्थंवादैररमयदयं त्वप्रिया मुत्पलाक्षीम् ॥'

श्रीकृष्ण ने मथुरा नगरी में रहते उद्धव से कहते थे कि हे प्रिय-सखा उद्धव ! यह वस्तु मेरी प्रियतमा राधा को अत्यंत प्रिय है । मेरी राधा तुम्हारी तरह ही कहती थी । हे उद्धव ! सखा ! तुम भी मेरी राधा के जैसे ही मौन क्यों हो । उद्धव राधा से कृष्ण की इन बातों को सुना— सुना कर आनंदित होता था । और उन गोपिकाओं से कहा कि 'अधिक काम-काज के कारण आ नहीं सका अतः कुछ ही दिनों में आपके पास आजायगा ।

उद्धव जी ने कृष्ण के पास लौटकर कहा:-

‘एवं भक्तिः सकल भुवने नेक्षिता न श्रुता वा
किं शास्त्रौघैः किमिह तपसा गोपिकाभ्यो नमोऽस्तु ।
इत्यानंदाकुलमुपगतं गोकुलादुद्धवं तं
दृष्ट्वा हृष्टो गुरु पुर पते पाहि मामा मयौघात् ॥’

संसार भर में ऐसी श्रेष्ठ भक्ति कहीं नही है ।न देखा गया न सुना गया । शास्त्र ज्ञान से क्या प्रयोजन है ? हे गोपीवृन्द ! आपको शत शत सहस्र नमस्कार है । श्रीकृष्ण ने देखा कि गोकुल जाने के पहले उद्धव स्वयं सर्व श्रेष्ठ भक्त समझता था । किंतु गोपियों की भक्ति के सामने उन्होने सिर झुका दिया यह देखकर कृष्ण भी खुश हुए।

उपश्लोक का जनन

श्रीकृष्ण एक नायिका की प्रार्थन स्वीकार करने रोज उसके घर जाया करते थे। उस ‘वासवसज्जिका’ को संतुष्ट कर दूसरे दिन सुबह-उससे पूछा कि तुमको कौनसा वर चाहिए मांग । उस प्रणयीं ने कहा कि आप रोज इसी तरह मेरे घर आकर मुझे खुश कीजिएगा । श्रीकृष्ण ने उस रमणी से एक पुत्र पाया । उसका नाम ही उपश्लोक है । वह स्त्री मोक्ष मांग सकती थी। किंतु उसे वैराग्य नहीं था । उपश्लोक ने नारद महर्षी से वैष्णव तंत्र को सीख कर प्रसिद्ध हुआ ।

जरासंध युद्ध

जरासंध अपने जामाता कंस की मृत्यु से दुःखित हुआ । उसने तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ आया ।बलराम ने उस जरासंध को जबर्स्ती

से बांध रखा था। लेकिन श्रीकृष्ण नें उसे छुडाया। आगे वह राक्षस १६ बार युद्ध कर हार गया। १७ वां बार भी यही हुआ। आखिर काल यवन ने तीन करोड़ सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिए आया। उसे देख श्रीकृष्ण ने विश्वकर्म से समुद्र के बीच एक सुंदर शहर बनवाया। उस शहर में अपने बंधु—बांधवों को रखा।

मानो श्रीकृष्ण यवन भय से भागने लगा इस बहाने को वह यवन सत्य ही समझा। श्रीकृष्ण भागते-भागते जहां मुचकुंद सोया था उस गुफा के अंदर आया। कालयवन को चकंद ने भस्मीभूत कर दिया। मुचकुंद ने सुंदर श्रीकृष्ण से कुछ वर प्राप्त किया। श्रीकृष्ण समुद्र के बीच बसे हुए द्वारका पुरि में जाकर आराम किया।

बलराम, श्रीकृष्ण का विवाह

ब्रह्म के आदेश से रेवती नाम की कन्या से बलराम ने विवाह किया। कुंडिन पुर की राजकन्या रुक्मिणी थी। वह श्रीकृष्ण को ही अपना पति समझती थी। लेकिन उसके भाई रुक्मी ने उसे शिशु-पाल से विवाह करना चाहा।

रुक्मिणी का संदेश पाकर श्रीकृष्ण विवाह के समय रुक्मिणी को रथ पर बिठा कर लाया। श्रीकृष्ण और रुक्मी के बीच लडाई हुई। रुक्मी हार गया। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पट्ट महिषी हुई। उन दोनों क वैवाविक जीवन अत्यंत सुंदर था।

स्यमन्तकोपाख्यानम्

स्यमंतक नाम का रत्न नहीं थ्रेष्ठ था । श्रीकृष्ण ने उस रत्न को सत्राजित से मांगा । किंतु उसने नहीं दिया । आगे वह रत्न एक सिंह को मिला । सत्राजित की पुत्री सत्यभामा से श्रीकृष्ण ने शादी की । उसके बाद श्रीकृष्ण ही उस रत्न की चोरी की है इस अपवाद को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण रत्न ढूंढने निकला ।

जांबवान राम भक्त है । उसने श्रीकृष्ण को नहीं पहचाना द्वंद्व युद्ध करते—करते जांबवान् ने श्रीकृष्ण को पहचाना । फिर वह अपनी पुत्री जांबवती तथा वह रत्न दोनों को श्रीकृष्ण को समर्पण किया ।। इस तरह सत्राजित, जांबवंत आदि ने अपनी—अपनी पुत्रियोंका श्रीकृष्ण से विवाह किया ।

सुभद्राहरण

श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ द्रौपदी के विवाह में गया । उसी समय कपट सन्यासी अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया ।
श्रीकृष्ण ने नरकासुर का वध किया । उसके पास जो सोलह हजार स्त्रियां थीं उनसे श्रीकृष्ण ने शादी की जब श्रीकृष्ण देवलोक गया था तब वहां पारिजात वृक्ष को देखकर उसे सत्यभामा के घर बोया ।

रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न को शंबरासुर उठा ले गया । आगे अनिरुद्ध ने भी रुक्मि की नाति रोचना का अपहरण किया । उसके विवाह में बलराम और श्रीकृष्ण पधारे थे ।

बाणासुर वध

बाणासुर की पुत्री उषा ने स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा। उसकी सखीने जब योगबल से अनिरुद्ध को उषा के पास ले आया। वे दोनों अंतःपुर में खुशी से रहते थे। बाणासुर नें यह खबर पाकर अनिरुद्ध को कैद कर रखा। नारद जी से यह बात सुनकर श्रीकृष्ण उन सब से लड़ने गया। महादेव शिवने अपने भक्त की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण से युद्ध किया। श्रीकृष्ण के बाण से घायल हुआ। बाणासुर ने पांच-सौ अस्त्र शास्त्रों से सज्जित श्रीकृष्ण से युद्ध किया। आखिर शिव से उपदेश पाये बाणासुर को दो हाथ मात्र बचे। महादेव शिव और महाविष्णु श्रीकृष्ण को प्रणाम कर युद्ध भूमि से वापस लौटा।

पौंड्रक वध

पौंड्रक श्रीकृष्ण के पास दूत को भेजा। स्वयं महाविष्णु नारायण है। हे कृष्ण, तुम वैष्णव चिन्हों को धारण मत करो। यह बात सुनकर श्रीकृष्ण उस पौंड्रक के वैष्णव चिन्हों को नाश कर उसे मार डाला। बहुत दिनों से श्रीकृष्ण के स्मरण में ही रहने के कारण उसे मुक्ति मिलि।

श्यमंतक पंचक

क्वचिदथ तपनोपरागकाले पुरि निदधृत वर्मे काम सूनू। यदुकुल महिलावृतः सुतीर्थे समुपगतोऽसि श्यमन्त पञ्चकाख्यम्॥'

एक दिन सूर्य ग्रहणस्नान के लिए श्रीकृष्ण के साथ सब निकले। उस वक्त पांडव, द्रौपदी आदि लोग भी ने आये थे। वसुदेव, नंद और गोपस्त्रियां भी वहां मौजूद थे। श्रीकृष्ण, राधा और अन्य गोपिकाओं से मिलकर बहुत खुश हुए 'शर्मत पंचक' में स्नान कर ब्राह्मणों को दान दी तीन महीने बंधु बांधवों के साथ मिलजुल कर रहने के बाद द्वारका के नगर वापस लौटा।

गोपियां भी श्रीकृष्ण से मिलकर संतुष्ट हुई।

कुछ समय बाद कौरव और पांडवों में लडाई प्रारंभ हुई।अर्जुन ने बंधु व्यामोह से शस्त्र त्याग किया। उस वक्त श्रीकृष्ण ने गीतोपन्यास कर संसार के लोगों को चकित किया। गीता के सात सौ श्लोकों में मानव जीवन के नैतिक स्तर को उठानेवाले तत्त्वप्रद विचार हैं।

कुचेल वृत्तांत

कुचेल, श्रीकृष्ण के सहपाठी था। दोनों गुरु सांदीपिनी के पास अध्ययन कर रहे थे। कुचेल गरीब था श्रीकृष्ण जगदीश्वर। एक दिन कुचेल की पत्नी ने अपने पति से कहा कि आप श्रीकृष्ण के दर्शन कर आइएगा। पत्नी की मजबूरी से कुचेल श्रीकृण के पास गया। खाली हाथ नहीं जा सकने के कारण तीन मुट्ठी तंडुल को कपडे में बांदकर ले गया।

जब कुचेल श्रीकृण के गृह गया तब श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों से खेल रहा था। नौकरों से कुचेल के आगमन का समाचार सुन कर बहुत खुश हो गया भागते हुए आकर उसका स्वागत किया।कुचेल

अपने प्रिय सखा श्रीष्कृण को देख कर खुश हो गया। आखिर श्रीकृष्ण कुचेल की चीजों में ढूंढ़ने लगा कि भाभी ने मेरे लिये कुछ भेजा होगा उसके हाथ चूडवा मिल गया। तुरंत अपने दो मुठ्ठियां खा ली। वहीं खडी रुक्मिणी ने तीसरी मुट्ठी खाने से रोक लिया। कुचेला श्रीकृष्णके साथ एक दिन ठहर कर दूसरे दिन खुशी से अपने घर लौटा गांव में आकर देखा तो आश्चर्य है कि अट्टालिकाओं से सजा हुआ घर, पत्नी ने सोने और वस्त्राभरणों से सालंकृत मंदस्मित कुचेल का स्वागत किया। लेकिन कुचेल ने इतने ऐश्वर्य के बीच भी श्रीकृष्ण भक्ति में मग्न मना होकर मोक्ष साम्राज्य पाया।

संतान गोपालोपख्यानम्

जब श्रीष्कृण गुरु सांदीपिनी के मृत पुत्रों को देखने लाया। तब से देवकी ने भी अपने मृत पुत्रों को देखना चाहा। श्रीकृष्ण ने सुतल लोक जाकर देवकी के पुत्रों को लाया। कुछ समय माता को दिखाकर उन्हें वापस भेज दिया।

श्रीकृष्णके परम मित्र अर्जुन द्वारकापुरी आया था उस ब्राह्मण के नवां पुत्र मर गया। बार—बार इस तरह पुत्र की मृत्यु से ब्राह्मण ने श्रीष्कृण से प्रार्थना की। अर्जुन और आप दोनों के बहुत श्रम करने पर भी बच्चा का देहांत हो गया। आखिर श्रीकृष्ण ने श्री वैकुंठ लोक दिखकर उसका गर्व दूर किया, अर्जुन ने देखा कि श्रीवैकुंठ में आदिशेष के ऊपर शयन किए परमात्मा सर्वाभरण भूषित थे। सृष्टि, स्थिति,

संहारादि कार्य करने में तत्पर थे यह देखकर अर्जुन का गर्व दूर हुआ श्रीकृष्णावतार में—सौहार्द्र, मित्रता, द्वेष, अनुग्रह इत्यादि सुख—दुःखों को दूर कर लोगों को मोक्ष दिया। संसार भर में कृष्णावतार सर्व श्रेष्ठ है।

वृकासुर वध

शकुनी के पुत्र वृकासुर है। उसने एक दिन नारद से पूछा कि तुरंत संतुष्ट होकर वर देनेवाला परमात्मा के बारे में। नारद ने कहा कि महादेव शिव यथा शीघ्र वर दे देगा। वृकासुर ने सात दिन घोर तपस्या की। महादेव शिव उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ। वृकासुर ने महादेव से वर मांगा कि जिसके सिर पर हाथ रखते है उसकी मृत्यु हो जाय महादेव ने तुरंत वर दे दिया। वृकासुर परीक्षा करने के लिए महादेव के पीछे—पीछे भागा प्राण भय से महादेव त्रस्थ था। उस वक्त श्री कृष्ण ब्रह्मचारी के वेश में उसके सामने गया।

हे वृकासुर ! तुम कुशल हो ? तुम क्यों उनके पीछे-पीछे जा रहे हो। अगर मेरी बात पर विश्वास हो तो अपने सिर पर ही हाथ रख कर देखो। तुरंत वृकासुर ने आगा पीछा न देखा कि अपने सिर पर हाथ रखा जल कर भस्म हो आया।

त्रिमूर्तियों में विष्णु का महत्व

सरस्वती नदी के किनारे बसे हुए ऋषि-मुनियों ने निश्चय किया कि त्रिमूर्तियों में सत्व प्रधान स्वभाव का कौन है ? ब्रह्मा ने भृगुमहर्षि का आदर नहीं किया। रुद्र ने भृगुऋषि को मार डालना चाहा, किंतु

पार्वती के रोकने पर रुका । आखिर भृगु ऋषि ने लक्ष्मी पति नारायण के पास गया । उस वक्त नारायण लक्ष्मी देवी की गोद में सो रहा था। कोदित मुनि ने उसकी छाती को जोर को लात मारी । नारायण ने तुरंत उठकर कहा कि —हे मुनि श्रेष्ठ आपके कोमल चरणों को कितनी चोट लगी ? यह बात सुनकर भृगुमुनि को अच्युत पर भक्ति हुई । मोक्ष भी प्राप्त किया । कहा कि—

' जगत्सृष्ट्यादौ त्वां निगमनिवहैर्वन्दिभिरिव
स्तुतं विष्णो सच्चित्परमरसद्वैतवपुषम् ।
परमात्मानं भूमन् पशुपवनिता भाग्य निवहं
परिताप श्रान्त्यै पवनपुरवासिन् परिभजे ' ॥
हे विष्णु ! हे जगदीश । हे गुरुवायूरप्पा ।

इस जगत्सृष्टि के स्तुतिकार , वेदों के जरिए तु ति करनेवाले परमात्म स्वरूपी ! गोपियों के भाग्यदाता मेरा दुःख दूर करने की प्रार्थना करता हूँ ।

वेद आदि को भगवान् पर ही श्रद्धा

हे जगदीश्वर! वृकासुर , भृगुमुनि , मोहिनी , अंबरीश इत्यादियों के चरित्र से भगवान् की महिमा स्पष्ट हुआ ।सारे देवी —देवताओं से आप सर्व श्रेष्ठ हैं । तीनों लोकों के त्रिमूर्ति भी आप ही है । आपके शुद्ध सत्व रूप को विष्णु कहा जाता है । ब्रह्मदेव के पास रजो-- गुण तथा महादेव शिव के पास तमो गुण अधिक हैं ।

आदि शंकराचार्य ने भी मेघवर्ण सदृश आपको प्रणव के समान

ताया है । भागवत के दूसरे स्कंध में , माधवाचार्य शिव भक्त होने पर भी भगवान् को हरि , शर्वन आदि नाम से पुकारा । व्यास प्रणीत भागवत पुराणोंमें भगवान् की महिमाओं का विवरण स्पष्ट है ।

' केवल भक्ति मात्र मोक्ष हेतु है '

' श्रीकृष्ण त्वत्पदोपासनमभयतमं बद्धमिथ्यार्थदृष्टे -
र्मर्त्यस्यार्तस्य मन्ये व्यसरति भयं येन सर्वात्मनैव ।
यत्तावत्त्वत्प्रणीतानिह भजनविधीनास्थितो मोहमार्गे
धावन्नाप्यावृताक्षः स्खलति न कुहाचिद्देवाखिलात्मन् ॥'

देवों के देव ,सब की आत्मा , हे कृष्ण !

झूठें नश्वर शरीर को अपना समझ कर , मृत्यु , दुःख और कष्टों को भोगनेवाले को अगर आपके चरणारविंद दर्शन हो तो उसका दुःख दूर होता है।

इन चेतन जीवों के कई दुःख देखा । उससे प्राप्त ज्ञान से एक सद्गुरु से आपके स्वरूप ज्ञान को पाया । आपके असंख्यात गुणों को समझकर भक्ति को प्राप्त किया । भक्ति पाने के बाद इस माया को पार कर आपके चरणारविंदों को पाया ।

' कर्म मिश्रण भक्तिरूप विवरण '

' वेदैः सर्वाणि कर्माण्य फल परइया वर्णितानीतिरबुद्ध्वा
तानि त्वय्यार्पितान्येव हि समनुचरन् यानि नैष्कर्म्य मीश ।

हे जगदीश !

सारे वेद कहते हैं कि फल की इच्छा नहीं है। निष्काम फल से ही कर्म करना चाहिए। किसी कर्म में काया, वचसा, मनसा फल की आशा नहीं रखनी चाहिए। कृत, त्रेता और द्वापर युग से अधिक भक्त कलियुग में है। वह भी द्राविड देश में अधिक रहते हैं।

हे प्रभु !

गंगा, गीता, गायित्री, तुलसी, प्रसिद्ध गोपी चंदन सालिग्राम की पूजा, एकादशी व्रत ये आठ कलियुग में मुक्ति प्रदायक है। वह भक्त सारी प्रवृत्तियों को रोक कर भगवान् के शरण में जाता है। ऐसे महान् भगवान् के पादारविंदों में दृढ़ भक्ति रखकर मोक्ष प्राप्त करता है।

१	गोदा श्री सूक्तिमंजरी		कन्नड़
२	रामानुज भूषण		"
३	मणवाळ मामुनि वैभव		"
४	ब्रह्मसूत्रदल्लि द्वैत सिद्धान्त		"
५	पांचरात्र मत्तु इतर आगमगळु		"
६	भगवद्वतार		"
७	गोपुरद हिरिमे		"
८	रामानुजरु		"
९	श्री भाष्य प्रवेश		"
१०	जगदाचर्यरु रामानुजरु		"
११	रामायण प्रदीप		"
१२	भक्ति सिद्धांजन	I	हिंदी
१३	भक्तिसिद्धांजन श्रीकृष्ण	II	"
१४	विशिष्टाद्वैत		"
१५	भक्तामृत		"
१६	पातिव्रत्य महिमे		"
१७	ऊर्मिला का विरह		"
१८	महादेवी वर्मा		"
१९	परतत्व		"
२०	आगमशास्त्र		"
२१	वैखानस आगम		"
२२	वरनंदी		"
२३	विष्णु सहस्रनाम		"
२४	नम्मालवार मत्तु तिरुवायमोळि		"
२५	कैकेयी का पश्चत्ताप		"

इत्यादि पुस्तक और लेख आदि सौ कृतियां मुद्रित हैं।